उत्तरप्रदेश सरकार-द्वारा पुरस्कृत

आमुख लेखक

डॉ० राजबली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट०

लेखक

लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए० (ऑनर्स)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

पूजनीया स्वर्गीया माताजीके
श्रीचरणोंमें यह कृति
श्रद्धया समर्पित

आमुख

भारतीय इतिहासके समुचित निर्माणके लिए दो बातें बहुत ही आवश्यक हैं—(१) विभिन्न प्रदेशों और स्थानोंके इतिहासमें विस्तृत और प्रामाणिक अनुसन्धान और शोध तथा (२) भारतीय इतिहासके प्रमुख महापुरुषों और व्यक्तियोंके चरित्र तथा इतिहासका विशद वर्णन और विवेचन । इन दोनों क्षेत्रोंमें जितना ही अधिक कार्य होगा देशका इतिहास उतना ही पूर्ण और विश्वसनीय लिखा जा सकेगा । चौलुक्य कुमारपालका इतिहास इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण प्रणयन है। विशेषकर हिन्दी भाषामें इस प्रकारके ग्रन्थोंकी अभी तक कमी है और प्रस्तुत ग्रन्थ इस अभावकी पूर्ति करता है ।

इतिहास-लेखनमें दृष्टि और पद्धतिका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इतिहासके उद्देश्य, क्षेत्र, सीमा और परिधिमें इधर बहुतसे परिवर्तन हुए हैं । जागरूक लेखक ही सफल इतिहासकार हो सकता है । प्रस्तुत लेखककी चेतना इस दिशामें जागृत है। उन्होंने इतिहासके मूल उद्देश्य—अतीतका सच्चा चित्रण, आकलन तथा मूल्याङ्कन—को सामने रखकर तथ्योंका संकलन, चयन और परीक्षण करते हुए कलात्मक ढंगसे अपने विषयका प्रतिपादन किया है । इतिहासका कलापक्ष ही उसे मानवके लिए अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाता है । कला-पक्षके निर्वाहके साथ इस ग्रन्थमें वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन किया गया है । सभी उपलब्ध सामग्रियोंका संकलन, चयन और परीक्षण निष्पक्ष भावसे हुआ है । वास्तवमें इतिहासकी यही आधारशिला है, जिसके ऊपर उसकी विशाल कलात्मक अट्टालिकाका निर्माण सम्भव है। लेखकने अपने इस दायित्वको भी सफलता-

के साथ निभाया है।

चौलुक्य कुमारपाल भारतके मध्यकालीन शासकोंमें प्रमुख थे। गज़नीके तुर्कोंके आक्रमणके प्रथम वेगसे पश्चिमोत्तर और पश्चिम भारतको काफ़ी आघात पहुँचा था। यह राजनैतिक विशृङ्खलता तथा सामाजिक संकीर्णताका युग था। ऐसे समयमें कुमारपालने अपनी प्रतिभा, सैनिक बल, शासकीय योग्यता तथा सांस्कृतिक उदारतासे देशके स्तम्भनका बहुत बड़ा कार्य किया। युगकी सीमाके बाहर निकलना उनके लिए सम्भव नहीं था, फिर भी उनका जीवन और उनके कार्य कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे पुरुषके जीवन और कार्यों और उसके युगकी प्रवृत्तियोंका चित्र प्रस्तुत कर लेखकने महत्त्वका कार्य किया है और वे हमारे साधुवादके पात्र हैं। यह ग्रन्थ विद्वन्मण्डली तथा जनतामें समान रूपसे अभिनन्दनीय है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आषाढ़ शुक्ल ७,
सं० २०११ वि०

राजबली पाण्डेय
एम० ए०, डी० लिट्
प्रिन्सिपल, इण्डोलॉजी कॉलेज तथा
अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति

प्रास्ताविक

●

इतिहासके प्रतिभावान् अध्येता, उदीयमान साहित्यिक और अनुभवी पत्रकार श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम०ए० (ऑनर्स)का प्रस्तुत ग्रन्थ 'चौलुक्य कुमारपाल' एक ख्याति-लब्ध रचना है। क्योंकि उत्तर प्रदेशीय सरकारने इस रचनाको इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि पाण्डुलिपिके आधारपर ही इसे पुरस्कृत किया है।

पुस्तककी मुख्य उपादेयता इस बातमें है कि यह भारतीय इतिहासके एक ऐसे महिमावान् व्यक्तिके कार्यकलापका अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसकी गणना हमारे देशके महत्तम सम्राटों और राष्ट्र-निर्माताओंमें होती है। चौलुक्य कुमारपाल अपनी महत्ताओंके आधारपर चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और हर्षवर्द्धनके समकक्ष है। चौलुक्य कुमारपाल-सम्बन्धी इतिवृत्तको आकलित और योजित करनेके लिए श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने इतिहासके सभी प्रासंगिक मूल आधारों और उपादानोंका विधिवत् गहन अध्ययन किया है—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके दर्जनों ग्रन्थ, बीसियों शिलापट्ट और उत्कीर्ण लेख, देशी-विदेशी विद्वानों-द्वारा लिखित पचासों ग्रन्थ, और अनेकों मन्दिरों तथा विहारोंके शताधिक खण्डावशेष। जिन-जिन विद्वानोंने इस ग्रन्थको देखा है, वे श्री व्यासके परिश्रम, प्रबुद्ध अवलोकन, निष्पक्ष आकलन और वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावित हुए हैं। इसके अतिरिक्त विचारोंकी क्रम-बद्धता, और शैलीकी सरलता पाठकको उस खीजसे बचाते हैं, जो खोजकी पुस्तकोंमें यास-अनायास आ पैठती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके ग्रन्थोंमें प्रायः इस मान्यतापर बल दिया जाता रहा है कि हिन्दू साम्राज्यकी एकच्छत्र बड़ी इकाईका अन्तिम

स्वामी सम्राट् हर्षवर्द्धन था, जिसकी मृत्यु सन् ६४७ ई०में हुई। हर्षवर्द्धनके बाद भारतीय राष्ट्रका झण्डा शासकीय मेरुदण्डसे जो गिरा तो गिरा ही रहा। एकके बाद दूसरे विदेशी दल और वंश आये-गये तथा हमारी धरा और ध्वजको रौंदते रहे—अरब, तुर्क, पठान, मुग़ल, अंग्रेज़ ! लगभग १३ शताब्दियों बाद, १५ अगस्त १९४७को ही, हमारा राष्ट्रध्वज फिर एक बार स्वतन्त्रताके वायुमण्डलमें लहरा पाया है।

पराधीनताकी इन १३ शताब्दियोंके लम्बे व्यवधानमें क्या सचमुच ही हमारा राष्ट्र धराशायी होकर अचेत पड़ा रहा ? क्या यह कल्पना सच है ? 'चौलुक्य कुमारपाल' पुस्तक शताब्दियोंकी लम्बी खाईको कुछ इस तरह भरती है कि हम हर्षके बादकी ६ शताब्दियोंके ध्वंसपर निर्मित नयी खोज और नयी प्रतीतिके ठोस धरातलपर पहुँच जाते हैं। जहाँ हमें १२वीं शताब्दीकी उस गरिमासे साक्षात्कार होता है जो हमारे राष्ट्रकी सतत प्रवाहमयी जीवनी-शक्तिका ज्वलन्त प्रमाण है।

जब हम सोचते हैं कि चौलुक्य कुमारपालने देशके ह्रासोन्मुख वातावरणकी तमसावृत छायामें अपने ३० वर्षके शासनकालमें साम्राज्यका इतना विस्तार किया कि तुर्किस्तानसे मालवदेश तक तथा काठियावाड़से कन्नौज तकके प्रदेश उसके अधीन हो गये तो हम उसकी शासन-योग्यता और अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होते हैं। कुमारपालकी साम्राज्य-परिधिमें कोंकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्चा, भम्भेरी, मारवाड़, मालवा, मेवाड़, कीर, जांगल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर, महाराष्ट्र इत्यादि १८ प्रदेश सम्मिलित थे। और जब हमें इस बातका बोध होता है कि कुमारपालका ३० वर्षका शासनकाल उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वह ५० वर्षका हो चुका था तो हमें उसकी अप्रतिम क्षमतापर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। वास्तविक विस्मयकी बात तो इस महाप्राण-मानवका सारेका-सारा जीवन ही है जो दुर्द्धर्ष संघर्ष, अप्रतिहत प्रेरणा और अक्षय-आस्थासे ओत-प्रोत है। अग्नि और प्रभंजनका यह

दीप्तिपुंज कहाँसे उठा, कहाँ-कहाँ पहुँचा और कहाँ-कहाँ मँडराया ! किस प्रकार इसकी प्रतिभाके निर्माणकारी विस्फोटने दिग्दिगन्तको आगत-अनागतकी सुदूरवर्ती सीमाओं तक आलोकित कर दिया है ! उड़ती हुई विहंगम दृष्टि डालकर देखें ।

कुमारपाल राजकीय कुलमें जन्मा तो किन्तु इस अभिशापके साथ कि उसके प्रपितामह भीमदेवने जिस बकुलादेवीको वरण करके कुमारपालके वंशकी परम्परा डाली थी, वह बकुलादेवी एक नर्तकी थी । कुमारपालके ताऊ सिद्धराज जयसिंहके सन्तान न थी । अतः स्पष्ट था कि जयसिंहके उपरान्त राज्य कुमारपालको मिलेगा । जयसिंहको यह अनुकूल नहीं जँचा कि उसका राज्य ऐसे भतीजेके हाथमें जाये जिसकी शिराओंमें नर्तकीका रक्त है । लिपिबद्ध परम्परा साक्षी है कि जयसिंहने यहाँतक चाहा कि कुमारपालकी जीवन-बेलि सदाके लिए निर्मूल कर दी जाये । कुमारपाल अपने भविष्यके प्रति सशंक हो गया और अपने बहनोई कृष्णदेवकी सहायतासे वह अनहिलवाड़ा छोड़कर भाग खड़ा हुआ । जयसिंहकी इसी दुरभिसन्धिकी भूमिकामें-से कालान्तरमें कुमारपालकी अभिवृद्धिकी लता फूटी ! पलायनके इसी क्षणसे कुमारपालने जगत् और जीवनकी खुली पोथीसे ज्ञानसंचय प्रारम्भ कर दिया। बड़ौदा, भड़ौच, कोल्हापुर, कल्याण, दक्षिण-देश, प्रतिष्ठान, मालवा आदि नाना देशों और नाना वेशोंमें घूम-फिरकर कुमारपालने अनेक ज्ञानियों, साधुओं, राजाओं, मन्त्रियों और सैनिक भटोंसे सम्पर्क स्थापित कर लिया । कष्ट भी अनेकों झेले, क्योंकि सिद्धराज जयसिंहके गुप्तचर बराबर पीछा कर रहे थे । कुमारपालने प्रवासमें रहते हुए अपनी जन्मभूमिसे भी बराबर सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न किया । यहाँतक कि एक बार जब वह स्वयं साधुवेशमें अणहिलपुर पहुँचा तो जयसिंहको गुप्तचरों-द्वारा सूचना मिल गयी । उस दिन जयसिंहके पिता कर्णदेवका श्राद्ध-दिवस था । जयसिंहकी आज्ञा हुई कि नगर-देहातके समस्त साधुओंको तत्काल निमन्त्रित किया जाये; कोई छूटने न पाये । कुमारपालको भी

साधुओंकी पंक्तिमें आ खड़ा होना पड़ा । जयसिंह बारी-बारीसे सबके चरण धोता और हाथपर दक्षिणा रखता। जब कुमारपालके पास पहुँचा तो चरणोंकी कोमलता और करतलकी रेखाओंने कुमारपालका आभिजात्य व्यक्त कर दिया। संकेत हो गया कि अनुष्ठानकी समाप्तिपर इस साधुको 'अतिथि' बना लिया जाये। कुमारपाल भी सचेत थे। अब सोचिए उस साहसको और प्रत्युत्पन्न बुद्धिको जिसके द्वारा कुमारपाल उस प्राणान्तक संकटसे बच भागे होंगे।

कुमारपालके जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जहाँ प्राणोंकी संकटमय स्थिति प्राप्त होनेपर उसने अपने अपराजित शौर्य तथा युक्तिदक्षतासे ऐसी स्थितियोंका निराकरण किया है। इस प्रकारकी संकटमय स्थिति एक बार उस समय आयी जब कुमारपालने शासनका श्रीगणेश ही किया था। राज्य प्राप्त होते ही कुमारपालने सारी सत्ताको अपने व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित कर दिया कि सामन्तोंकी स्वेच्छा-चारिताको प्रतिबन्धोंसे सीमित होना पड़ा। योजना बनी कि जिस समय राजाकी सवारी निर्दिष्ट द्वारपर आये, नियुक्त हत्यारे उसपर टूट पड़ें। पर हत्यारोंको यह अवसर न मिल पाया, क्योंकि मालूम नहीं किस प्रेरणा या किस चर-व्यवस्थासे प्रभावित होकर कुमारपालने हाथीका मुँह दूसरे द्वारकी ओर उन्मुख कर दिया था। कुमारपालका अनलोद्धत व्यक्तित्व अनेक समकालीन राजाओंके लिए भी ईर्ष्याका कारण बन गया था और भारी हो गया था। एक ओर सपादलक्षके चौहान राजा अणने वर्तमान नागौरकी ओरसे चढ़ाई की तो दूसरी ओरसे उज्जैनके राजा वल्लालने और तीसरी ओरसे चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने आक्रमण कर दिया। इस षड्यन्त्रमें कुमारपालका प्रधान सैनिक बहड़ भी सम्मिलित हो गया, जिसकी शूरताका एक विशिष्ट अंग यह था कि उसकी दहाड़से हाथी विचलित हो जाते थे। यहाँतक कि कुमारपालका निजी हाथी कलहपंचानन भी उस दहाड़से विकल हो उठता था। बहड़ने कुमारपालके महावत कलिंगको भी लोभ देकर फोड़ लिया। योजना निश्चित हुई कि युद्ध-

क्षेत्रमें बहड़की दहाड़ सुनकर जब कुमारपालका हाथी कलहपंचानन रोषसे आगे बढ़ेगा तो महावत कलिंग ऐसी स्थितिमें हाथीको ले आयेगा कि बहड़ अपने हाथीपरसे कूदकर कुमारपालके हाथीपर चढ़ आये और कुमारपालका बध आसानीसे सम्भव हो जाये। पर, यह सब सम्भव न हो पाया, क्योंकि जब युद्धक्षेत्रमें बहड़का हाथी कुमारपालके हाथीके मुक़ाबलेमें आया और बहड़ने ज्यों ही छलांग मारकर कुमारपालके हाथीपर आना चाहा तो पाया कि कुमारपालका हाथी पीछे हटा लिया गया था क्योंकि कलिंगका स्थान किसी दूसरे महावतने ले लिया था, और बहड़की दहाड़को लक्ष्य करके प्रतिरक्षा रूपमें हाथीके कानोंपर पट्टी बँधी हुई थी। बहड़ दो हाथियोंके बीच आकर कुचला गया और कुमारपालकी विजय हुई।

वीरत्व तो मानो कुमारपालकी धमनियोंमें प्रवाहित था। जयसिंहकी मृत्युके बाद जब राजसिंहासनके दो प्रतिद्वन्द्वियोंमें-से एकका चुनाव होना था तो परिषद्के संचालक-द्वारा यह प्रश्न पूछे जानेपर कि राज्यकी रक्षा किस नीति-द्वारा होगी, जहाँ कुमारपालके प्रतिद्वन्द्वीने विनीत भावसे यह कहा था कि 'जिस प्रकार आप नीति-निपुण महानुभाव मार्ग-दर्शन करेंगे' वहाँ तेजस्वी कुमारपालने स्फूर्तिसे खड़े होकर, छाती तानकर, उक्त प्रश्नके उत्तरमें अपनी तलवार ऊँचे उठा दी थी और कहा था 'राज्यकी रक्षा मेरी भुजाओंके बलपर आश्रित यह तलवार करेगी।' इसी वीरत्वका दूसरा पहलू था आत्मसम्मान जो कभी-कभी अत्यन्त कठोर रूपमें व्यक्त होता था। कुमारपालका वीरत्व राज्यके प्रति अपमान भावको तो क्या व्यंग्यको भी नहीं सहन कर पाता था। कुमारपालके बहनोई जिस कृष्णदेवने उसकी पग-पगपर सहायता की थी, यहाँतक कि उसे राजगद्दी दिलवायी थी, उस कृष्णदेवको कुमारपालने इसलिए प्राणदण्ड दे दिया कि वह कुमारपालको बार-बार व्यंग्य-बाणोंसे आहत करता था और उसकी पूर्वावस्थाकी खिल्ली उड़ाया करता था। 'दीपकको मैंने जलाया है, इसलिए क्या उसमें मुझे अपनी उँगली दे देनेकी धृष्टता करनी चाहिए ?'

यह तथ्य कृष्णदेवने न समझा, इसीलिए दीपककी ज्वालाने उसे भस्म कर दिया। एक और घटना लीजिए। कुमारपाल-द्वारा बार-बार वर्जन करनेपर भी कोंकणका राजा मल्लिकार्जुन अपने लिए 'राज्यपितामह'की उपाधि प्रयुक्त करता रहा। अन्तमें एक दिन यह होकर ही रहा कि कुमारपालके सेनापति अम्बडने मल्लिकार्जुनके छिन्न सिरको स्वर्णपत्रमें लपेटकर श्रीफलकी भाँति कुमारपालकी सेवामें उस समय प्रस्तुत किया जब ७२ राजा राज-सभामें उपस्थित थे। कुमारपालकी दृष्टि इतनी तल-स्पर्शी थी और न्यायबुद्धि इतनी कठोर कि शासनके अंग-उपांगोंको सदा ही स्वस्थ और तत्पर रहना पड़ता था। कोई भी कहीं चूका और कुमारपालकी कठोर दृष्टि उसपर पड़ी। 'राजघटत्त' चहड इसका उदाहरण है। जिस बहडका ऊपर उल्लेख हो चुका है, उसका छोटा भाई चहड सदा ही कुमारपालका आज्ञानुवर्ती रहा। चहडके सेनापतित्वमें साँभरपर इसलिए चढ़ाई की गयी कि साँभर राज्यकी सेनाएँ कुमारपालके प्रतिपक्षियोंकी सहायता करती थीं। चहडने साँभरको जीत तो लिया किन्तु अत्यधिक व्ययके उपरान्त। कुमारपालका आदेश हुआ कि चहडको 'राजघटत्ता'की उपाधि दी जाये! दण्ड-विधानके इतिहासमें कुमारपालकी यह सूझ भी अविस्मरणीय होनी चाहिए।

महान् व्यक्तियोंका चरित्र एकांगी नहीं होता। कुमारपाल कूटनीतिके क्षेत्रमें जितना कठोर था, जीवनके धरातलपर वह उतना ही सहृदय और कोमल भी! कुमारपालके वैचित्र्यपूर्ण चरित्रका अनुमान इस बातसे लग जायेगा कि जिस 'पितामह'की उपाधि-प्रयोगकी उद्दण्डताके फलस्वरूप मल्लिकार्जुनको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा, वही 'पितामह'-उपाधि कुमारपालने उस वणिक् सुभट अम्बडको प्रदान कर दी, जिसकी लपलपाती तलवारने मल्लिकार्जुनके सिरको कमल-पुष्पकी भाँति काट दिया था। शासन-संचालनकी सुचारुता और राजकीय संगठनकी दृढ़ताके लिए कुमारपालने जो व्यवस्था की थी, वह इतनी पूर्ण, व्यापक तथा निर्दोष है कि उसमें आजकी गणतन्त्रात्मक आधुनिकताका आभास मिलता है। पुस्तकमें यथा-

स्थान इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

कुमारपालके जीवनमें यदि हमने संघर्ष, पराक्रम, कूटनीति, शासकीय योग्यता और विजय ही देखी तो मानना चाहिए कि हमने उसकी महत्ता और सफलताका अधिकांश उपेक्षित कर दिया। कुमारपालकी महत्ता इस बातमें है कि उसने राजनीतिको कठोर वस्तुस्थिति और याथार्थ्यके आधारपर संचालित करते हुए भी, प्रजाके व्यावहारिक जीवनको सामूहिक अहिंसा, जीवदया, करुणा और चरित्र-गत निर्मलताके आधारपर स्थापित किया। स्वयं जैन-धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने राज्यमें इतनी उदार सहिष्णुता बरती कि प्रजाका मन मोह लिया। यही कारण है कि उसके नामके साथ जहाँ एक ओर जैन-धर्म-सूचक 'परम-भट्टारक' और 'आर्हत' उपाधियोंका प्रयोग होता है, वहाँ दूसरी ओर अनेक शिला-लेखोंमें उसे 'उमापति-वरलब्ध'की उपाधिसे भी स्मरण किया गया है। वास्तवमें गुजरातकी सांस्कृतिक परम्परामें यह बात सहज-सिद्ध हो गयी थी कि वहाँ जैन-धर्म और शैव-धर्म साथ-साथ रहते थे और फलते-फूलते थे। यों तो शिव और शैव-धर्म, अपने प्राचीनतम मूल रूपमें 'जिन' और 'जिन धर्म'के ही परिवर्तित रूप हैं; किन्तु कालान्तरके अति परिवर्तित रूपमें भी और दक्षिण-भारतके रक्त-रंजित धार्मिक संघर्षोंके दिनोंमें भी गुजरातने दोनों धर्मोंकी पारस्परिक सहिष्णुताको प्रायः अक्षुण्ण रखा है।

हमारे आजके युगमें महात्मा गांधी-जैसी सर्व-धर्मसहिष्णु, अहिंसोपासक विभूतिका गुजरातमें ही प्रादुर्भाव होना कोई आकस्मिक घटना नहीं। ऐसे अशेष मानवतावादी राजनीति-नियन्ता ऋषिको जन्म देनेकी पात्रता गुजरातकी ही संस्कृति-पूत गौरवमयी धरामें विशेष रूपसे थी। प्रागैतिहासिक कालके परमयोगी कृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ, १२वीं शताब्दीके राजर्षि कुमारपाल और २०वीं शताब्दीके महात्मा गांधी एक ही विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराके अविच्छिन्न अंग हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ कुमारपालकी ऐतिहासिक महत्ता और उसके जीवनकी

गौरव-गरिमाका बखान करता है, किन्तु वास्तव बात यह है कि कुमारपाल स्वयं एक महत्तर ज्योतिपुंजकी छाया मात्र है। वह तो एक कण है जो किसी प्रचंड प्रतिभाके लीला-विलाससे धरापर छिटक पड़ा है। उस ज्योति-पुंज और मूर्त प्रतिभाका नाम है—आचार्य हेमचन्द्र जिन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनके सम्बन्धमें कहा गया है—

'क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्व्याश्रया-
ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥''

आचार्य हेमचन्द्रकी जिस विचक्षण प्रतिभा-द्वारा प्रसूत नये-नये प्रणयनों-का संकेत ऊपरके श्लोकमें दिया गया है उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

व्याकरणग्रन्थ—सिद्धहेम व्याकरण, सिद्ध हैम लिंगानुशासन, धातुपारायण।
शब्दकोश—अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थसंग्रह, निघण्टुकोष, देशी नाममाला।
अलंकारग्रन्थ—काव्यानुशासन।
छन्दग्रन्थ—छन्दोनुशासन।
काव्यग्रन्थ—संस्कृत, प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य।
जीवनचरित्र—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र।
दर्शन-योग गुह्य—प्रमाणमीमांसा, योगशास्त्र।

इतना ही नहीं। आचार्य हेमचन्द्रकी गणना भारतके महत्तम ज्योति-षियोंमें होती है। राजनीति और कूटनीतिके तत्त्वोंका ज्ञान भी उनका इतना विशाल और उन तत्त्वोंके सफल प्रयोगकी जन्मजात प्रतिभा भी इतनी अद्‌भुत थी कि देखकर चकित हो जाना पड़ता है। उनका जीवन सर्वथा अकिंचन, निःस्व, तपःपूत और कल्याण-विधायक था ही। मनमें एक कल्पना उठती है। आचार्य चाणक्यकी प्रतिभाको धर्मकी प्रेरणासे परिचालित करके, अपार ज्ञान और दर्शनकी बहुमुखी उपलब्धियोंसे पूरित करके एवं अद्‌भुत भव्यताके आलोकसे परिवेष्टित करके जिस प्रणम्य पुरुष-

की कल्पना हम करेंगे वह सम्भवतया आचार्य हेमचन्द्रके व्यक्तित्वकी झलक दिखा सके। इन्हीं आचार्य हेमचन्द्रका वरदहस्त कुमारपालके शीशपर सदा रहा है। इन्हींके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कुमारपालने अपने राज्यमें हिंसाका निषेध किया; द्यूत, मांसाहार, मृगया आदि व्यसनोंसे पराङ्मुख होनेकी प्रेरणा प्रजाको दी। निःसन्तान पुरुषकी मृत्युके बाद उसका धन-धाम राजकोषमें चले जानेकी परम्परागत नीतिके कारण विधवाओंकी जो दुर्दशा होती थी, उससे द्रवित होकर कुमारपालने उस प्रथाको बन्द करवाया। कुमारपालने प्रजाकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया; औषधालयों, देवालयों, पान्थशालाओं और कूप-तड़ागोंका निर्माण करवाकर जनताको अनेक प्रकारकी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं। कुमारपालके शासनमें न कभी दुर्भिक्ष पड़ा, न कोई महामारी संघातक रूपसे फैली। अभिनव साहित्य-सृजन, कलात्मक निर्माण, सांस्कृतिक अभ्युत्थान, आर्थिक संवर्धन, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजारंजन आदि सभी दिशाओंमें कुमारपालके शासनकी सफलता परिलक्षित होती है।

विद्वान् लेखकने समस्त इतिवृत्तको अधिकसे-अधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया है। यदि परम्परागत ग्रन्थ-सन्दर्भों एवं प्रचलित जन-श्रुतियोंके आधारपर कहीं किसी ऐसी प्रतीतिका रसोद्रेक हो गया हो जो इतिहासके शुष्क ठोसपनको मांसल बनाता हो तो लेखक और ग्रन्थमाला-सम्पादक आलोचकोंकी सहानुभूति चाहेंगे। इतिहासकी नयी लीक डालनेवालोंके लिए जो व्यक्ति श्रमिकोंके अग्रिम दलकी भाँति रास्ता साफ़ करनेका काम करें, उनपर उतना ही तो उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जितनी उनकी क्षमता हो।

इतनेपर भी हम आश्वस्त हैं कि भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रकाशन इतिहासवेत्ताओं और साधारण पाठकोंकी दृष्टिमें उसी प्रकार समादृत होगा, जिस प्रकार उत्तरप्रदेशीय सरकारकी दृष्टिमें हुआ है।

लखनऊ
शरत् पूर्णिमा
१९५४

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थमाला

भूमिका

भारतके मध्यकालीन इतिहासमें महाराजाधिराज परमभट्टारक चौलुक्य कुमारपालका विशिष्ट महत्त्व है। सम्राट् हर्षवर्द्धनके पश्चात् चौलुक्य कुमारपाल बारहवीं शतीमें भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् हुए, जिन्होंने पश्चिमोत्तर तथा पश्चिमी भारतकी व्यापक राज्यसीमामें एक शासनसूत्र और सार्वभौम राजतन्त्रकी स्थापना की। मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें इतनी बृहत् और विशाल राजनीतिक इकाई एक शासकके अधीन पुनः दृष्टिगत नहीं होती। चौलुक्य कुमारपालकी राज्यसीमा आधुनिक गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, दक्षिण राजपूताना, मालवा और सिन्ध तक विस्तृत थी। तुर्क-आक्रमणोंके परिणामस्वरूप कालान्तरमें जो पराधीनता आयी, उसके पूर्व भारतीय गौरव, शौर्य, वैभव और विपुलताकी अन्तिम झाँकी, इसी कालमें दृष्टिगोचर हुई। वस्तुतः इस समय चौलुक्य साम्राज्यका विस्तार चरम सीमापर पहुँच गया था।

कुमारपालका राजत्वकाल (सन् ११४२–११७३ ईस्वी) तथा उसका युग साम्राज्य-विस्तार अथवा सफल सैनिक अभियानोंकी शृंखलाके ही कारण महत्त्वपूर्ण हो, ऐसी बात नहीं। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक सभी दृष्टियोंसे उसकी विशेष महत्ता है। यथार्थतः कुमारपालका शासनकाल और युग, देशमें नवीन राष्ट्रीय चेतना, नव सामाजिक सुधार, कलापूर्ण निर्माण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरणके युगारम्भकी दृष्टिसे, भारतीय इतिहासमें विशिष्ट स्थान रखता है। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भारतमें तुर्क-आक्रमणोंके प्रथम प्रहारसे जो राजनैतिक विशृंखलता व्याप्त हो गयी थी, उसे दूर करनेमें कुमारपाल

बहुत अंशों तक सफल हुआ। यही कारण था कि उसके उत्तराधिकारियोंने गोरीके गुजरातपर आक्रमणका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर उसे पराजित किया। इस कालमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंका सुव्यवस्थित संघटन था तथा प्रशासनके विविध अंगोंकी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी।

धर्म और संस्कृतिके अभ्युत्थानकी दृष्टिसे भी इस युगका कुछ कम महत्त्व नहीं। जैनधर्मका अभिनव प्रवर्तन और प्रचार इस युगकी विशेष घटना है। जैनर्धमका यह उत्कर्ष किसी कटु भावनाके साथ नहीं, अपितु अद्भुत एवं असाधारण धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना-सहित हुआ। गुजरातमें इस समय जैनधर्मके साथ शैव तथा अन्य सम्प्रदायोंकी भी उन्नति होती रही। जैनधर्म भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अंग हो गया। इसने देशके कोटि-कोटि जनोंके संस्कारों-विचारोंको शताब्दियों पर्यन्त प्रभावित किया। छह सौ वर्षोंके पश्चात् पश्चिमी भारतके इसी भूखण्डमें महात्मा गांधी-जैसी युगावतार भारत-विभूतिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसने देशमें अपने अहिंसा सिद्धान्तसे अभिनव क्रान्ति की और राष्ट्रका कायापलट कर दिया। देखा जाये तो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें, अहिंसा-सिद्धान्तके इस नूतन प्रयोग एवं विकास-परम्पराका बहुत कुछ श्रेय, बारहवीं शताब्दी-में हुए इस धार्मिक-सांस्कृतिक अभ्युत्थानको ही है।

सामाजिक नवजागरणमें चौलुक्य कुमारपालका शासनकाल एक नवीन सन्देशका वाहक रहा है। इस समय समाजमें प्रचलित हिंसा, मद्यपान, मांसाहार, द्यूत आदि व्यसनोंपर कठोर नियम बनाकर नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लगाये गये जो आधुनिक जनसत्तात्मक सरकारों-जैसे प्रगतिशील विधानोंसे अद्भुत साम्य रखते हैं। कुमारपालने मृतधनापहरण नियमका निषेध किया जिसके द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो जाता था। आर्थिक दृष्टिसे यह काल, वैभव-सम्पन्नता और समृद्धताका युग था। गुजरात, काठियावाड़ और कच्छके बन्दरगाहोंमें आयात-निर्यात व्यापारके निमित्त, देश-विदेशके व्यापारिक पोत आते

थे। चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी, इस समय संसारके व्यापारका केन्द्र बनी हुई थी। देशमें शान्ति और सम्पन्नताके फलस्वरूप इस समय भव्य मन्दिरों तथा विशाल जैन-विहारोंके प्रचुर संख्यामें निर्माण हुए, जिनके अवशेष आज भी स्थापत्य और शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन हैं। आबूके संसार-प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसी युगकी निर्माण-कलाके नमूने हैं। विमलशाह (सन् १०३१ ई०) और तेजपाल (सन् १२३० ई०) द्वारा निर्मित आबू पहाड़पर श्वेत संगमरमरके मन्दिर चौलुक्यकालीन शिल्प-सौन्दर्य और स्थापत्य-कलाके चरम विकासके सजीव उदाहरण हैं। आबू पर्वतपर इन मन्दिरोंके निर्माणके लिए शिलाखण्डों तथा अन्यान्य साधनोंका एकत्रीकरण और निर्माण, इस युगकी असाधारण निर्माणदक्षता तथा शिल्प-कौशलके परिचायक हैं।

कुमारपालने सैकड़ों मन्दिरों तथा विशाल विहारोंका निर्माण कराया, जिनमें-से अनेक आज भी विद्यमान हैं। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर-का पुनर्निर्माण कुमारपालके शासनकालकी चिरस्मरणीय घटना है। इनके अवशेष आज भी उस कालकी कलाका स्मरण दिलाते हैं, जो राष्ट्रके गर्व और गौरवकी वस्तु है। चौलुक्यकालीन गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतकी विभिन्न कलानिधियाँ बहुत दिनों तक उपेक्षा और उदासीनताके फलस्वरूप अनादृत पड़ी हुई थीं। हर्षका विषय है कि अब इनकी सुरक्षा और संरक्षणका महत्त्व समझा जाने लगा है। जैन भण्डारोंमें पड़ी अमूल्य तथा दुर्लभ सामग्री अब प्रकाशमें आने लगी है। इस युगकी कलाकृतियाँ केवल गुजरातमें ही नहीं, अपितु राजस्थान मण्डलमें भी विस्तृत एवं विकीर्ण हैं। गुजरात, मालवा, मेवाड़, पूर्व खानदेश आदिके व्यापक क्षेत्रमें इस युगकी कला-रचनाएँ पायी जाती हैं। सिद्धपुर स्थित रुद्रमहालयके ध्वंसावशेषमें विद्यमान, नृत्य करती हुई मूर्तियोंके समान ही आकृतियाँ, आबूके निकट देलवाड़ाके स्तम्भोंपर भी निर्मित हैं। तारंगा पहाड़ीपर कुमारपाल-द्वारा बनवाये विशाल अजितनाथ मन्दिरके पृष्ठभागमें बनी संगमरमरकी जालियाँ

शिल्पकला और कौशलकी उत्कृष्टतम निदर्शन हैं। इसी प्रकारकी संगमरमरकी जालियाँ अनेक शताब्दियोंके पश्चात् सुलतानोंके कालमें बनी मसजिदोंमें भी पायी जाती हैं। इससे चौलुक्यकालीन शिल्पकलाकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्यके क्षेत्रमें महान् आचार्य हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल, जयसिंह सूरि आदिकी सतत साधनाने एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागर्तिके अध्यायका समारम्भ किया। आचार्य हेमचन्द्रके नेतृत्व एवं निर्देशमें इस समय साहित्य-निर्माणके महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इस समय लिखे प्रभूत ग्रन्थोंकी ताड़पत्रीय प्रति तथा पाण्डुलिपियाँ पाटन तथा अन्य जैन भण्डारोंमें भरी पड़ी हैं। अब इनकी सहेज-संभाल हो रही है और अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन भी हो रहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषामें प्रभूत साहित्य-निर्माणके साथ, इसी समय नागरीका जन्म एवं विकास भी हुआ। इस समय व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदि ग्रन्थोंके प्रणयन हुए। इनमें आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणका अत्यधिक महत्त्व है।

जैन भण्डारोंसे प्राप्त ताड़पत्रीय प्रतियों तथा पाण्डुलिपियोंसे इस कालमें हुई महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना तथा चित्रकलाके विकासका भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है। इन्हीं ताड़पत्रीय प्रतियोंमें चौलुक्य कुमारपाल तथा आचार्य हेमचन्दके चित्र प्राप्त हुए हैं। पाटनके संघवीणा भण्डारसे प्राप्त महावीरचरित्रकी ताड़पत्रीय प्रति (वि० सं० १२९४)में चौलुक्य कुमारपाल तथा जैन महापण्डित आचार्य हेमचन्द्रके लघु प्रतिकृति चित्र मिले हैं। इसी प्रकार शान्तिनाथ भण्डारसे प्राप्त दशवैकालिका लघुवृत्तिकी सन् ११४३ ई० की ताड़पत्रीय प्रतिमें चौलुक्य कुमारपाल तथा हेमचन्द्राचार्यके लघुचित्र अंकित हैं। महावीरचरित्रकी प्रतिमें हेमचन्द्राचार्य अपने शिष्योंके मध्य सिंहासनारूढ़ हैं। उनके पीछे एक शिष्य हाथमें वस्त्र लिये हुए आचार्यकी अभ्यर्थनामें खड़ा है। आचार्यके

सम्मुख एक शिष्य पुस्तक लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहा है। चौलुक्य कुमार-पालका चित्र भी इसी ताड़पत्रीय प्रतिमें अंकित है। इसमें कुमारपाल हेम-चन्द्राचार्यके सम्मुख अभ्यर्थनाकी मुद्रामें बैठे हैं। वह आचार्य हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। वस्त्रयुक्त उनके दोनों हाथ उठे हुए हैं। दाहिना पैर भूमिपर स्थित है, बायाँ भूमिसे कुछ उठा हुआ है। वह नीले वर्णका जरीदार वस्त्र धारण किये हुए हैं। इसी युगकी चित्रकलाकी परम्परामें कल्पसूत्र भी आते हैं। इनकी कलात्मकता और श्रेष्ठता सर्वविदित है। वस्तुतः साहित्य और विभिन्न कलाओंका इस युगमें सर्वतोमुखी अभ्युदय एवं उत्कर्ष हुआ।

इन विवरणों तथा तथ्योंसे स्पष्ट है कि बारहवीं शताब्दीके भारतीय इतिहासमें गुजरातके चौलुक्य महान् शक्तिशाली और प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक थे। इनमें सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालके शासनकाल अत्य-धिक महत्त्वके हैं। कुमारपालने तो अपनी राज्यसीमा पूर्वमें गंगा तक विस्तृत-विस्तीर्ण कर ली थी। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यके निर्माता और ऐतिहासिक महापुरुषका, शिलालेखों तथा नवीन ऐतिहासिक अनुसन्धानोंके आधारपर, वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार विस्तृत एवं व्यवस्थित इतिहास-लेखन, युगकी माँग है। भारतीय इतिहासके उज्ज्वल नक्षत्रों और महान् राष्ट्र-निर्माताओंका स्वरूप अब भी अज्ञात तथा रहस्यमय बना रहे, यह उचित नहीं। राष्ट्रीय पुनर्जागरणके इस युगमें आवश्यक है कि भारतके गौरवशाली अतीतके राष्ट्र-निर्माताओंके इतिहास, अनुशीलन और शोधके अनन्तर वैज्ञानिक पद्धतिपर लिखे जायें। प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन इसी दिशा-में एक प्रयत्न है। इसके लेखनमें मेरुतुंग, हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल तथा जयसिंहके संस्कृत-प्राकृतिक भाषामें रचित ग्रन्थोंके अतिरिक्त, कुमार-पालसे सम्बन्धित उन बाईस शिलालेखोंकी भी सहायता ली गयी है जिनसे इस इतिहासपर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही तत्कालीन स्मारकों, मन्दिरों और विहारोंके अवशेष भी मिले हैं, जिनसे कुमारपाल और

उसके युगके इतिहास-लेखनमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अनेक मुसलमान लेखकोंके विवरणोंमें भी कुमारपाल और उसके समकालीन इतिहासका उल्लेख मिलता है। चौलुक्य शासकोंके सिक्के दुर्लभ और अप्राप्य हैं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है, जो जयसिंह सिद्धराजकी बतायी जाती है। कुमारपालीय मुद्राका भी उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्धमें पाटन, सहस्रलिंग तालाब आदिके निकट उत्खननसे नवीन प्रकाशकी आशा की जाती है।

यह तो हुई पुस्तकके अन्तरंगकी बात। अब इसके बहिरंगपर भी संक्षेपमें चर्चा हो जानी चाहिए। चौलुक्य कुमारपालके इतिहासको सहज और रसमय बनानेके लिए तत्कालीन कलाके अवशेषोंके अनुकृति चित्र प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें दिये गये हैं। ये चित्र उस अध्यायमें वर्णित विषयके द्योतक तो हैं ही, तत्कालीन कलाकी झाँकी भी प्रस्तुत करते हैं। प्रथम अध्यायमें सोमनाथ मन्दिर तथा तत्कालीन पाण्डुलिपिका अंकन है तो द्वितीयमें समुद्र, चन्द्रमा और कुमुदिनी प्रतीकात्मक रूपसे चौलुक्योंके चन्द्रवंशी होनेका परिचय देते हुए उनकी उत्पत्तिका संकेत करते हैं। तृतीय अध्यायके प्रारम्भका चित्र तत्कालीन समाजमें शिक्षाके स्वरूप और पद्धतिका परिचायक है। जैनमुनि किस प्रकार उस समय अध्यापन करते थे, इसका अंकन इसमें हुआ है। चतुर्थ अध्यायका चित्र कुमारपालके समयके राजदरबार तथा वेष-भूषाके वर्णनके आधारपर प्रस्तुत किया गया है। इसकी पृष्ठभूमिमें देलवाड़ा मन्दिरके कलापूर्ण स्तम्भोंकी अनुकृति प्रदर्शित है। पाँचवें अध्यायमें चौलुक्यकालीन चित्रोंके आधारपर सैनिक अभियानका स्वरूप अंकित है और तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र चित्रित किये गये हैं। छठें अध्यायके चित्रांकनमें छत्र, सिंहासनके साथ राजमुकुट और राजशक्तिकी प्रतीक तलवार अंकित है। इस चित्रमें अलंकरण और वेष-भूषा तत्कालीन वर्णनके आधारपर हैं। सातवें अध्यायमें व्यापारिक पोत, ध्वजा-पताका युक्त भवनोंका चित्रण कर जहाँ

उस कालकी आर्थिक सम्पन्नताका संकेत किया गया है, वहीं एक ओर तत्कालीन साहित्यमें वर्णित स्त्रियोंकी वेश-भूषा, वस्त्र-सज्जा तथा अलंकारोंकी रूपरेखा अंकित है। आठवें अध्यायका चित्र विश्वप्रसिद्ध देलवाड़ा मन्दिरके श्वेत संगमरमरकी कलापूर्ण भीतरी छतकी अनुकृति है। साहित्य और कलाके नौवें अध्यायका प्रारम्भ, वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वतीके चित्रसे हुआ है। अन्तिम और दसवें अध्यायके आरम्भमें आबू पहाड़ स्थित जैन मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी अलंकृत मेहराब है, जो चौलुक्यकालीन शिल्प-कौशलका उत्कृष्ट निदर्शन है।

अन्तमें जिन विद्वानों और महानुभावोंकी प्रेरणा, निर्देश तथा परामर्शसे इस ग्रन्थको प्रस्तुत करनेमें मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। उत्तरप्रदेश राज्य सरकार तथा उसकी हिन्दी समितिने सन् १९५२ ई०में इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपिपर ७००)का पुरस्कार प्रदान कर जो प्रोत्साहन दिया है, उससे मुझे बड़ा बल मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके इण्डोलाजी कालेजके प्रिन्सिपल तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिके प्रधान श्रद्धेय डॉक्टर राजबली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट्०ने आमुख लिखने तथा ग्रन्थ-लेखनके समय सतत निर्देश देनेकी जो महती कृपा की है, उसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्रने, हेमचन्द्रके तथा कुमारपाल सम्बन्धी अनेक संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंका बोध न कराया होता तो यह ग्रन्थ इस रूपमें प्रस्तुत हो पाता, कहना कठिन है। लोकोदय ग्रन्थमालाके विद्वान् और यशस्वी सम्पादक बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, एम० ए०ने इसे सुन्दर, सुपाठ्य और अद्यतन बनानेके लिए जिस संलग्नता और श्रमसे इसकी पाण्डुलिपिका अध्ययन कर परामर्श दिया तथा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री साहित्य-मर्मज्ञ आदरणीय गोयलीयजीने, इस ग्रन्थमें तत्कालीन कलाके चित्रोंको सम्मिलित करनेकी सुझाव-सुविधा प्रदान कर, पुस्तकके सुन्दर मुद्रणकी व्यवस्था की—इसके लिए मैं इन दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक

कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। चित्रकार श्री अम्बिका प्रसाद दुबे तथा कलाकार मुहम्मद इस्माइल साहबने क्रमश:, इस ग्रन्थके दस अध्यायोंके चित्र तथा आवरण-पृष्ठकी कलात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की है, एतदर्थ वे हार्दिक धन्य-वादके पात्र हैं। पुस्तक जैसी बन पड़ी है, सामने है। इसकी त्रुटियोंसे परिचित होना, मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।

रथयात्रा, २०११ वि०
व्यास-निवास, काशी

—लक्ष्मीशंकर व्यास

द्वितीय संस्करणकी भूमिका

चौलुक्य कुमारपालका द्वितीय परिवर्धित और संशोधित संस्करण प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस संस्करणमें पिछले वर्षोंमें प्राप्त नयी सामग्रीका उपयोग करनेका प्रयत्न किया गया है। विशेष कर 'साहित्य और कला' के अन्तर्गत यथेष्ट नवीन सामग्री दी गयी है, जो आशा है सामान्य इतिहास-प्रेमियोंके साथ ही इस युगके इतिहासके अध्येताओंके लिए विशेष उपयोगी होगी।

पुस्तकके प्रथम संस्करणका विद्वानों तथा इतिहास-प्रेमियोंने जैसा स्वागत किया है, उसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। यह पुस्तक भारतीय इतिहासकी स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओंके अध्ययन-अध्यापनमें भी सहायक सिद्ध हुई है तथा राष्ट्रभाषा हिन्दीमें तत्कालीन युगके प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थके अभावकी पूर्ति करती है। द्वितीय संस्करणकी परिवर्धित सामग्रीसे पुस्तक और अधिक उपयोगी बन गयी है। जिन विद्वानों तथा सुविज्ञ समीक्षकोंने पुस्तकके सम्बन्धमें अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं उन सबके प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

—लक्ष्मीशंकर व्यास

विषय-क्रम

●

ग्रन्थमें व्यवहृत संक्षिप्त नाम

ए० के० के० : एण्टीक्यूटीज़ ऑव कच्छ एण्ड काठियावाड़ ।

ए० ए० के० : आइन-ए-अकबरी ।

ए० एस० आई० डब्लू० सी०: आर्कियॅलॉजिकल सर्वे इण्डिया वेस्टर्न सर० ।

बी० एच० जी० : बेली हिस्ट्री ऑव गुजरात ।

बी० जी० : बाम्बे गज़ेटियर ।

बी० पी० एस० आई० : प्राकृत एण्ड संस्कृत इन्सक्रिप्शन्स ।

डी० एच० एन० आई० : डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया ।

आर० ए० आर० बी० पी० : रिवाइज्ड एण्टीक्वेरीयन रिमेन्स बाम्बे प्रेसि० ।

एच० एम० एच० आई० : हिस्ट्री ऑव मेडिवियल हिन्दू इण्डिया ।
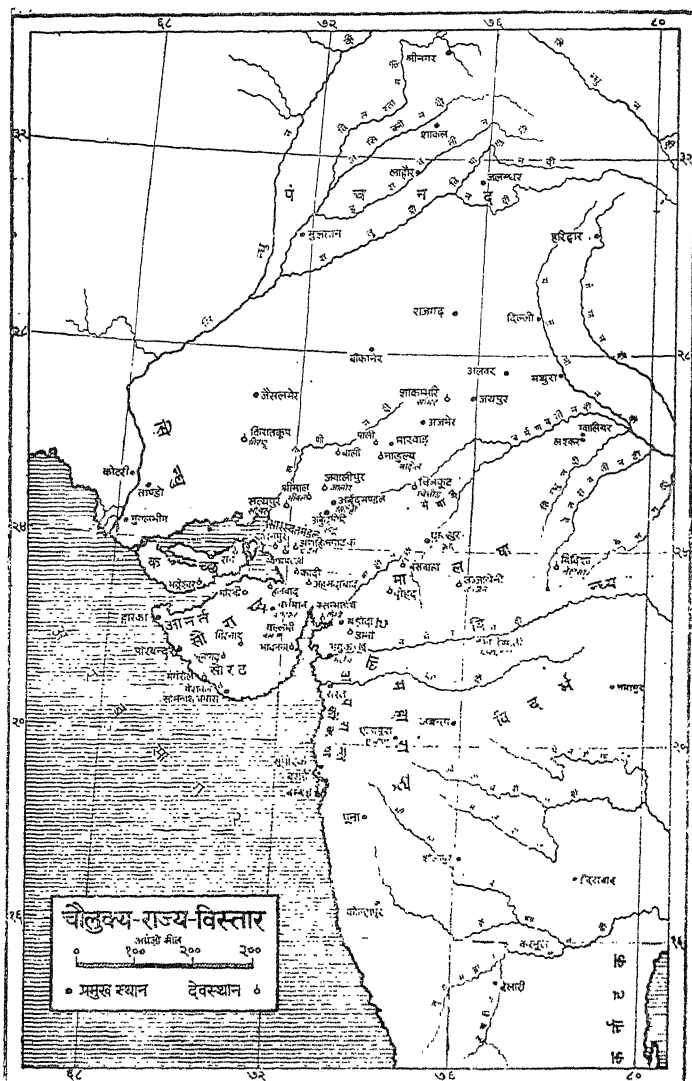
साधारणत: लोगोंकी ऐसी धारणा रही है कि प्राचीन भारतीय इतिहासको क्रमबद्ध रूपसे प्रस्तुत करनेके निमित्त उपयुक्त ऐतिहासिक सामग्रियों तथा तथ्योंका अभाव है। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर,[1] डॉक्टर फ्लीट[2]

१. मैक्समूलर : प्राचीन संस्कृत साहित्यका इतिहास : पृष्ठ ९।

२. डॉक्टर फ्लीट : इम्पीरियल गजेटियर ऑव इण्डिया : द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३।

तथा श्री एलफिनिस्टनका यह अभिमत रहा है कि प्राचीन भारतीय सदा परलोकके ध्यानमें ही निमग्न रहा करते थे और उन्हें इहलोककी कोई चिन्ता न रहती थी। यही कारण है कि उन्होंने इतिहासकी ओर ध्यान ही न दिया। अवश्य ही यह धारणा उस समय तक अल्पाधिक अंशमें मान्य थी जब तक संस्कृत साहित्यकी छानबीन और प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोंका अनुसन्धान तथा उत्खनन नहीं हुआ था। किन्तु, ऐतिहासिक साधनों और सामग्रियोंके अनुसन्धान एवं आविष्कारके पश्चात् प्राचीन भारतीय इतिहासके अन्धकारमय अतीतपर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ा है। सौभाग्यसे गुजरातके सोलंकी महाराजाधिराज कुमारपालके इतिहास-निर्माण के लिए पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। इन ऐतिहासिक सामग्रियोंमें संस्कृत तथा प्राकृत भाषाके, ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्राएँ तथा विदेशी यात्रियोंके ऐसे विवरण भी हैं, जो कुमारपाल तथा उसके समकालीन इतिहासका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। तत्कालीन स्मारक तथा भवन जिनके अवशेष अब तक प्राप्य हैं, कुमारपालके इतिहास-निर्माण में पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य

(१) **प्राकृत द्व्याश्रय काव्य (कुमारपालचरित)**: यह कुमारपालके धर्मगुरु हेमचन्द्र-द्वारा लिखित है। इसका नाम द्व्याश्रय इसलिए पड़ा कि ग्रन्थकर्ताका उक्त काव्य-प्रणयनमें दो लक्ष्य था—प्रथम तो संस्कृत व्याकरणके स्वरूपका प्रशिक्षण और दूसरा सिद्धराजके वंशका कथावर्णन। कुमारपालचरित वास्तविक अर्थमें पूर्ण काव्य नहीं अपितु सम्पूर्ण काव्यका एक भाग है। इसके अतिरिक्त बहुत-सी कविताएँ हैं, जिनमें द्व्याश्रय महाकाव्य सम्पूर्ण हुआ है। इस काव्यके प्रथम सात सर्गोंमें कुमारपाल तथा

१. एल्फिनिस्टन : भारतवर्षका इतिहास : नवीन संस्करण : पृष्ठ १२।

अणहिलपुरके राजकुमारोंका वर्णन है। इस महाकाव्यके अट्ठाईस सर्गोंमें प्रथम बीस संस्कृतमें हैं तथा अन्तिम आठ प्राकृतमें। काव्यके प्रारम्भमें राजधानी पाटनका वर्णन है और कुमारपालके सिंहासनारूढ़ होनेके साथ ही उसके राज-दरबारमें विभिन्न प्रान्तोंके प्रशासकोंके प्रतिनिधियोंके उपस्थित होनेका भी विवरण है। प्रथम पाँच तथा षष्ठ सर्गके कुछ भागमें अणहिल-पुर, महाराजकी विशाल सम्पत्ति तथा राजकीय जिनमन्दिरोंके वैभवका विशद वर्णन है। चौलुक्य शासक इन मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्त्तियोंकी किस श्रद्धा तथा उदार भावनासे युक्त हो अर्चना करते थे, इन सर्गोंमें उसका भी उल्लेख है। चौलुक्य नरेशोंके उपवनों तथा वर्ष पर्यन्त राजा और प्रजाके आमोद-प्रमोदोंका भी उक्त सर्गोंमें हृदयग्राही वर्णन मिलता है। षष्ठ सर्गके उत्तरार्धमें कुमारपालकी सेना तथा कोंकण-नरेश मल्लिकार्जुनके मध्य हुए युद्धका वर्णन है, जिसमें मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा अन्त हुआ। इसी सर्गमें कुमारपाल तथा उसके समकालीन नरेशोंके साथ उसके सम्बन्धका भी संक्षिप्त वर्णन है। दो सर्गोंमें नैतिक तथा धार्मिक चिन्तनकी विवेचना है। सप्तम सर्गमें स्वयं कुमारपालके मुखसे आध्यात्मिक चर्चा करायी गयी है और अष्टममें श्रुतदेवी कुमारपालकी प्रार्थनापर उप-देश करती हैं। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम संवत् ११४५ (सन् १०८८-११७२ ईस्वी) में हुआ और निधन विक्रम संवत् १२२९ में। हेमचन्द्रका यह ग्रन्थ चौलुक्य नरेश कुमारपालके जीवन-सम्बन्धी इतिवृत्तकी प्रामाणिक कृति है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख नहीं तथापि उसके राज-जीवनका रेखांकन करनेके लिए इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।[1]

(२) महावीर चरित्र : यह ग्रन्थ भी हेमचन्द्रका लिखा हुआ है। इसमें कुमारपालके जीवनकी बहुत-सी बातोंका विवरण मिलता है। महा-वीर चरित्रमें हेमचन्द्रने कुमारपालकी महत्ताका उल्लेख करते हुए राजा

---

१. मुनि श्री जिनविजयजी : राजर्षि कुमारपाल : पृष्ठ २।

तथा जैनधर्मके भक्त रूपमें उसके अनेकानेक गुणोंका वर्णन किया है। कुमारपालके इतिहासको क्रमबद्ध करनेमें इस पुस्तकका महत्त्व इसलिए विशेष है कि इसमें वर्णित बातोंका पता अन्य किसी साधनसे नहीं लगता। हेमचन्द्र कुमारपालका समसामयिक था और अपने कालका महापण्डित, इसलिए उसके कथनोंपर अविश्वास या सन्देह नहीं किया जा सकता। यह हेमचन्द्रके जीवनकी अन्तिम कृति है। जैनधर्म स्वीकार कर लेनेके बाद कुमारपालका संक्षिप्त किन्तु सारभूत वर्णन इस ग्रन्थमें है।

(३) **कुमारपाल-प्रतिबोध :** प्रसिद्ध जैन साहित्यकार सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोधका प्रणेता है। इस ग्रन्थका प्रणयन उसने विक्रम संवत् १२४१ (सन् ११८५) में कुमारपालके निधनके ग्यारह वर्ष उपरान्त किया। इससे स्पष्ट है कि सोमप्रभाचार्य, कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समकालीन था। कुमारपाल-प्रतिबोधकी रचना उसने कविसम्राट् श्रीपालके पुत्र कविसिद्धपालके निवासमें रहकर की। इस ग्रन्थमें समय-समयपर गुजरातके प्रख्यात चौलुक्यवंशी राजा कुमारपालको हेमचन्द्र-द्वारा दी गयी जैन शिक्षाओंका भी वर्णन है। इनमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार क्रमशः कुमारपाल उक्त उपदेशोंको ग्रहण कर जैन धर्ममें पूर्णरूपेण दीक्षित हो गया। इस ग्रन्थका नामकरण प्रणेताने 'जिनधर्म प्रतिबोध' किया है किन्तु पुस्तकका दूसरा शीर्षक उसने 'कुमार-पाल-प्रतिबोध' रखा है। यह ग्रन्थ मुख्यतः प्राकृत भाषामें लिखा गया है, किन्तु अन्तिम अध्यायमें कतिपय कथाएँ संस्कृत भाषामें हैं। इसका कुछ अंश अपभ्रंशमें भी है। इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य कुमारपाल आदिका इतिहास लिखना नहीं रहा है, अपितु जैनधर्मके उपदेशोंका वर्णन करना रहा है किन्तु उसके साथ ही ऐतिहासिक व्यक्तित्वोंकी कथाएँ भी सम्मिलित कर ली गयी हैं। इस सम्बन्धमें सोमप्रभाचार्यका कथन द्रष्टव्य है—'यद्यपि कुमारपाल तथा हेमाचार्यका जीवनवृत्त अन्य दृष्टिकोणसे अत्यन्त रुचिकर है पर मेरी अभिरुचि केवल जैनधर्मसे सम्बद्ध शिक्षाओंके

वर्णन तक ही सीमित रहना चाहती है। क्या वह व्यक्ति, जो विभिन्न सुस्वादुपूर्ण पदार्थोंसे भरे पात्रमें-से केवल अपनी विशेष रुचिकी ही वस्तुएँ ग्रहण करता है, दोषी ठहराया जा सकता है ?[1], यद्यपि इस ग्रन्थसे बहुत सीमित अंशमें ही ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसके द्वारा जो कुछ भी ज्ञातव्यता प्राप्त होती है, वह अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। सोमप्रभाचार्य, कुमारपालका केवल समकालीन ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनका भी विशेष ज्ञाता था। इस विचारसे 'कुमारपाल-प्रतिबोध'का कुछ कम महत्त्व नहीं। इसमें लगभग बारह हज़ार श्लोक हैं किन्तु ऐतिहासिक सामग्री मुख्यत: २००-२'१० श्लोकोंमें ही मिलती है।

(४) **प्रबन्ध-चिन्तामणि :** प्रबन्ध-चिन्तामणिका रचयिता प्रख्यात जैन पण्डित मेरुतुंग है। इस ग्रन्थमें विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियोंपर प्रबन्ध हैं। सम्पूर्ण पुस्तक पाँच प्रकाशोंमें विभक्त है। सर्वप्रथम विक्रम प्रबन्धमें सातवाहन शिलावर्त भोजराज, वनराज, मूलराज तथा मुंजराज-सम्बन्धी प्रबन्ध हैं। द्वितीय प्रकाशमें भोज भीम प्रबन्धका वर्णन है, तृतीयमें सिद्धराज प्रबन्ध है और चतुर्थमें कुमारपाल प्रबन्ध है, जिसमें वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध भी सम्मिलित है। अन्तिम पञ्चम प्रकाशमें प्रकीर्ण प्रबन्ध हैं। मेरुतुंगसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, राज्यारोहण, चौहानों और अन्य राजाओंसे युद्ध, उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने आदि विषयकी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः प्रबन्ध-चिन्तामणि उन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साध-

१. जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि
तह वि जिणधम्म पडिवोह वंधुरं किं पि जंपेमि
बहु भक्ख जुयांइ वि रसवईऐ मज्झाओ किंचि भुंजंतो
नियं इच्छा-अणुरूवं पुरिसो किं होइ वयणिज्जो
—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३, श्लोक २०-२१

नोंमें एक है जिनकी सहायतासे चौलुक्योंका इतिहास प्रामाणिक आधारपर प्रस्तुत किया जा सकता है। विक्रम संवत् १३६१ (१३०५ ईस्वी) की वैशाखी पूर्णिमाको यह ग्रन्थ वर्द्धमानपुर (आधुनिक बड़वान) में सम्पूर्ण हुआ।[1] इसी नामका एक ग्रन्थ अथवा सम्भवतः उक्त ग्रन्थका ही प्रारम्भ श्री गुणचन्द्र आचार्य 'पण्डितोंके मस्तिष्क'-द्वारा हुआ था। मेरुतुंगने इस सम्बन्धमें स्वयं लिखा है कि प्राचीन गाथाओंके श्रवणसे ही सन्तोष नहीं होता इसीलिए मैंने अपनी पुस्तक प्रबन्ध-चिन्तामणिमें हालके प्रख्यात राजाओंका विस्तृत वृत्त लिखा है। मेरुतुंगने यह भी लिखा है 'उक्त लेखन में यद्यपि पाण्डित्यसे तो नहीं तथापि परिश्रमसे कार्य किया गया है।'

(५) **थेरावली :** थेरावली वह महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें चौलुक्य नरेशोंकी नामावलीके अतिरिक्त उनकी तिथि तथा शासन अवधिके विवरण भी हैं। इस ग्रन्थके प्रणेता भी जैन पण्डित मेरुतुंग ही हैं। इस कृतिमें मुख्यतः संस्कृत भाषामें वंशावली है तथा उत्तराधिकारियोंकी नामावली है। यद्यपि प्रबन्ध-चिन्तामणि ऐतिहासिक ग्रन्थ है और थेरावली नरेशों और उनके समयकी सूची मात्र है तथापि यह अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।[2]

(६) **प्रभावकचरित्र :** इसका प्रणयन श्री प्रभाचन्द्राचार्य-द्वारा हुआ। ये जैन पण्डित थे और इसकी गणना भी जैन ग्रन्थोंमें है। यह कृति द्वादश अध्यायोंमें है। इसके अन्तिम अध्याय 'हेमचन्द्रसूरीचरितम्'में चौलुक्य नरेश कुमारपालका इतिहास है। इस अध्यायसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसका विभिन्न देशोंमें पर्यटन, राज्यारोहण, सैनिक अभियान तथा विजयके प्रसंगोंका सुस्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

(७) **पुरातन प्रबन्ध संग्रह :** यह रचना प्रबन्ध-चिन्तामणिका अवशिष्ट

---

१. रासमाला, १३ अध्याय पृष्ठ ३२९।

२. रासमाला : परिशिष्ट, पृष्ठ ४४२।

अंश है। इसके अनेक प्रबन्ध, प्रबन्ध-चिन्तामणिके समान ही हैं। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि इस कृतिमें प्रबन्धचिन्तामणिसे सम्बद्ध अथवा उसीके समान मिलते-जुलते बहुत प्राचीन प्रबन्धोंका संग्रह है। इस संग्रहमें विभिन्न व्यक्तित्वोंपर कुल मिलाकर ६० प्रबन्ध हैं, इनमें-से अनेक प्रबन्ध कुमारपाल के इतिहासपर भी बहुत प्रकाश डालते हैं।

(८) **मोहराजपराजय :** यह पाँच अंकोंका नाटक है और इसके रचयिता हैं श्रीयशपाल। इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालके हेमचन्द्र-द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित होने, पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगाने तथा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेकी राज्य-प्रथाको उठा देनेका वर्णन है। यह रूपक है। विषय तथा वर्णनके विचारसे यह मध्यकालीन युरोपके ईसाई नाटकोंसे समता रखता है। संस्कृत-साहित्यमें भी इस प्रकारके अन्य नाटक हैं, जिनमें श्रीकृष्णमिश्रके प्रबोध-चन्द्रोदय नाटकका नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है। नरेश, उसके विदूषक तथा हेमचन्द्रके अतिरिक्त नाटकके सभी पात्र सत् अथवा असत् भावोंमें विभक्त हैं।

नाटककार यशपाल मोढ़ बनिया जातिका था और उसके माता-पिताका नाम था रुकमिणी तथा धनदेव। धनदेवका वर्णन मन्त्री रूपमें हुआ है तथा स्वयं नाटककारने अपनेको चक्रवर्ती अजयदेवके चरण-कमलोंका हंस कहा है। अजयदेवका राज्यकाल सन् १२२९ से १२३२ पर्यन्त है। इसलिए नाटकका रचनाकाल इसी अवधिके मध्यमें निश्चित करना होगा। यह नाटक केवल लिखा ही नहीं गया था वरन् इसका अभिनय भी हुआ था। रंगमंचपर इस नाटकका अभिनय कुमार बिहारमें (कुमारपाल-द्वारा निर्मित) भगवान् महावीरके मूर्ति-स्थापन-समारोहके अवसरपर सर्व-प्रथम हुआ था। यह स्थान थारापद्र (आधुनिक पन्हणपुर एजेन्सी थराद गुजरात मारवाड़की सीमापर स्थित) में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार इसी स्थानका राज्यपाल अथवा निवासी था।

(९) **उपर्युक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त :** चौलुक्य नरेश कुमारपालके इति-

ह्रासका परिचय करानेवाली अन्य अनेक साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतियाँ भी हैं। इनमें विक्रमाङ्कदेवचरितम्, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी, कीर्ति कौमुदी, बसन्त विलास, हम्मीरमदमर्दन, चरित्रसुन्दरकृत कुमारपाल चरित्र, जिन-मदनका कुमारपाल प्रबन्ध, जयसिंह प्रणीत कुमारपाल चरित्र तथा फोर्ब्स-द्वारा सम्पादित रासमाला मुख्य हैं।

इन ग्रन्थ-समूहोंमें सर्वाधिक महत्त्वकी रचना महाकवि श्री विल्हण कृत 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' है। इस महाकाव्यकी रचना बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुई थी। इसमें अठारह सर्ग हैं तथा इसका नायक चालुक्य विक्रमादित्य है। इसके सत्रहवें सर्गमें नायकका वर्णन है तथा अन्तमें कविने अपना ऐतिहासिक विवरण देते हुए कश्मीरका वर्णन किया है। प्रथम सर्गमें चालुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है और कविने बताया है कि वे किस प्रकार अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर गये।

कुमारपाल प्रबन्धके रचयिता जिन मदनाग्निने कुमारपाल-प्रतिबोधके अनेक ऐतिहासिक उद्धरण लिये हैं। जयसिंह सूरिने कुमारपाल-प्रतिबोधकी रचना-शैलीका रचना-सादृश्य अपने कुमारपालचरित्रमें किया है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंसे भी कुमारपालके इतिहासकी रूपरेखाके निर्माणमें सहायता मिलती है।

उत्कीर्ण लेख

आधुनिक इतिहासज्ञ उत्कीर्ण लेखोंको किसी ऐतिहासिक कालके प्रामाणिक विवरणके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। सौभाग्यसे कुमार-पालके समयके एक-दो नहीं, बाईस उत्कीर्ण लेख मिलते हैं। इनसे कुमार-पालके इतिहासकी बहुत-सी बातोंका पता चलता है। इन उत्कीर्ण लेखोंमें-से कुछ उसके अधीनस्थोंके आदेश हैं, कतिपयमें राजकीय आज्ञाकी घोषणाएँ हैं तथा अन्य दान लेख हैं।

(१) **मंगरोल शिलालेख** (विक्रम संवत् १२०२ या सन् ११४५):

यह शिलालेख दक्षिणी काठियावाड़, जूनागढ़के अन्तर्गत मंगरोलके गदिस द्वारके निकट एक वापी (कूप) के श्याम प्रस्तरमें उत्कीर्ण है। यह शिलालेख पचीस पंक्तियोंका है और इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालकी प्रशस्ति है। इसमें गुहिलवंशके सौराष्ट्र नायक नूलक-द्वारा सहजीजेश्वरके मन्दिरका निर्माण तथा दानका विवरण अंकित है।[1]

(२) **दोहाद शिलालेख** (विक्रम संवत् १२०२ या सन् ११४५) : यह गोद्राहकके महामण्डलेश्वर नयनदेवके समयका है। इसमें महामण्डलेश्वरकी 'असीम कृपा-द्वारा राजा शंकरसिंहके उत्कर्षका उल्लेख है और जिसने ईश्वराराधनके निमित्त तीन हल चलाने योग्य भूमिका दान किया।[2]

(३) **किरादू शिलालेख** (वि० सं० १२०५) : किरादू जोधपुर राज्य, आधुनिक राजस्थानमें स्थित है। यह शिलालेख किरादू परमार सोमेश्वरके समयका है जो कुमारपालके अधीनस्थ था।[3]

(४) **चित्तौरगढ़ शिलालेख** (वि० सं० १२०७) : यह लेख चित्तौर स्थित नोकलजी मन्दिरमें उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके चित्रकीर्ति (चित्तौर) आगमन तथा समीद्धेश्वर मन्दिरमें भेंट चढ़ानेका उल्लेख भी है।[4]

(५) **आबू पर्वत शिलालेख** : यह महामण्डलेश्वर यशोधवलके समयका है।[5]

(६) **चित्तौरका प्रस्तर लेख** : इस प्रकीर्ण लेखमें मूलराजसे कुमारपाल तककी वंशावलीका विवरण है। इसमें कहा गया है कि वह चौलुक्य वंशमें

---

१. भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पृष्ठ १५२-६०।

२. इण्डि० एण्टी०, खण्ड १०, पृष्ठ १५९।

३. इण्डि० एण्टी०, खण्ड १०, पृष्ठ १५९।

४. सूची, क्रम-संख्या २७४।

५. इण्डि० एण्टी०, खण्ड २, पृ० ४२१-२४।

उत्पन्न हुआ, जिस वंशका उदय ब्रह्माके हस्तसे हुआ बताया गया है। इसके पश्चात् इसमें मूलराजसे जयसिंह तककी वंशावली दी गयी है। उसके अनन्तर त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल हुआ।[1]

(७) **वडनगर प्रशस्ति** (वि० सं० १२०८) : गुजरातके वडनगरमें सामेत तालाबके निकट अर्जुनवाड़ीमें एक प्रस्तर-खण्डपर यह लेख उत्कीर्ण है। इसमें चौलुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है तथा कुमारपाल तककी वंशावली अंकित है। १९-२० श्लोक नागर अथवा आनन्दपुर[2] में प्राचीन ब्राह्मण बस्तीकी प्रशंसामें हैं। उसी प्रसंगमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने अपने कालमें उक्त प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्रके चतुर्दिक् घेरा बनवाया था। ३०वें श्लोकमें प्रशस्तिकार श्रीपालका नामोल्लेख है, जिससे सिद्धराजने अपना भ्रातृत्व सम्बन्ध स्वीकार किया था और जिसकी उपाधि कविचक्रवर्तीकी थी।[3]

(८) **पाली शिलालेख** (वि० सं० १२०९) : यह जोधपुर राज्यके पाली नामक स्थानमें सोमनाथमन्दिर सभामण्डपमें अंकित है। यह लेख कुमारपालके समयका है।[4] इस शिलालेखमें कुमारपालका, शाकम्बरीधीशके विजेता रूपमें उल्लेख है। प्रधान मन्त्री महादेवका नाम भी इसमें अंकित है तथा लेखकी छठीं पंक्तिमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि चामुंडराज

---

१. सूची, क्रम-संख्या २८०।

२. आधुनिक वडनगर (विद्यनगर) बड़ौदा राज्यके काड जिलेके केरल सब डिवीजनमें है। इस स्थानकी प्राचीनताके लिए देखिए इण्डि० एण्टी० खण्ड १, पृ० २९५।

३. इण्डि० एण्टी० खण्ड १, पृ० २९३-३०५ तथा आई० ए० खण्ड १०, पृ० १६०।

४. ए० एस० आई० डब्लू० सी०, पृ० ४४-४५, १९०७-८, इण्डि० एण्टी० खण्ड ११, पृ० ७०।

पल्लिका विषयमें शासन कर रहे थे।

(९) **किराडू शिलालेख (वि० सं० १२०९)** : यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें शिवरात्रि आदि पर्वोंपर पशुओंकी हिंसा करनेकी निषेधाज्ञा है।[1] इसमें कहा गया है कि राज-परिवारके सदस्य द्रव्य दण्ड देकर ही पशु हिंसा कर सकते थे और अन्य लोगोंके लिए तो इस अपराधके लिए प्राणदण्डकी व्यवस्था थी।

(१०) **रतनपुर प्रस्तर लेख** : जोधपुरके रत्नपुरके बाहरी क्षेत्रमें एक प्राचीन शिव-मन्दिरके मण्डपमें उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपाल के शासनकालका है। इसमें गिरिजादेवीकी, वह आज्ञा घोषित की गयी है जिसमें कहा गया है कि निश्चित विशेष तिथियोंको पशुओंका वध करना निषिद्ध है।[२]

(११) **भट्टुण्ड प्रस्तर लेख (वि० सं० १२१०)** : यह जोधपुर राज्यके भटुण्ड नामक स्थानके ध्वंसावशेष मन्दिरमें है। शिलालेख उक्त मन्दिरके सभामण्डपके एक स्तम्भमें उत्कीर्ण है। लेख कुमारपालके शासन-कालमें खुदवाया गया है। इसमें दण्डनायक वैजाकका भी उल्लेख आया है, जो नाडुल ज़िलेका कार्याधिकारी था।[3]

(१२) **नाडोलका दानपत्र (वि० सं० १२१३)** : यह कुमारपालके समयका है। इसका प्राप्ति-स्थान जोधपुरके अन्तर्गत देसूर ज़िलाका नाडोल है। इसमें जैन-मन्दिरोंको दान देनेका उल्लेख है। इसमें बहड़देव प्रधान मन्त्री, महामण्डलिक प्रतापसिंह तथा बदारीके चुंगी गृह (मण्डपिका)का विवरण है।[४]

---

१. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ११, पृ० ४४।

२. इण्डि० एण्टी०, खण्ड २०, परिशिष्ट, पृ० २०९।

३. ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, पृ० ५१-५२।

४. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ४१, पृ० २०२-२०३।

(१३) बाली शिलालेख (वि० सं० १२१६) : जोधपुर, बालोके बहुगुण मन्दिरके द्वारके सिरेपर यह शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमें कुमार-पालके शासनकालमें प्रदत्त भूमिके दानका उल्लेख है। इस लेखमें नाडुलके दण्डनायक तथा वल्लभी (आधुनिक बाली) के जागीरदार अनुपमेश्वरका नाम अंकित है।[१]

(१४) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२१८) : जोधपुर राज्यके किराडू स्थित एक शिवमन्दिरमें यह लेख अंकित है। इसका समय कुमार-पालका शासनकाल ही है। इसमें कुमारपालके अधीनस्थ किराडू परमार सोमेश्वरका उल्लेख है।[२]

(१५) उदयपुर प्रस्तर लेख : यह ग्वालियर राज्यमें है। ग्वालियरके अन्तर्गत उदयपुरके विशाल उदयेश्वर मन्दिरके-प्रवेश स्थलपर ही यह लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके समयका है और इसे उसके एक अधीनस्थ अधिकारीने उत्कीर्ण कराया था। इसकी तिथि, लेखमें सुस्पष्ट नहीं है।[३]

(१६) उदयपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख (वि० सं० १२२२) : यह उक्त मन्दिरके एक प्रस्तर स्तम्भमें उत्कीर्ण है। इसमें ठाकुर चाहड़-द्वारा इसी मन्दिरको प्रदत्त ब्रह्मगिरिके अन्तर्गत सामगावत्ताके आधे गाँव दानस्वरूप देनेका उल्लेख है।[४]

(१७) जालौर प्रस्तर शिलालेख (वि० सं० १२२१) : जोधपुर राज्यके अन्तर्गत जालौर नामक स्थानमें एक मस्जिदके दूसरे खण्डके द्वारके ऊपर यह लेख उत्कीर्ण है। इस मस्जिदका उपयोग बादमें तोपखानेके रूपमें होता रहा है। इसमें कुमारपाल-द्वारा निर्मित प्रसिद्ध जैन मन्दिर कुमार

---

१. ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०७-१९०८, पृ० ५४-५५।

२. इ० इण्डि०, खण्ड २०, परिशिष्ट, पृ० ४७।

३. इण्डि० एण्टी०, खण्ड १७, पृ० ३४१।

४. इण्डि० एण्टी०, खण्ड १७, पृ० ३४१।

बिहारके निर्माणका विवरण है। पार्श्वनाथका यह प्रसिद्ध जैन विहार जवालीपुर (जालौर) के कंचनगिरि क़िलेपर बना हुआ है। इस विवरणके अतिरिक्त इसमें यह भी लिखा है कि कुमारपाल, प्रभु हेमसूरि-द्वारा दीक्षित हुआ।[१]

(१८) गिरिनार शिलालेख (वि० सं० १२२२-२३) : यह शिलालेख कुमारपालके समयका है।[२]

(१९) जूनागढ़ शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५० (?) सिंह ६०) : यह जूनागढ़के भूतनाथ मन्दिरमें उत्कीर्ण है। यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें अनहिलपालकपुरके[३] धवलकी पत्नी-द्वारा दो मन्दिरोंके निर्माणके विवरण हैं। दण्डनायक गुमदेवका नामोल्लेख भी इसमें आया है।

(२०) नडलाई प्रस्तर लेख (वि० सं० १२२८) : यह शिलालेख जोधपुर राज्यके नडलाई नामक स्थानके दक्षिण-पश्चिम एक महादेवके मन्दिरमें मिला है। यह भी कुमारपालके समयका है।[४]

(२१) प्रभासपाटन शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५०) : यह शिलालेख प्रभासपाटन अथवा सोमनाथपाटनमें भद्रकाली मन्दिरके निकट एक प्रस्तरपर उत्कीर्ण है। इसके अंकनका समय कुमारपालका शासनकाल है। इसमें कुमारपाल-द्वारा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माणका विवरण है।[५]

(२२) गाला शिलालेख : काठियावाड़के धारंगधारा राज्यके गाला नामक ग्राममें एक देवीके ध्वस्त मन्दिरके प्रवेश-द्वारपर यह शिलालेख खुदा हुआ है। यह गुर्जरनरेश कुमारपालके कालका है। इसमें प्रधान

---

१. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ११, पृ० ५४-५५।

२. आर० एल० ए० आर० वी० पी०, ३५९।

३. पी० ओ० खण्ड १, १९३६-३७, द्वितीय खण्ड, पृ० ३९।

४. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ११, पृ० ४७-४८।

५. वी० पी० एस० आई०, १८६, सूची क्रम-संख्या १३८०।

मन्त्री महादेवके अतिरिक्त राज्यके अनेक अधिकारियोंका भी नामोल्लेख है।[1]

स्मारक

कुमारपाल जैनधर्ममें दीक्षित हो गया था और जैनधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने पाटनमें अपने मन्त्री वहड़के निरीक्षणमें कुमारविहार नामक मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इसके पार्श्वके चौबीस मन्दिरोंमें उसने चौबीस तीर्थंकरोंकी सुवर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियाँ स्थापित करायीं।

इसके पश्चात् कुमारपालने त्रिभुवनविहार[2] नामक और भी विशाल तथा उच्चशिखरोंसे युक्त जैनमन्दिरका निर्माण कराया। इसके चतुर्दिक् विभिन्न तीर्थंकरोंके लिए बहत्तर मन्दिर बने थे। इन मन्दिरोंके विभिन्न विशेष भाग सुवर्णके बने हुए थे। मुख्य मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी विराट् तथा भव्यमूर्ति बनी थी तथा अन्य उपमन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ स्थापित थीं।

इनके अतिरिक्त कुमारपालने केवल पाटनमें ही चौबीस तीर्थंकरोंके लिए चौबीस जैनमन्दिर बनवाये, जिनमें त्रिविहारका मन्दिर प्रसिद्ध था। पाटनके बाहर राज्यके विभिन्न स्थानोंमें उसने इतने अधिक जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया कि उनकी निश्चित संख्याका अनुमान करना भी कठिन है। इनमें-से जसदेव पुत्र सूबेदार अभयके निरीक्षणमें तरंग पहाड़ीपर बना अजितनाथका विशाल मन्दिर उल्लेख्य है। यद्यपि आज ये स्मारक अपने पूर्व रूपमें अवस्थित नहीं, तथापि उनके ध्वंसावशेष भी अपने

१. पी० ओ० खण्ड १, पार्ट २, पृ० ४०।
२. पी० ओ०, खण्ड १, भाग २, पृ० ४०।

समयके जीते-जागते अवशेष हैं तथा कुमारपालके इतिहासके निर्माणमें बहुत सहायक हैं।

मुद्राएँ

सिक्कोंका जहाँतक सम्बन्ध है, पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तरार्ध मध्य-काल दोनोंमें ही कुछ विचित्र स्थिति है। यह आश्चर्यकी बात है कि वल्लभी के मैत्रिकोंके अतिरिक्त किसी वंशकी मुद्राएँ गुजरातमें नहीं प्राप्त होतीं। जो प्राप्त हुई हैं वे भी गिनतीकी हैं। ये मुद्राएँ ब्रिटिश म्युजियममें रही हैं। इनमें कोई स्वरूप साम्य नहीं है। इसके एक ओर वृषभका आकार बना हुआ है। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि अनहिलवाड़ेके चौलुक्यों-की कोई मुद्राएँ नहीं प्राप्त होती हैं। गुजरात तथा पाटनके लोग इस बातका गम्भीरतासे अनुभव ही नहीं करते।[1] पुरातत्त्ववेत्ता श्री एच० डी० संकालिया जब अपने अनुसन्धानके दौरेपर गये थे और जब उन्होंने पाटन के लोगोंसे चौलुक्योंके सिक्कोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो लोग आश्चर्य करते थे।[2] कई वर्ष पहले सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाओंके बाहर जब एक सड़कका निर्माण हो रहा था तो सागर अप्सराके श्री मुनि पुण्यविजयजीको कुछ मुद्राओंका पता लगा था। दुर्भाग्यवश किसी मुद्रा विशेषज्ञको ये सिक्के नहीं दिखाये गये और बादमें उनका कोई पता न चला।[3] चौलुक्योंने अवश्य ही मुद्राएँ अंकित करायी होंगी तथा उनका पर्याप्त प्रचलन होगा, इस तथ्यके समर्थनमें उत्तरप्रदेशसे प्राप्त एक सुवर्ण-मुद्रासे यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। उत्तरप्रदेशमें मिली उक्त सुवर्ण-मुद्रा सिद्धराज जयसिंहकी बतायी जाती है।[4] इतने सुसम्पन्न कालमें

१. आर्कलाजी ऑव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

२. आर्कलाजी ऑव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

३. वही।

४. जे० आर० ए० एस० बी०, लेटर्स, ३, १९३७, नं० २, आर्टि-किल।

चौलुक्योंने अपनी मुद्राएँ न प्रचलित की होंगी, ऐसा स्वीकार करना समुचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए इस धारणाको बल मिलता है कि यदि उचित रूपसे उत्खनन तथा अनुसन्धानका कार्य किया जाये—विशेषकर सहस्रलिंग तालावके निकट तो मुद्राओंके अतिरिक्त चौलुक्यकालीन अन्य बहुत-सी सामग्री भी प्रकाशमें आवेगी।

विदेशी इतिहासकारोंके विवरण

चौलुक्य उस कालमें शासन कर रहे थे, जब मुसलिम भारतके पश्चिमोत्तर भागपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर रहे थे। कुमारपालके पहले चौलुक्यों और मुसलिमोंमें संघर्ष[1] हुआ था तथा कुमारपालके बाद भीम द्वितीयके शासनकालमें मुसलिमोंसे प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ। कालान्तरमे अन्ततोगत्वा मुसलिमोंने चौलुक्योंको पराजित कर दिया। अनहिलवाड़में स्थापित कुतुबुद्दीनका मुसलिम सेनागार या तो हटा लिया गया था अथवा उसका पददलन हो गया था। प्रसिद्ध मुसलिम इतिहासकार फ़रिश्ता लिखता है कि भीमदेवकी मृत्युके पचास वर्ष बाद तत्कालीन दिल्लीके शासकको उसकी परामर्शदात्री परिषद्ने यह सलाह दी कि कुतुबुद्दीन-द्वारा विजित गुजरात के प्रदेश, जो अब स्वतन्त्र हो गये थे उन्हें पुनः अधीन किया जाये। परिषद् ने गुजरात तथा मालवा सेना भेजनेका परामर्श दिया था।

अलाउद्दीनके सैनिक अभियानके पहले तेरहवीं शताब्दीके अन्तके पूर्व तक अनहिलवाड़ा मुसलिमोंके अधीन न हुआ। मुसलिम विवरणोंमें भी चौलुक्योंका उल्लेख बहुत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मुसलिम लेखकने कुमारपालको गुरुपाल[2] सम्बोधित किया है। अबुलफ़जल

---

१. युद्धके १४ वर्ष पूर्व चामुंडराजकी सन् १०१० में मृत्यु हुई जब मुसलिम आक्रमण हुआ तो भीम शासनारूढ़ था।

२. फोर्ब्स : रासमाला।

ने भी लिखा है कि जयसिंहकी मृत्यु[१] तक कुमारपाल सोलंकी निर्वासनमें रहता था। इसी प्रकार ज़ियाउद्दीन बरानीकी तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही[२] निज़ामुद्दीनकी तबक़ाते-ए-अकबरी,[३] तारीख़-ए-फ़रिश्ता,[४] आइने-अकबरी,[५] तबक़ाते-नसीरी तथा मीराती-अहमदीसे चौलुक्य कुमारपालके समय तथा इतिहासका बहुत कुछ विवरण प्राप्त होता है।

विभिन्न सामग्रियोंपर एक दृष्टि

इन प्रभूत साहित्यिक रचनाओं, शिलालेखों, स्मारकों तथा अन्य प्राप्त साधनोंकी सहायतासे चौलुक्यनरेश कुमारपालके इतिहासको प्रामाणिक और विधिवत् ऐतिहासिक पद्धतिपर लिखा जा सकता है। साहित्यिक एवं अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थोंसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसके सिंहासनारूढ़ होने, चौहानों, परमारों तथा अन्य शक्तियोंसे युद्ध, उसके जैनधर्म में दीक्षित होने तथा अन्तमें उसके निधनके विवरण मिलते हैं। इन विभिन्न साधनोंसे देशकी तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिपर भी पूर्ण प्रकाश पड़ता है। वस्तुतः तत्कालीन साहित्यमें उल्लिखित एवं अंकित ऐतिहासिक तथ्य कुमारपालके इतिहासके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनों में प्रमुख हैं।

इनके बाद कुमारपालके समयके विभिन्न शिलालेखों, प्रकीर्ण लेखों, तथा ताम्रपत्रोंसे उस कालके शासन-प्रबन्ध तथा देशकी विभिन्न परिस्थितियोंका परिचय मिलता है। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंमें भले ही अर्ध-ऐतिहासिक तथ्य अंकित हों, क्योंकि उनमें कहीं-कहीं वास्तविक सत्यके

---

१. आइने-अकबरी, खण्ड २, पृ० २६३।

२. इलिएट, खण्ड ३, पृ० ९३।

३. बिबलिओथिका इण्डिका : बी०के० कृत अनुवाद, १९१३।

४. ब्रिग्स-द्वारा अनूदित, खण्ड १।

५. ब्लोयमन जेरट, खण्ड २।

साथ-साथ कवित्वपूर्ण प्रशस्तियाँ भी रहती हैं किन्तु उत्कीर्ण लेखोंके सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। अधिकांश शिलालेख राजाज्ञाके रूपमें हैं अथवा उनमें राजकीय घोषणाएँ हैं। इनमें-से कुछमें जैनमन्दिरोंको दान देनेका भी उल्लेख है। शिलालेखोंसे बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातोंका पता लगता है। इन उत्कीर्ण लेखोंसे अनेक प्रशासकीय इकाइयोंके साथ ही विभिन्न राज्याधिकारियोंके नाम भी विदित होते हैं। कुमारपालने जिन अनेक युद्धोंमें भाग लिया था उनके विवरण भी, इन्हींसे प्राप्त होते हैं। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान् निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन-मन्दिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वंसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वंस हैं, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो काल-कवलित हो गये हैं। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानमें विस्तृत है। दुर्भाग्यसे चौलुक्योंकी मुद्राएँ नहीं मिलतीं। उत्तर प्रदेशमें एक स्वर्ण-मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जय-सिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एवं व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएँ प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एवं अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएँ उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूट-पाटकी घटनाएँ हुईं। चौलुक्योंके सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास-निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों, विशेषतः मुसलिम इतिहासकारोंके विवरणों

का भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमारपालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमार-पालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूप-अंकनके निमित्त प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

गुप्त साम्राज्य और पुष्यभूतियोंके पराभव तथा पतनके पश्चात् कोई ऐसा शक्तिसम्पन्न राजवंश न हुआ, जितना व्यापक विस्तार एवं विराट् राजनीतिक प्रभुत्व अनहिलवाड़के चौलुक्योंका भारतमें हुआ। चौलुक्य शब्द चालुक्यका संस्कृत रूप है। गुजरातमें चौलुक्योंका लोकप्रसिद्ध सम्बोधन 'सोलंकी' अथवा 'सोलंकी' है। गुजरातके लोकगीतोंमें अबतक गायक इसका प्रयोग करते रहे हैं। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा

समकालीन साहित्यमें इस वंशका नाम 'चौलुक्य', 'चालुक्य' अथवा 'चुलुक' मिलता है। इसके अतिरिक्त चालुक्का, चलुक्य, चालक्य, चलक्य, चौलुकिक, चौलुक्क तथा चुलुग शब्दोंका प्रयोग भी इस वंशके सम्बोधनके रूपमें हुआ है।

लाट प्रदेशके राजा कीर्तिराज सोलंकीके ताम्रपत्रमें इस वंशका नाम चालुक्य[१] कहा गया है। उसके पौत्र त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रमें वंशका नाम चौलुक्य[२] आया है। गुजरातके सोलंकी राजाओंके पुरोहित सोमेश्वरने अपनी कीर्तिकौमुदी[३] में 'चौलुक्य' तथा 'चुलुक्य' का प्रयोग किया है। हेमचन्द्रने गुजरातके सोलंकी शासकोंके लिए चौलुक्य, चुलुक्य, चालुक्का, चुलुक्का तथा चुलुग[४] का व्यवहार किया है। कृष्ण कविने अपनी कृति रत्नमालामें चालुक्य, चुलुक्य, चुलुक, चौलुक्य शब्दोंका प्रयोग सोलंकी

---

१. वियना ओरियण्टल जर्नल, खण्ड ७, पृ० ८८।

२. इत्थमत्र भवेत्क्षत्र सन्ततिर्विनता किल। चौलुक्यात्प्रथिता न ध्या···इण्डि० एण्टी० खण्ड १२, पृ० २०१।

३. अथ चौलुक्य भूपाल पालयामास तत्पुरम्। कीर्तिकौमुदी २ : १।

अणहिलपुरमस्ति स्वतिपालं प्रजानाम।

जरजिरघुतुल्यै पाल्यमानं चुलुक्यैः ॥३॥

विरचयति वस्तुपालश्चुलुक्य सचिवेषु कविषु च प्रवरः····॥१४॥

—आबू स्थित वस्तुपाल तेजपाल मन्दिरमें सोमेश्वर रचित प्रशस्ति।

४. कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लसं चुलुक्य राट्····द्व्याश्रय महाकाव्य, सर्ग ५ : १२८।

उद्दालिआ दसंणाणसिरी चालुक्क सुइडेहिं, सर्ग ६ : ८४।

जत्थ चुलुक्कनि वाणं परिमल जम्मो जसो कुसुमदामं १ : २२, धत्र-लगहेय अइनिच्चलाकि दी वच्छलो चुलुगवंश दीवओ। सर्ग २ : ६१।

—कुमारपाल चरित।

शासकोंके लिए किया है।[1] पृथ्वीराज रासोमें सोलंकी वंशके लिए चालुक्काका व्यवहार किया गया है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ही वंशके लिए विभिन्न लेखों तथा विभिन्न तत्कालीन साहित्यमें भिन्न-भिन्न वंश परिचायक शब्दोंका प्रयोग हुआ है। इन शब्दोंमें कौन शब्द सोलंकी (चौलुक्य) वंशके लिए सर्वथा उपयुक्त है इसके निर्णय एवं निर्द्धारणके लिए समकालीन लेखकों, ताम्रपत्रों तथा शिलालेखोंकी प्रभूत सामग्री है। सभीके सम्यक् समालोचनके अनन्तर यह स्पष्ट है कि इस राजवंशके लिए सबसे अधिक तथा सर्वमान्य प्रयोग 'चौलुक्य' शब्दका ही हुआ है। हेमचन्द्र, सोमेश्वर, यशपाल तथा अन्य तत्कालीन साहित्यकारोंके अतिरिक्त शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें जो आधुनिक कालमें किसी तथ्य अथवा घटनाकी मान्यताके लिए सर्वोपयुक्त प्रमाण माने जाते हैं, उक्त शब्दका ही बहुतायतसे प्रयोग हुआ है। यही नहीं, आठ चौलुक्य ताम्रपत्रोंमें जो चौलुक्योंकी वंशावली दी हुई है उन सभीमें एक ही शब्द 'चौलुक्य' का व्यवहार किया गया है।[3]

उत्पत्तिका अग्निकुल सिद्धान्त

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतीय राजवंशोंकी अपेक्षा चौलुक्योंका अंकित तिथिक्रम अत्यधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक है। चौलुक्योंकी उत्पत्ति-विषयक विभिन्न सिद्धान्त हैं। इनमें-से एक अग्निकुल सिद्धान्त है। इसके अनुसार कहा जाता है कि आबू पर्वतपर वशिष्ठ ऋषिने यज्ञ किया

---

१. असौ वंश चालुक्कको शुभ रीति, पुनीवंश चापोत्कटाको सप्रीति, रत्नमाला, पृ० २०। चौलुक्य वंश नृप भुवरनाम''''—रत्नमाला, पृ० ४३।

२. मुनि प्रगय्यौ चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय—पृथ्वीराज रासो: आदिपर्व, पृ० ४९।

३. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ६, पृष्ठ १८१।

और उसकी वेदीसे प्रथम चौलुक्य अथवा चालुक्यकी उत्पत्ति हुई। किन्तु इस सिद्धान्तके समर्थनमें न कोई शिलालेख है और न ताम्रपत्र अथवा कोई ऐतिहासिक इतिवृत्त ही। पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्यके शिलालेख में (विक्रम संवत् ११३३ और ११८३) यह लिखा है कि चालुक्य (सोलंकी) वंशकी उत्पत्ति चन्द्रवंशसे हुई जो ब्रह्माके पुत्र अत्रि-द्वारा आविर्भूत हुआ था।[१] यह शिलालेख बम्बई प्रान्तके धारवाड़ ज़िलेके गोहाद गाँव स्थित वीर नारायण मन्दिरमें मिला है। उक्त सोलंकी राजाके दूसरे उत्कीर्ण लेखसे भी उक्त कथनोंकी ही पुष्टि होती है।[२] पूर्वीय सोलंकी राजा राजराजा प्रथम (वि० सं० १०७९-११२० : सन् १०२२-१०६३) के एक ताम्रपत्रमें यह लिखा है कि भगवान् पुरुषोत्तमके 'नाभि-कमल' से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्होंने अनेकानेक राजाओं तथा राजवंशोंकी उत्पत्ति की। इन राजवंशों और राजाओंने चक्रवर्ती सम्राटोंकी भाँति अयोध्यामें शासन किया। इसी राजवंशमें राजा विजयादित्य हुआ। वह दक्षिण विजयके लिए गया और उसीके वंशमें राजराजा[३] हुआ। इस कथनकी पुष्टि राजराजाके पिता राजा विमलादित्य (वि० सं० १०७५ : सन् १०१८) के एक ताम्रपत्र[४]-द्वारा भी होती है।

चुलुक सिद्धान्त

चौलुक्योंकी उत्पत्ति-विषयक एक चुलुक सिद्धान्त भी है। कश्मीरी

---

१. ओं स्वस्ति समस्त जगत्प्रसूतेर्भगवतो ब्रह्मणः पुत्रस्यात्रेर्न्नेत्रिस-मुत्पन्नस्य यामिनी कामिनी ललामभूतस्य सोमस्यान्वये सत्यत्याग शौर्यादि गुणं निलयः केवल निज ध्वजिनीजव क्षपित प्रतिपक्ष क्षितीश वंश श्रीमानस्ति चालुक्यवंशः। —इण्डि० एण्टी०, खण्ड २१, पृष्ठ १६७।

२. कर्नाटक इन्सक्रि० खण्ड १, पृष्ठ ४१५।

३. इण्डि० एण्टी०, खण्ड १४, पृष्ठ ५०-५५।

४. इण्डि० एण्टी०, खण्ड ६, पृष्ठ ३५१-५८।

कवि विल्हणने अपने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' (वि० सं० ११४३ : सन् १०८५) में लिखा है कि ब्रह्माके 'चुलुक' से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वंशमें हरित तथा मानव्य हुए। इन क्षत्रियोंने पहले अयोध्यामें शासन किया और तदनन्तर दक्षिण दिशामें एकके बाद दूसरी विजय करते आगे बढ़े।[1] यही सिद्धान्त अल्प परिवर्तनके साथ कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८ : सन् ११५१) में भी व्यक्त किया गया है। इसमें कहा गया है कि देवताओंने नम्रतापूर्वक जब राक्षसोंके अपमानोंसे रक्षा करनेकी प्रार्थना ब्रह्मासे की तो उस समय वे सन्ध्या-वन्दन करने जा रहे थे। उन्होंने अपने 'चुलुक'में गंगाका पवित्र जल लेकर एक वीरकी उत्पत्ति की। उस वीरका नाम चौलुक्य था जिसने तीनों संसारको अपने यश एवं कीर्तिसे पवित्र किया। उससे एक जाति उत्पन्न हुई। इसमें एकसे-एक शौर्यवान् और वीर्यवान् शासक हुए। पतनावस्थामें भी इनका वैभव इनसे विलग नहीं हुआ। यह जाति अपनी वीरताके कारण प्रख्यात हुई और इसने समस्त संसारके सर्वसाधारणोंको आशीर्वाद दिया।[2]

---

१. सुधाकरं वार्धकतः क्षपायाः संप्रेक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम् ।
तद्विप्लवायेव सरोजिनीनां स्मितोन्मुखं पङ्कज वक्त्रमासीत् ॥२६॥
ज्ञात्वा विधातुश्चुलुकात्प्रसूतिं तेजस्विनोऽन्यस्य समस्तजेतुः ।
प्राणेश्वरः पङ्कजिनीवधूनां पूर्वाचलं दुर्गमिवारुरोह ॥२७॥
जगाम याङ्केषु रथाङ्गनाम्नां परस्परादर्शनलेपनत्वम् ।
सा चन्द्रिका चन्दनपङ्ककान्ति शीतांशुशाणाफलके ममज्ज ॥२८॥
सन्ध्या समाधौ भगवान् स्थितोऽथ शक्रेण बद्धाञ्जलिना प्रणम्य ।
विज्ञापितः शेखर-पारिजातद्विरेफनादद्विगुणैर्वचोभिः ॥२९॥
—विक्रमाङ्कदेवचरित : सर्ग १ : २६-२९।

२. ···नमस्यन्नपि निज चुलुके पुण्यगंगाम्बुपूर्णे ।
सद्यो वीरं चुलुक्याह्वयमसृजमिदं येन कीर्त्तिप्रवाहैः ॥

सोलंकी राजा कुलोत्तुंगके ताम्रपत्र तथा चोड़देव द्वितीय (वि० सं० १२०० : सन् ११४३) के प्रकीर्ण लेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि सोलंकी शासक चन्द्रवंशी मानव्य गोत्री तथा हरितके[1] वंशज थे। मानव्य तथा तथा हरित कौन थे यह उक्त ताम्रपत्रमें उल्लिखित नहीं किन्तु पश्चिमी सोलंकी राजा जयसिंह द्वितीय (वि० सं० १०८२ : सन् १०२५) के एक उत्कीर्ण लेखमें उनका इतिहास दिया हुआ है। इसमें कहा गया है कि ब्रह्मा से मनु और मनुसे मानव्यका आविर्भाव हुआ। मानव्यके वंशज ही मानव्य गोत्रिय कहलाये। मानव्यका पुत्र हरित था और उसका पुत्र पंखशिखी हरित हुआ। इसका पुत्र चालुक्य हुआ जिसका वंश चालुक्य (सोलंकी) वंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ।[2]

राजा पुरुषोत्तम[3] (वि० सं० १३३०-१३७५ : सन् १२७३-१३१८) के दो उत्कीर्ण लेखोंमें लिखा है कि सोलंकी राजा चन्द्रवंशी थे। सोलंकी राजराजाके दानपत्रमें जहाँ उसके राज्यारोहणका वर्णन है (वि० सं०

पूतं त्रैलोक्यमेतन्नियतमनुहंरत्ये हेतो फलं श्री ॥२॥
वंशकोपिततो बभूव विविधाश्रयैकलीलास्पदं ।
यस्यमाद् भूमि भृतोपि वीतगणिताः प्रादुर्भवंत्यन्वहं ।
छायां यः प्रथित प्रताप महतीं धे विपन्नोपिसन् ।
यो जन्यावधि सर्वदापि जगतो विश्वस्यदत्तेफलं ॥३॥
—वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २-३, इपि० इण्डि० खण्ड १, पृ० २९६।

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ६।

२. (i) कर्नाटक इन्सक्रिपशन : खण्ड १, पृ० ४८।
(ii) बाम्बे गजेटियर : खण्ड १, भाग २, पृ० ३३९।

३. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ७।

१०७९ : सन् १०२२) वहाँ लिखा है कि 'वह सोमवंश तिलक' है। कलिंगतुम्भारानी एक तामिल काव्यमें सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव प्रथमका ऐतिहासिक वर्णन है, उसमें लिखा है कि उसका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था।[1] वीर चोड़देवके ताम्रपत्रमें (वि० सं० ११४७ : सन् १०९०) उसके पितामह राजराजाको सोमकुलभूषण[2] कहा गया है। अभिप्राय यह कि वह चन्द्रवंशी राजा था। सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देवके सामन्त बुद्धराजके दानपत्र (वि० सं० १२२८ : सन् ११७१) में चोड़देवके प्रख्यात प्रपितामह कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णुवर्धन) को चन्द्रवंशी कहा गया है।[3]

हेमचन्द्रका अभिमत

शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा दानपत्रोंके इन प्रमाणोंके अतिरिक्त समकालीन ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे बिना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि सोलंकी राजा चन्द्रवंशी थे। यह पुष्ट प्रमाण हेमचन्द्रका है। अपने द्व्याश्रय काव्यमें उसने सोलंकी राजा भीमदेव तथा चेदि नरेश कर्णदेवके दूतोंका मिलन कराया है। वार्ताके प्रसंगमें राजा भीमदेवके दूतने पूछा कि महाराज भीमदेव जानना चाहते हैं कि आप (चेदि-नरेश कर्णदेव) मेरे मित्र हैं अथवा शत्रु। इस प्रश्नके उत्तरमें चेदिराज कर्णदेवने कहा कि राजा भीमदेव अविजेय सोम (चन्द्र) वंशके हैं।[4] जिन हर्षगणीके वस्तुपाल चरित (वि० सं० १४९७ : सन् १४४०) में सोलंकीराज भीमदेव चन्द्रवंशका भूषण कहा गया है।[5]

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १९, पृ० ३२८।

२. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १, पृ० ५४।

३. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ७, पृ० २६९।

४. द्व्याश्रय काव्य : सर्ग ९, श्लोक ४०-५९।

५. हर्षगणी कृत वस्तुपाल चरित्र ९ : ७९।

इस प्रकार पृथ्वीराजरासोमें वर्णित चौलुक्योंकी उत्पत्तिकी अग्निकुल कथा, आधुनिक ऐतिहासिक विश्लेषणके द्वारा अतिरंजित वर्णन तथा प्रशस्तिमात्र स्वीकार की जाती है। गुजरातके इतिहासके कुछ विशेषज्ञ तो अग्निकुल उत्पत्तिकी कथाको किसी प्रकार स्वीकार ही नहीं करते। उनका तो रासोकी ऐतिहासिकतापर भी सन्देह है।[1] उत्पत्तिकी 'चुलुक कथा'के सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'चौलुक्य' शब्द 'चुलुक्य'से बना है और इस कारण प्राचीन लेखकोंने ब्रह्माके 'चुलुक'से 'चौलुक्य'की उत्पत्तिकी कल्पना सहज ही कर ली होगी। इस विवादास्पद प्रश्नका निर्णय करनेमें जहाँतक उत्कीर्ण लेखों तथा ताम्रपत्रोंके प्रमाण मिलते हैं, यह स्वीकार करना समीचीन होगा कि चौलुक्य प्राचीन कालके चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे।

चौलुक्यवंशका मूल स्थान

चौलुक्य वंशके मूल स्थानके विषयमें लोगोंमें बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका मूल स्थान उत्तरभारत बताते हैं, तो कुछ इस मतके हैं कि ये दक्षिणसे आये। श्री [2]टाडका कथन है कि भाटों तथा परम्परासे राज-दरबारमें विरुदावली गानेवाले कवियोंकी रचनाओंमें सोलंकियोंको गंगा-तटके शुरूके प्रसिद्ध राजकुमारके रूपमें चित्रित किया गया है। यह उस समयकी बात है जब राठौरोंने कन्नौजपर अधिकार नहीं किया था। वंशा-वली [3]सूचीमें लाकोट जो आधुनिक लाहौर है, उनका स्थान कहा गया है।

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० १२।

२. टाड : राजस्थान, खण्ड १, भाग ७, पृ० १०४।

३. सोलंकी गोत्राचार इस प्रकार है—"माध्वनि शाखा-भारद्वाज गोत्र गुरत्स लोकोश नेकस-सरस्वती (नदी) सामवेद कपिलेश्वरदेव कर्दुमन रिकेश्वर तीन प्रवर जेनार-कुंजदेवी-'मैयाल पुत्र'—टाड : राजस्थान : पृष्ठ १०४।

इसमें ये उसी शाखा (माध्वनी)के कहे गये हैं, जो चौहानोंकी शाखा थी। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आठवीं सदीमें लंगहस तथा टोगरा मुलतान और उसके निकटवर्ती प्रदेशमें रहते थे। ये भट्टिसोंके शत्रु थे। मालाबार तटपर कैलियन (कल्याण)के राजकुमार[1] थे, जिस नगरमें आज भी प्राचीन गौरवके चिह्न विद्यमान हैं। यहीं कैलियन (कल्याण) से सोलंकी वंशका एक वृक्ष अनहिलवाड़ा पुतलन (पाटन)के चौवुरस राजवंशमें पनपा। विक्रम संवत् ९८७ (९३१ ई०) में चौवुरस वंशके अन्तिम राजा विजराज तथा स्त्रियोंको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके अधिनियम, इन दोनोंकी अवमानना हुई। इसी समय युवक सोलंकी मूलराजके सम्मुख सुदृढ़ चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करनेके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[2]

इस सम्बन्धमें श्री सी० वी० वैद्य[3]का कथनहै कि "इस प्रश्नके विषयमें सबसे पहले यह ध्यानमें रखना होगा कि यह 'चौलुक्य' तथा दक्षिणका 'चालुक्य' परिवार एक ही नहीं हैं अपितु पृथक्-पृथक् हैं। यद्यपि इन दोनोंमें साम्य है तथा प्राचीन कवियों तथा कथाकारोंने इन्हें एक ही माना है। गोत्रकी भिन्नतासे ही परिवारकी पृथक्ताका परिचय मिलता है। छठीं शताब्दीमें दक्षिणके चालुक्योंने अपना गोत्र मानव्य अंकित कराया है। जैलापा तथा अन्य स्थानोंके चौलुक्य इसी वंश तथा विवरणके हैं। दुर्भाग्यसे गुजरातके चौलुक्योंने अपने विवरणोंमें अपने गोत्र नहीं दिये हैं। फिर भी हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं, जैसा कि १०वीं शतीके एक चेदि विव-

---

१. बम्बईके निकट, कल्याण शुद्ध रूप।

२. यह जयसिंह सोलंकीका पुत्र था तथा कैलियनका प्रसिद्ध राजकुमार था। इसने भोजराजकी पुत्रीसे विवाह किया था। यह विवरण एक बिना शीर्षककी अपूर्ण भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकसे लिया गया है, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। —टाड: राजस्थान, खण्ड १, पृ० १०३।

३. सी० वी० वैद्य: मध्यकालीन भारत खण्ड ३, अध्याय ७, पृ. १६५।

रणमें दिया गया है कि उनका गोत्र भारद्वाज था।[१] पृथ्वीराजरासोमें चंदने भी चौलुक्योंका यही गोत्र कहा है। रीवा तथा गुजरातके सोलंकी अबतक अपनेको इसी गोत्रका बताते हैं और इस प्रकार बिना सन्देह हमें भी यह निश्चय मानना चाहिए कि उनका गोत्र सदा भारद्वाज ही रहा है।[२]

वंशका संस्थापक : मूलराज

श्री एच० सी० रेका कथन है कि ७२०-९५६ ईस्वीमें कपोतक जो चावड़ाके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे, पांचसारामें शासन कर रहे थे। वहाँके अन्तिम सामन्तसिंह उर्फ़ भुवतके राज्यकालमें कन्नौजके कल्याणकल्कके शासक भुवनादित्यके तीन पुत्र, राजी, बीजा तथा दंडक भिक्षुकका वेष धारण कर सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने निकले। लौटते समय वे सामन्त-सिंह-द्वारा आयोजित रथ-प्रदर्शनके समारोहमें उपस्थित हुए। राजीने रथ संचालन-सम्बन्धी कलाकी कुछ ऐसी आलोचना की जिससे सामन्तसिंह प्रसन्न हो गया। इतना ही नहीं उसने राजीको किसी राजवंशका समझकर उससे अपनी बहन लीलादेवीका विवाह कर दिया। संयोगसे लीलावती गर्भवती ही मर गयी। उसका गर्भस्थ शिशु शस्त्रोपचारके उपरान्त निकाला गया। यह शस्त्रोपचार उस समय हुआ जब मूलग्रह था। यही शिशु मूल-राज था। वह योग्य तथा शक्तिशाली राजकुमार निकला। इसने अपने चाचाकी हत्या कर राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया।[३]

इस कथासे सत्य तथा कल्पनाको पृथक् करना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। ९३७ ईस्वीके चालुक्य पुलकेशी

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १, पृ० २५३।

२. एच० एम० एच० आई०, खण्ड ३, अध्याय ७, पृ० १९५-६।

३. (i) बी० जी० खण्ड १, भाग १, पृ० १५६-५७, (ii) कुमारपाल चरित : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२६ (१-१५), (iii) ए० ए० के० खण्ड २, पृ० २६२।

अवनीजनाश्रयके नौसेरी दानपत्रसे यह बात भली प्रकार प्रमाणित हो जाती है कि आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें चावड़ा वंश गुजरातमें राज्य कर रहा था।[1] इससे यह भी पता चलता है कि ७९३ ईस्वीके कुछ पहले अरबों (ताजिकों) की सेनाने सैन्धव, कच्छेला, सौराष्ट्र, कपोतक लोगोंको पराजित एवं पददलित किया था। मौर्य तथा गुर्जरनरेश नवासारिका (लाटप्रदेशमें) के सुदूर दक्षिण क्षेत्र तक पहुँचे थे। महिपालके हडाला-दानपत्रसे स्पष्ट है कि कैपस लोग पूर्वी काठियावाड़ तथा मध्य गुजरातमें ९१४ ईस्वी तक शासनाधिकारी रहे। यूना दानपत्रसे विदित होता है कि ८९३ ई० तथा बादमें भी कन्नौजके शासकोंके चौलुक्य राज्याधिकारी गुजरातमें शासन कर रहे थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं अधीनस्थ शासकोंमें जिसका सम्बन्ध कल्याणीके चौलुक्योंसे रहा होगा, कन्नौजके प्रतिहारोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पांचसेराके छोटे चावड़ा राज्य-वंशको उखाड़ फेंकनेमें समर्थ एवं सफल हुआ हो। इस प्रकार कल्याणके एक राजकुमारकी राज्यपरम्पराका कन्नौजमें प्रारम्भ हुआ। यह निश्चित मान लेना भी उचित न होगा कि दसवीं सदीके पूर्वार्धमें कन्नौज प्रान्तमें कल्याण नामक नगरका अस्तित्व था और वहाँका शासन भी चौलुक्य राजवंशके अधीन था। इन अनुमानोंका ठीक-ठीक महत्त्व चाहे जो हो, इस निर्णयपर आना उचित ही होगा कि गुजरातके चौलुक्योंका संस्थापक मूल-राज, चावड़ राजकुमारीका पुत्र था और उसने अपने मामाको अपदस्थ कर अनहिलपाटक[2] का राज्य हस्तगत कर लिया। अधिकांश जैन ऐति-हासिक तिथिक्रमोंमें यह स्वीकार किया गया है कि गुजरातका प्रथम चौलुक्य

---

१. बाम्बे गजेटियर : खण्ड १, भाग २, पृ० १८७-८८ तथा ३७५।

२. डी० एच० एन० आई० : खण्ड २। बादके विवरण पत्रोंमें 'अण-हिलपाटक', अनहिलवाड़ा या अनहिलपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सर-स्वती नदीके तटपर अवस्थित आधुनिक पाटन।

शासक राजीका वंशज था। यह राजी कन्नौजकी राजधानी कल्याणके राजा भुवनादित्य तथा अनहिलवाड़पाटनके अन्तिम चौड़ राजा अथवा चावड़ा राजाकी बहिन लीलादेवीका पुत्र था।[1]

मेरुतुंगका अभिमत है कि विक्रम संवत् ९९८में राजी अपने दो भाइयों के साथ वेशपरिवर्तन कर सोमनाथपाटनकी यात्रा करने गया था। यात्रामें लौटते समय अणहिलवाड़ाके रथ प्रदर्शन समारोहमें वे शामिल हुए। राजी से रथसंचालन-कलाकी आलोचना सुनकर वहाँका राजा सामन्तसिंह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजीके वंशका विवरण जानकर उसने अपनी बहिन ललितादेवीसे उसका विवाह कर दिया। प्रसवके समय ललितादेवीकी मृत्यु हो गयी किन्तु शिशु शस्त्रोपचारके पश्चात् जीवित निकाल लिया गया। मूल नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ था, इसीलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराजकी शिक्षा-दीक्षा उसके मामाके यहाँ हुई तथा उसके मामाने उसे गोद ले लिया। मूलराज बड़ा हुआ तो सामन्तसिंह जब आसवके आवेग में रहते तो बार-बार इस आशयका कथन व्यक्त करते कि 'मैं तुम्हें राज्य-सत्ता सौंपकर पृथक् हो जाऊँगा।' किन्तु जब सामन्तसिंह गम्भीर मुद्रामें होते थे तो कहते कि राज्यसत्ता छोड़नेकी, अभी मेरी इच्छा नहीं। कहते हैं कि यह बात विभिन्न मुद्राओंमें इतनी बार कही गयी कि मूलराज इससे ऊब उठा। एक दिन उसने अपने मामा सामन्तसिंहकी हत्या कर डाली तथा राजसिंहासनपर अधिकार कर लिया।[2]

इतिहासकार फ़ोर्ब्सने यह ऐतिहासिक विवरण कुछ अन्तरके साथ स्वीकार कर लिया है कि मूलराजका पिता कन्नौजका न था बल्कि दक्षिणके कल्याणका था जो स्थान दक्षिणमें महान् चालुक्य राजवंशका केन्द्र था।[3]

---

१. फोर्ब्स : रासमाला, खण्ड १, पृ० ४९।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५-१६।

३. रासमाला : खण्ड १, पृ० २४४।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री एलफिन्स्टनका भी यही मत है।[1] मूलराजकी माता चौड़ राजवंशकी राजकुमारी थी और उसका पिता चौलुक्य था, यह सभी प्राप्त सामग्रियोंसे स्पष्ट है। किन्तु यदि मेरुतुंगके ऐतिहासिक तिथिक्रमसे उक्त कहानीकी तुलना की जाये तो उक्त कथाका व्यतिक्रम स्पष्ट हो जायेगा। मेरुतुंगका कथन है कि सामन्तसिंह ९९१ विक्रम संवत्में राजसिंहासनपर आसीन हुआ और सात वर्षों तक ९९८ विक्रम संवत् तक राज्य करता रहा। उसी समय राजी अणहिलवाड़ेमें ९९८ वि० सं०में आया और उसने लीलादेवीसे विवाह किया। लीलादेवीसे उन्हें एक पुत्र हुआ। उसका पालन-पोषण उसके मामाके संरक्षणमें हुआ तथा उसने अपने मामाकी हत्या कर डाली।

अब प्रश्न उठता है कि इन समस्त घटनाओंके लिए बीस वर्षका समय तो चाहिए ही। लेकिन बताया जाता है कि राजी वि० सं० ९९८ में पाटन आया तथा मूलराजने अपने मामाको उसी वर्ष अपदस्थ कर दिया। यदि कहा जाये कि राजीका पाटन आगमन पहले होना चाहिए तो भी स्थिति सुस्पष्ट नहीं होती। इसका कारण यह है कि सामन्तसिंहने केवल सात वर्षों तक शासन किया और उसके राज्यकालमें यह घटना सम्भवतः नहीं हुई। इस प्रकार पाटनमें राजी तथा राजसिंहासनारूढ़ सामन्तसिंहके मिलनकी घटना सत्यकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती। घटनाओंका यह विश्लेषण मेरुतुंगकी पूरी कथाको अपुष्ट जनश्रुति तथा कल्पनाके आधारपर खड़ा सिद्ध करता प्रतीत होता है। चावड़ा तथा चौलुक्य शासकोंके मिलन की उक्त कहानी इस प्रकार कल्पित-सी ही प्रतीत होती है। इस विषयमें द्व्याश्रय काव्यका मौन और भी सन्देहजनक है। यद्यपि यह कहा जाता है कि यह काव्य हेमचन्द्रकी ही अकेले रचना नहीं, फिर भी मेरुतुंगके ऐतिहासिक वृत्तसे यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है।[2] द्व्याश्रयमें मात्र

1. भारतका इतिहास : पृ० २४१, छठा संस्करण।
2. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८२।

यही कहा गया है कि मूलराज चौलुक्य था। उसकी शक्ति अत्यधिक थी और वह वीर था। [1]मूलराजके दानपत्र क्रमसंख्या १में वंशकी उत्पत्तिके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं। यह अत्यन्त संक्षिप्त है फिर भी इससे मेरुतुंगके मतका खण्डन हो जाता है। इसमें मूलराजने 'अपनेको सोलंकियों (चालुकिकानव्य)का वंशज बताया है तथा महान् राजा राजीके वंशका कहा है। इसमें यह भी कहा गया है कि उसने सारस्वत मण्डलपर (सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेश) अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त की थी।'

चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश

अब यह स्वीकार किया जा सकता है कि सामन्तसिंहकी हत्याको पण्डितों तथा भाटोंने 'बाहुबल तथा शक्तिसे प्राप्त विजय'का रूप दे दिया होगा, लेकिन मेरुतुंगकी कहानीसे इसका साम्य नहीं होता। उसने राजीको 'महान् राजाओंमें महान्' नहीं स्वीकार किया है।

अनहिलवाड़के चौलुक्य राजवंशके संस्थापकके इतिहासपर कुमारपालके समयके शिलालेख वडनगर प्रशस्तिसे एक नवीन प्रकाश पड़ा है। इसमें चौलुक्य वंशकी उत्पत्तिका इतिहास है। इस शिलालेखमें कहा गया है कि 'प्रसिद्ध वीर मूलराज राजाओंके मुकुटका ऐसा बहुमूल्य और बेजोड़ मोती था जिसने अपने वंशकी प्रसिद्धि चतुर्दिक् फैलायी.....' उसने चावड़ा वंश की राजकुमारीके भाग्यको उत्कर्षके उच्चशिखरपर पहुँचाया। राज्यलक्ष्मी उसकी दासी थी। वह विद्वत्-समूहके आह्लादका विषय था। उसके सम्बन्धी उससे प्रसन्न थे। ब्राह्मण, भाट तथा सेवक सभी उसके शौर्यपर मुग्ध थे। उसकी वीरताके कारण सभी क्षेत्रोंके राजाओंकी सौभाग्यलक्ष्मी उस समय उसकी असिकक्षमें ही रहनेमें प्रसन्नताका अनुभव करती

---

१. अणहिलवाड़ेके चौलुक्योंके एकादश दानपत्र : इण्डि० एण्टी : खण्ड ६, पृ० १८१।

थी।[1] वंश उत्पत्तिका यह विवरण मूलराजके उस दानपत्रसे[2] बहुत कुछ मिलता-जुलता है जिसमें कहा गया है कि उसने अपने बाहुबलसे सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इन प्रमाणोंसे अब यह स्वीकार करनेमें बल मिलता है कि प्रथम चौलुक्यने गुजरातपर विजय प्राप्त की थी, न कि जैसा प्रबन्धोंमें वर्णन है कि उसने अपने निकट सम्बन्धी अन्तिम चावड़ा राजासे विश्वासघात कर उसकी हत्या की थी।[3]

वडनगर प्रशस्ति तथा मूलराजके दानपत्रके इन ठोस प्रामाणिक आधारों-पर गुजरातके चौलुक्य राजवंशकी उत्पत्तिकी रूपरेखा अंकित करना युक्ति-युक्त होगा। उत्कीर्ण लेखोंमें उक्त वर्णन, दानपत्र तथा अन्यत्र सर्वत्र मूल-राजको अनहिलवाड़ेका प्रथम चौलुक्य राजा कहा गया है। इनसे इस तथ्यका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूलराजका पिता चौलुक्य वंशके मूलस्थानका राजा था तथा मूलराजने 'राज्यकी खोजमें' उत्तरी गुजरात पर आक्रमण किया।

अब इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि राजीका मूल स्थान तथा राज्य कहाँ था? गुजरातके इतिहाससे पता चलता है कि विक्रम संवत् ७५२ में कन्नौजमें कल्याण कटकमें भूराजा तथा भूवड़ (भूपति) ने जय-शेखरको पराजित कर गुजरातको अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कर्णादित्य, चन्द्रादित्य, सोमादित्य तथा भुवनादित्य कल्याणके राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। अन्तिम राजा भुवनादित्य राजीका पिता था। पाश्चात्य इतिहासकार श्री फोर्ब्स, श्री एलफिनिस्टन तथा अन्य लोगोंने उक्त

---

१. वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २ से ६, इपी० इण्डि० : खण्ड १, पृ० २९३-३०५।

२. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १९२।

३. प्रबन्ध-चिन्तामणि : पृ० १६।

कल्याणको दक्षिणी चौलुक्योंकी राजधानी माना है। उनका कथन है कि गुजराती उक्त स्थानकी जो अवस्थिति बताते हैं वह भ्रमात्मक है। इन युरोपीय इतिहासकारोंके तर्कके पक्षमें यह तथ्य सबसे प्रबल है कि दक्षिण स्थित कल्याण आठ सदी पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी थी और कन्नौजमें इस नामके कोई प्रसिद्ध नगरका पता नहीं चलता किन्तु सोलंकी चौलुक्योंके शासनके मूलप्रदेशोंके निवासियोंका अभिमत, जैसा कि डाक्टर बूलरका कथन है उससे भी अधिक प्रबल है।[१]

मूल स्थान उत्तरभारत

अनहिलवाड़के चौलुक्योंका मूल स्थान उत्तर भारत अथवा दक्षिण भारत में था; इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णयके निमित्त निम्नलिखित तथ्योंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

१. गुजरातके चालुक्य अपनेको चौलुक्य (सोलंकी) कहते हैं और अब इनके वंशका नामकरण चौलुक्य या चालिक्य अथवा चालक्य हो गया है। इसीलिए इनके आधुनिक वंशधरोंको 'चालके' सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि चौलुक्य और चालुक्य एक ही नामके दो रूप हैं तथापि यह बात समझमें नहीं आती कि पाटन राजवंशके संस्थापकने, यदि वह सीधे कल्याणसे आता जहाँ कि चालुक्य शब्द चलता है तो अपनेको 'चौलुकिक' क्यों कहा? ठीक इसके विपरीत यदि वह दक्षिणके अपने बन्धुओंसे काफी वर्षों पूर्व विलग हो गया हो और उत्तर भारतमें रहनेवाले परिवारका हो तो यह अन्तर समझा जा सकता है।

२. दक्षिणी चालुक्योंके कुलदेवता विष्णु हैं जबकि उत्तरी चालुक्योंके कुलदेवता शिव रहे हैं।

---

१. जी० : बूलर : ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री ऑव गुजरात, इण्डि० एण्टी० खण्ड ६, पृ० १८१।

३. दक्षिणी चालुक्योंका प्रतीक चिह्न शिवका नन्दी है ।[1]

४. भूपतिसे राजी तकके चालुक्य नरेशोंकी वंशावली और दक्षिणी चालुक्योंके शिलालेखोंमें उत्कीर्ण वंशावलीमें साम्य नहीं है ।

५. चौलुक्य वंशके प्रसिद्ध संस्थापक मूलराज तथा उसके दक्षिणी सम्बन्धियोंमें मैत्री सम्बन्ध न था । मूलराजको सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् तेलंगानाके तेलपा-द्वारा वरपके नेतृत्वमें भेजी हुई सेनासे सामना करना पड़ा था ।

६. मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारियोंने गुजरातमें ब्राह्मणोंकी अनेक बस्तियाँ बसायीं । ये ब्राह्मण आजतक औदीच्य (उत्तरी) के नामसे प्रसिद्ध हैं । उसने इन ब्राह्मणोंको पूर्वी काठियावाड़में सिंहपुर, स्तम्भतीर्थ या कैम्बेल तथा अन्य अनेक ग्राम प्रदान किये जो बनस तथा सावलमतीके मध्यमें अवस्थित थे ।[2] साधारणतः यह नियम है कि जब कोई राजा नये प्रदेशोंपर विजय प्राप्त करता है तो वह अपने मूल स्थानके निवासियोंको बुलाकर उन्हें वहाँ बसाता है । इस प्रकार यदि मूलराज दक्षिण भारतसे आया होता तो वह तैलंगाना तथा कर्नाटक ब्राह्मणोंकी बस्तियाँ बसाता । फलस्वरूप औदिच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंके स्थानपर दक्षिणी ब्राह्मणोंका बाहुल्य एवं प्राधान्य रहता । पर ऐसा नहीं है । यदि जैसा कि गुजरातके ऐतिहासिक तिथिक्रम अंकित करनेवाले कहते हैं वह स्वीकार कर लिया जाये कि चौलुक्य उत्तर भारतके थे, तो औदिच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंकी बस्तियोंके बसानेकी बात तत्काल समझमें आ जाती है । यह तथ्य इतना युक्तियुक्त और न्यायसंगत है कि इससे गुजरातियोंके ऐतिहासिक विवरणको प्रबल समर्थन प्राप्त होता है कि चौलुक्य उत्तरी भारतके ही थे और वे दक्षिण भारतसे नहीं आये थे ।

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१ ।

२. फोर्ब्स : रासमाला, खण्ड १, पृ० ६५ ।

अब प्रश्न आता है—कन्नौजमें चौलुक्य राज्य तथा एक दूसरे कल्याण के अस्तित्वका। यह कोई असम्भव नहीं। आठवीं शतीमें यशोवर्धनके काल से दसवीं शताब्दीके अन्त तक जबकि राठौर आये, कन्नौजका इतिहास अन्धकारमें है। कन्नौजके इतिहासका यह अन्धकार युग लगभग उसी कालका है जिसमें भूपति तथा उसके उत्तराधिकारी हुए थे। भूपति सन् ६९५-९६में शासन कर रहा था तथा मूलराज सन् ९४१-४२में राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ। फिर यह भी बात है कि उनके पूर्वज उत्तरसे आये और उन्होंने अयोध्या तथा अन्य नगरोंपर शासन किया था।[1] यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अबतक कन्नौजके ज़िलोंमें चौलुक्य राजपूत हैं। दूसरे कल्याणकी स्थिति तथा अस्तित्वका जहाँतक प्रश्न है यह ध्यानमें रखा जाना चाहिए कि यह नाम कई स्थानोंका रहा है। इस नामके दो नगर तो प्राचीन तथा बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें-से एक बम्बईके निकट कल्याण है जिसे यूनानियोंने 'कैलिनी' कहा है तथा दक्षिण कल्यान। यह पहले ही बताया जा चुका है कि चौलुक्य मलाबार तटके 'कैलियन' (कल्याण) नामक नगरके राजकुमार थे; जिसके वैभवपूर्ण ध्वंसावशेष अबतक विद्यमान हैं।[2] इन समस्त स्थितियोंका विश्लेषण तथा गुजरातियोंके कथनोंको ध्यानमें रखकर यह स्वीकार करना उचित होगा कि मूलराज उस राजा का पुत्र था जो कान्यकुब्जमें शासन करता था। उसने गुजरातपर विजय प्राप्त की जो सम्भवतः उसके पैतृक साम्राज्यका प्राचीन अधीनस्थ प्रदेश था। इस प्रकार अनहिलवाड़ेमें चौलुक्य साम्राज्यका संस्थापक मूलराज दक्षिण भारतका नहीं, अपितु उत्तरी भारतवर्षका ही मूल निवासी था।

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १४, पृ० ५०-५५।

२. यह स्थान बम्बईके निकट है। टाड : राजस्थान : खण्ड १, भाग १, पृ० १०४-५।

वंशावली

अनहिलवाड़ेकी चौलुक्योंकी वंशावली जाननेके लिए प्रभूत तथा प्रामाणिक सामग्री विद्यमान है। सोलंकी चौलुक्योंके संस्थापक मूलराजसे लेकर बारहवें तथा अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल तककी सम्पूर्ण वंशावलीके लिए प्रामाणिक इतिहास, शिलालेख तथा ताम्रपत्र हैं।[1] विश्वसनीय तथा लिखित इतिहासोंमें मेरुतुंगकी थेरावली है, जिसमें वंशावली तथा वंशवृक्ष दिया गया है। यह ऐतिहासिक तिथिक्रम सहित है। यह संस्कृत भाषामें है।[2] अनेक चौलुक्य नरेशोंके शासनकालका उल्लेख प्रबन्ध-चिन्तामणिमें भी दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक जैन-ग्रन्थकारोंने अपनी अर्ध-ऐतिहासिक रचनाओंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावलीका उल्लेख किया है।[3] किन्तु वंशावलीको सबसे प्रामाणिक वृक्षावली शिलालेखों[4] तथा [5]ताम्रपत्रोंसे प्राप्त होती है। उक्त आठ भूमिदानपत्रोंमें-से[6] सात (४ से १० तक) में चौलुक्य राजाओंकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है।

थेरावलीमें चौलुक्योंकी वंशावली इस प्रकार दी गयी है—श्रीमूलराज का पुत्र वल्लभराज हुआ और वल्लभराजके पश्चात् उसका भाई दुर्लभराज उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद उसका भाई नानागिलाका पुत्र भीमदेव राजगद्दीका उत्तराधिकारी हुआ। भीमदेवके पश्चात् उसके पुत्र श्री कर्णदेवको राजगद्दीका उत्तराधिकार मिला। श्रीकर्णदेवके पुत्र जयसिंह

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१।

२. जे० बी० आर० ए० एस० : खण्ड ९, पृ० १४७।

३. सोमप्रभाचार्य : कुमारपाल-प्रतिबोध।

४. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१। चौलुक्य राजाओंके एकादश दानपत्र।

५. इपि० इण्डि० : खण्ड १, वडनगर प्रशस्ति, प्राची शिलालेख।

६. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१।

सिद्धराज हुए। जयसिंह सिद्धराजके बाद श्री त्रिभुवनपालका पुत्र श्री कुमारपाल शासनारूढ़ हुआ। त्रिभुवनपाल, भीमदेवके पुत्र क्षेमराजके पुत्र देवपालका पुत्र था। कुमारपालके अनन्तर उसके भाई महिपालके पुत्र अजयपालको राज्यका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके बाद लघु मूलराज हुआ और पश्चात् भीमदेव द्वितीयने शासन किया। चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा त्रिभुवनपालका नाम थेरावलीमें नहीं दिया गया है।[1]

सोमप्रभाचार्यके कुमारपाल प्रतिबोधमें भी चौलुक्य नरेशोंकी वंशावली दी हुई है। इसमें लिखा हुआ है कि अनहिलपुर पाटनमें पहले चौलुक्य वंशका राजा मूलराज शासन करता था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमशः इस प्रकार हुए—चामुण्डराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव तथा जयसिंहदेव। जयसिंहदेवका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जो भीमराजका प्रपौत्र था। भीमराजको क्षेमराज नामक पुत्र था। क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद था। इसी देवप्रसादका पुत्र त्रिभुवनपाल था, जो कुमारपालका पिता था।[2]

इन ग्रन्थोंमें उल्लिखित विवरणोंके अतिरिक्त चौलुक्योंकी वंशावलीका प्रामाणिक विवरण अन्य सूत्रोंसे भी मिलता है। ये हैं गुजरातके चौलुक्य नरेशोंके सात ताम्रपत्र[3] जिनमें चौलुक्य राजवंशकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है—

१. मूलराज प्रथम
२. चामुण्डराज
३. वल्लभराज
४. दुर्लभराज
५. भीमदेव प्रथम
६. कर्णदेव, त्रैलोक्यमल्ल
७. जयसिंहदेव
८. कुमारपालदेव

---

१. जे० बी० आर० ए० एस० : खण्ड ९, पृ० १४७।

२. कुमारपाल-प्रतिबोध, पृ० ४-५।

३. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१ तथा मूल ताम्रपत्र।

९. अजयपाल, महामाहेश्वर ११. भीमदेव
१०. मूलराज द्वितीय १२. जयसिंह
१३. त्रिभुवनपालदेव

वंशावली सम्बन्धी इन ताम्रपत्रोंका विश्लेषण करनेपर यह स्पष्ट है कि थोड़े बहुत अन्तरके अतिरिक्त सभीमें साम्य है। इस प्रकार दान-पत्र ४ तथा ३ में जो अत्यल्प अन्तर है, वह नगण्य है। ५ वें दानपत्रका प्रथम पत्र उन्हीं राजाओंका उल्लेख करता है जिनका विवरण दानपत्रकी ४ क्रम-संख्याके सातवें पत्रमें मिलता है। इन दोनोंमें ही जयसिंहका नामोल्लेख नहीं हुआ है। छठवें दानपत्रके प्रथम पत्रकी वंशावली तथा विक्रम संवत् १२८३ के ५ वें दानपत्रमें उल्लिखित वंशवृक्षमें जयसिंहके विवरणके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं। दानपत्र ७:१ तथा वि० सं० १२८३ के ५ वें दानपत्रमें वि० सं० १२६३ के ३ रे दानपत्रके अनुसार जयसिंह तथा मूलराज द्वितीयका विवरण है। दानपत्र ८:१ की वंशावली तथा वि० सं० १२८८ के ७वें दानपत्रमें भी साम्य है। कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एकमें मूलराज द्वितीयकी तुलना म्लेच्छोंके अन्धकारसे व्याप्त संसारमें प्रकाश फैलानेवाले प्रात रविसे की गयी है। दानपत्र ९:१की वंशावलीका क्रम वि० सं० १२९५ के ८वें दानपत्रसे प्रायः मिलता-जुलता है। अन्तर एकमें केवल यह है कि चौलुक्य वंशके नवम राजा अजयपालको महामाहेश्वरकी उपाधि दी गयी है। इसी प्रकार दानपत्र संख्या १०:१ की वंशावली तथा वि० सं० १२६६ के दानलेखमें वंशके ग्यारह राजाओंकी नामावलीमें साम्य है। प्रथममें त्रिभुवनपालदेवका नाम नहीं है।

कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति तथा प्राचीन शिलालेखोंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावली कुमारपाल तक दी हुई है। वडनगर प्रशस्तिमें गुजरातके चौलुक्य राजाओंका क्रम इस प्रकार है—१. मूलराज, २. उसका पुत्र चामुण्डराज, ३. उसका पुत्र वल्लभराज, ४. उसका भाई दुर्लभराज, ५. भीमदेव, ६. उसका पुत्र कर्ण, ७. उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज और

८. कुमारपाल। प्राची शिलालेखमें चौलुक्य राजाओंकी यही वंशावली कुमारपाल तक अंकित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें वल्लभराजका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

वंशावली सम्बन्धी इन समस्त सामग्रियोंपर विचार तथा विश्लेषणके अनन्तर चौलुक्य राजाओंका वंशवृक्ष निम्नलिखित प्रकार स्थापित करना उचित होगा—
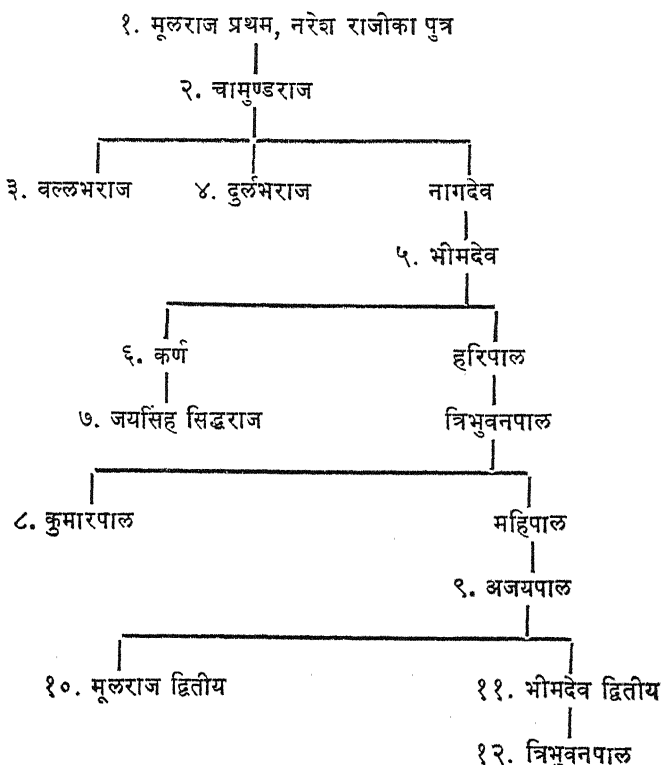
तिथिक्रम

मेरुतुंगकी थेरावलीसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०१७ में चौलुक्य श्री मूलराजने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ३५ वर्षों तक शासन किया। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १०५२ में उसका पुत्र वल्लभराज शासनारूढ़ हुआ और १४ वर्षों तक राज्य करता रहा। वि० सं० १०६६ में उसका भाई दुर्लभ उत्तराधिकारी हुआ और वह १२ वर्षों पर्यन्त शासन करता रहा। वि० सं० १०७८ में उसके भाई नागदेवके पुत्र भीमदेवने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ४२ वर्षों तक सुदीर्घ शासन किया। वि० सं० ११२० में उसका पुत्र श्रीकर्णदेव राजगद्दीपर बैठा और ३० वर्षों तक शासनारूढ़ रहा। मेरुतुंगका कथन है कि वि० सं० ११३० कार्तिक शुक्ल तृतीयासे तीन दिन तक पादुका राज्य था। उसी वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल ४ को त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल राज्याधिकारी हुआ तथा वि० सं० १२२९ पौष, शुक्ल द्वादशी तक शासन करता रहा। कुमारपालने ३० वर्ष, १ मास तथा ७ दिनोंकी अवधिपर्यन्त राज्य किया। कुमारपालके बाद उसी दिन उसके भाई महिपालका पुत्र अजयपाल राजगद्दीपर बैठा। ३ वर्ष, २ मासके पश्चात् विक्रम संवत् १२३२, फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको लघु मूलराज (मूलराज द्वितीय) राजगद्दीपर बैठा। वि० सं० १२३४ की चैत्र सुदीसे २ वर्ष, १ मास तथा २ दिनों तक उसने शासन किया। इसी दिन भीमदेव द्वितीय शासनारूढ़ हुआ।

विभिन्न ऐतिहासिक सूत्रोंसे जो प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं, उनके आधारपर चौलुक्य राजाओंका तिथिक्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

राजाओंका क्रम	प्रबन्ध चिन्तामणि	कुमारपाल प्रबन्ध	पाठावलि	शासनावधि[1]
मूलराज	३५ वर्ष	३५ वर्ष	३५ वर्ष	सन् ९६१-९९६

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, इपि० इण्डि० : खण्ड ८ इनमें डाक्टर बूलर तथा अन्य विद्वान् इससे सहमत हैं।

चामुण्डराज	१३ वर्ष	१३ वर्ष	१३ वर्ष	सन् ९९७-१००९
वल्लभराज	६ मास	६ मास	६ मास	सन् १००९- ,,
दुर्लभराज	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	सन् १००९-१०२१
भीमदेव	४२[1] वर्ष	४२ वर्ष	४२ वर्ष	सन् १०२१-१०६३
कर्णदेव	अलिखित	२९ वर्ष	२९ वर्ष	सन् १०६३-१०९३
जयसिंहदेव	४९ वर्ष	अलिखित	४८ वर्ष ८ मास १० दिन	सन् १०९३-११४२
कुमारपाल	३१ वर्ष	३१ वर्ष	३० वर्ष ८ मास २७ दिन	सन् ११४२-११७३
अजयपाल	३ वर्ष	....	३ वर्ष ११ मास २८ दिन	सन् ११७३-११७६
मूलराज द्वितीय	२ वर्ष	....	२ वर्ष १ मास २४ दिन	सन् ११७६-११७८
भीमदेवराज	६३ वर्ष	....	६५ वर्ष २ मास ८ दिन	सन् ११७८-१२४१
पादुकाराज	३ दिन	....	६ दिन	....
त्रिभुवनपाल	....	....	२ मास १२ दिन	सन् १२४१-१२४२

१. एक प्रतिमें ५२ वर्ष दिया है।

कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धी

कुमारपाल प्रतिबोधके अनुसार कुमारपाल, भीमराज प्रथमके पौत्रका पौत्र था। भीमदेवको क्षेमराज नामक पुत्र था और उसका पुत्र देवपाल था। देवपालका पुत्र त्रिभुवनपाल था। इसी त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल[1] था। मेरुतुंगका कथन है कि भीमदेवने चकुलादेवीको अपने रनिवासमें रखा था और उसीसे क्षेमराज उत्पन्न हुआ। उसकी दूसरी रानी उदयमतिसे कर्ण नामका पुत्र हुआ। कर्णदेवने मीनलदेवीसे विवाह किया और उसीसे जयसिंह हुए। क्षेमराजके पुत्रका नाम देवपाल[2] था और उसके पुत्रका नाम त्रिभुवनपाल था। त्रिभुवनपालने काश्मीरादेवीसे विवाह किया। इनके तीन पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हुईं। तीनों पुत्रोंके नाम थे—(१) महिपाल (२) कीर्तिपाल तथा (३) कुमारपाल, और पुत्रियोंके नाम क्रमशः प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे। तत्कालीन द्वयाश्रय काव्यमें क्षेमराज तथा कर्ण, भीमदेवके दो पुत्रके रूपमें अंकित हैं। इसमें यह भी लिखा है कि क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद हुआ। प्रबन्ध-चिन्तामणिमें[3] लिखा है कि भीमदेवके एक पुत्रका नाम हरिपाल था और त्रिभुवनपाल उसीका पुत्र था। कुमारपालका पिता यही त्रिभुवनपाल था। कुछ स्थानोंमें भीमका पुत्र क्षेमराज, उसका पुत्र हरिपाल, हरिपालका पुत्र त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल,[4] ऐसा भी क्रम मिलता है।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धियोंका क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

---

१. कुमारपाल प्रतिबोध, पृ० ५-६।

२. मेरुतुंगकी थेरावलीमें देवप्रसादके स्थानपर 'देवपार' लिखा है।—जर्नल आव बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी : खण्ड ९, पृ० १५५।

३. प्रबन्ध-चिन्तामणि, पृ० ११६।

४. बाम्बे गजेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृ० १८१।

रानी : चकुलादेवी = भीमदेव = उदयमति : रानी
|
क्षेमराज
|
देवपाल या देवप्रसाद अथवा हरिपाल
|
त्रिभुवनपाल = काश्मीरादेवी
|
महिपाल　कीर्तिपाल　कुमारपाल　प्रेमलदेवी　देवलदेवी
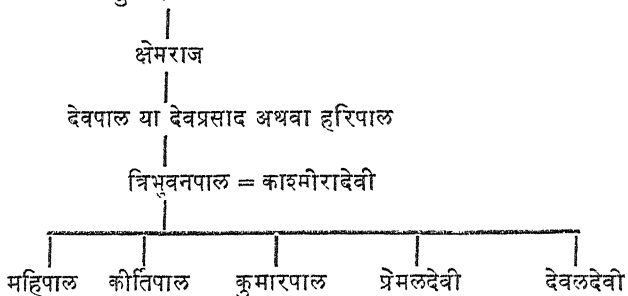
वंशावली तथा उक्त पारिवारिक सम्बन्ध-सूत्रसे विदित होता है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था। उसकी माता काश्मीरादेवी थी। कुमारपालको महिपाल तथा कीर्तिपाल नामके दो भाई थे और दो बहनें भी थीं जिनके नाम क्रमशः प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे।

विगत अध्यायमें हमें विदित हो चुका है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था और उसकी माताका नाम काश्मीरादेवी था। कुमारपालका जन्म विक्रम संवत् ११४९ अथवा सन् १०९२ ईस्त्रीमें हुआ था। कहा जाता है कि विक्रम संवत् ११९९ अथवा सन् ११४२ ईस्वीमें जब वह राज़गद्दीपर आसीन हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1] इस गणनाके अनुसार भी कुमारपालके जन्मकी उक्त तिथि ही निश्चित प्रतीत

---

१. प्रबन्ध-चिन्तामणि : प्रकाश ६, पृ० ९५।

होती है। कहा जाता है[1] कि कुमारपालके प्रपितामह क्षेमराजने जो भीम-देव प्रथमका पुत्र था, स्वेच्छासे राजगद्दीका त्याग कर दिया था।[2] किन्तु दूसरे सूत्रके आधारपर यह भी पता चलता है कि उसे उत्तराधिकारसे इसलिए वंचित कर दिया था कि भीमदेवने चकुलादेवी या बकुलादेवी नामकी नर्तकीको अपने रनिवासमें रख लिया था। प्रबन्ध-चिन्तामणिके रचयिताका कथन है कि अणहिलपुरके राजा भीमदेवने चकुलादेवीको जो यद्यपि क्षत्रिय नहीं थी अपितु वृत्तिसे नर्तकी थी, उसकी चारित्रिक दृढ़ता तथा भक्तिके कारण अपने अन्तःपुरमें स्थान दिया था। क्षेमराजके पुत्र देवप्रसाद तथा भीमदेवके पुत्र कर्णदेवमें अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री थी। कहा जाता है कि कर्णदेवकी मृत्युके समय देवप्रसादने अपने पुत्र त्रिभुवनपालको जयसिंहको सौंपकर अपनेको चितापर समर्पित कर दिया।[3]

शिक्षा-दीक्षा

कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें दुर्भाग्यसे कोई ऐसी प्रामाणिक सामग्री नहीं, जिसके आधारपर उसके शिक्षा-क्रमकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। किन्तु कुमारपालका पालन-पोषण जिस स्थितिविशेष तथा विशिष्ट वातावरणमें हुआ था, उससे हम उसकी शिक्षा-दीक्षाके स्वरूप का संकेत प्राप्त कर सकते हैं। कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल अपने राजपरिवारके शीर्षस्थ व्यक्तिका सदा विश्वस्त बना था। युद्धभूमिमें राजाके सम्मुख वह इसी अभिप्रायसे उपस्थित रहा करता था कि राजाके शरीरकी रक्षा प्राण देकर की जा सके। द्वयाश्रय-काव्यमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि सिद्धराजसे त्रिभुवनपालका सम्बन्ध बहुत अच्छा था

१. वही, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, परिशिष्ट १, पृ० १२३। "संपादलक्ष प्रहित क्षुरिकातः पालिताब्द युगशीला बकुलादेवी वेश्या श्री भीमेनोढ़ा।"

२. के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खण्ड १, पृ० ४२।

३. रासमाला : अध्याय ६, पृ० १०७।

और वह सिद्धराजके साथ रणभूमिमें जाया करता था। कुमारपालचरितमें भी इसका विवरण मिलता है कि वह सिद्धराज जयसिंहके राजदरबारमें जाया करता था। इन परिस्थितियोंमें इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा निस्सन्देह एक राजकुमारकी भाँति ही हुई होगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्रने अणहिलपाटकका जो वर्णन तथा विवरण लिखा है उसमें सम्राट्के पार्श्वमें युवराज अथवा उत्तराधिकारी राजकुमार का उल्लेख आया है।[1] इसका भी विवरण मिलता है कि राजधानीमें बहुतसे मन्दिर तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यापीठ थे।[2] इस प्रकारका वर्णन आया है कि कुमारपाल प्रातःकालमें पठन-पाठन तथा सूतोंसे[3] गाथा सुना करता था। राजदरबारमें भाटजन प्राचीन कालका इतिहास सुनाया करते थे। इतिहासका अध्ययन युवराजके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता था। कुमारपालने बाल्यकालमें अश्वारोहण, शस्त्र-संचालन तथा लक्ष्यभेदकी शिक्षा अवश्य ग्रहण की थी। प्रौढ़ जीवनमें जब वह समरभूमिमें युद्ध करने गया और वहाँ उसने जैसा सफल नेतृत्व किया, विशेषकर जिस शौर्य तथा वीर्य प्रदर्शनके लिए उसे शाकम्बरी[4] भूपाल-विजेताकी उपाधि मिली थी, उसे देखते हुए यह स्वीकार करनेमें कोई सन्देह नहीं कि बाल्यावस्थामें कुमारपालने उक्त सैनिक शिक्षाएँ समुचित ढंगसे प्राप्त की थीं। प्राचीन कालमें पर्यटन शिक्षाका आवश्यक अंग माना जाता था, जिसके बिना कोई शिक्षाक्रम पूर्ण हुआ नहीं मान्य किया जाता

---

१. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २२७।

२. वही, पृ० २२९।

३. द्वयाश्रय काव्य : प्रथम सर्ग, श्लोक ४८-४९।

४. निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित, शाकंवरी भूपाल : इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १८१।

था। कुमारपालको भाग्यचक्रके कारण सात वर्षों तक सतत विभिन्न प्रदेशों में पर्यटन करना पड़ा था। इसी भ्रमणके फलस्वरूप वह विभिन्न राज-दरबारों, मन्त्रियों तथा विद्वानोंसे सम्पर्क स्थापित कर सका और ये अनुभव उसे उस समय अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए, जब वह अणहिलवाड़ेकी राजगद्दीपर शासनारूढ़ हुआ।

कुमारपालके प्रति सिद्धराजकी घृणा

जयसिंह सिद्धराज अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त निःसन्तान रहे। इस अवस्थामें यह स्वाभाविक था कि कुमारपाल उस युवराजकी स्थितिमें होता, जिसे राज्यका उत्तराधिकार मिलनेवाला था। जैन इतिहासोंके अनुसार सिद्धराजको भगवान् सोमनाथ, साधु हेमचन्द्र, माता अम्बिका कोडीनर[1] तथा ज्योतिषियोंने कह दिया था कि उसे पुत्र न होगा और कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा, किन्तु यह बात जयसिंहको तनिक अच्छी न लगती। वह कुमारपालसे अत्यधिक घृणा करने लगा और इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हुआ कि कुमारपालकी हत्या कर डाले।[2] मेरुतुंगके कथनानुसार जयसिंहकी यह घृणा कुमारपालके नर्तकी चकुलादेवीका वंशज होनेके कारण थी। जिनमदनके विवरणके अनुसार जयसिंह सिद्धराज उक्त कार्यके लिए इस आशासे भी प्रयत्नशील था कि यदि उसकी हत्या हो जाती है तो भगवान् शिव उसे एक पुत्ररत्नका वर दे सकते हैं। कुमारपालचरितके अनुसार तो यहाँतक पता लगता है कि सिद्धराजने कुमारपालके सहित त्रिभुवनपालके समस्त परिवारकी हत्या कर देनेकी भी योजना बनायी थी। त्रिभुवनपालकी हत्या हुई किन्तु कुमारपाल बच

---

१. अणहिलवाड़ा राजधानीका प्रसिद्ध जैनमन्दिर : बाम्बे गजेटियर।

२. प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९५-१९६ तथा प्रबन्धचिन्तामणि-प्रकाश : 'भवदनन्तरमयं नृपो भविष्यति सिद्धनृपो विज्ञप्तस्तस्मिनन्हीन जातावित्यसहिष्णुतया विनाशावसरं सततमन्वेषयामास'

निकला। सिद्धराजकी घृणासे क्लेशित तथा अपने बहनोई कृष्णदेवके परामर्शानुसार उसने परिवार छोड़ दिया और अज्ञातवास करने लगा।

कुमारपालका अज्ञातवास

प्रबन्ध-चिन्तामणिके रचयिताने लिखा है कि कुमारपाल अनेक वर्षों तक साधुके वेशमें विभिन्न स्थानोंमें घूमता रहा। संयोगवश एक बार वह पाटन (अणहिलपुर) के एक मठमें आकर रहा। जिस दिन वह पाटन आया सिद्धराजके पिता कर्णदेवका वार्षिक श्राद्ध था। उसी दिन सिद्धराजने नगरके सभी संन्यासियोंको निमन्त्रण दिया था।[1] कुमारपालको भी सभी संन्यासियोंके साथ उपस्थित होना पड़ा। सिद्धराज जयसिंह सभी संन्यासियोंके समूहका एक-एक कर श्रद्धाभक्तिके साथ चरण धो रहे थे। साधुवेशमें कुमारपालका जब वे चरण धोने लगे तो उनकी कोमलता तथा उसपर अंकित राजत्वके विशेष चिह्नोंको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सिद्धराजकी मुखमुद्रापर इस घटनाके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनको कुमारपालने सावधानीसे देख लिया तथा तत्काल ही वहाँसे भाग निकला। सिद्धराजके सैनिकोंने जब उसका पीछा किया तो वह पहले कुम्हारके घरमें जा छिपा और फिर एक किसानके खेतकी कँटीली झाड़ियोंमें छिप गया। इस प्रकार उसने सैनिकोंसे पीछा छुड़ाया।

पलायनके समय जब वह एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा एक छिद्रसे एक-एक कर इक्कीस रजत-मुद्राएँ ला रहा है। बादमें चूहा जब उन रजत-मुद्राओंको फिर ले जाने लगा तो कुमारपालने उसे एक मुद्रा तो ले जाने दी और शेषको अपने अधिकारमें कर लिया। चूहा बिलसे बाहर आया और अपनी रजत-मुद्राओंको न पाकर इतना दुःखित हुआ कि तत्काल वहीं उसके प्राण निकल गये। इस घटना के कारण कुमारपालको बहुत क्लेश हुआ। एक बार जब वह अज्ञात दिशा

---

१. प्रबन्ध-चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७७।

की ओर चला जा रहा था तो उसे एक भद्र महिलासे भेंट हुई जो अपने पिताके घर जा रही थी। महिलाने कुमारपालको भाईके नाते निमन्त्रित कर सुस्वादु भोजन कराया। इसी प्रकार यात्राके पश्चात् यात्रा करता हुआ कुमारपाल खम्भातकी खाड़ीमें स्तम्भतीर्थ जा पहुँचा। यहीं प्रसिद्ध महान् जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य उस समय निवास कर रहे थे।[1]

हेमाचार्यसे मिलन

स्तम्भतीर्थमें कुमारपाल मन्त्री उदयनके यहाँ सहायता माँगने गया। उदयन भी उससे भेंट करनेके लिए मठमें गया। उसके प्रश्नोंके उत्तरमें हेमाचार्यने कुमारपालके अंगोंपर विशेष राजचिह्नोंको देखकर भविष्य-वाणी की कि कुमारपाल ही इस समस्त प्रदेशका भावी शासक होगा। यह देखकर कि कुमारपाल इस कथनपर विश्वास करनेमें संकोच कर रहा है उन्होंने अपनी भविष्यवाणीकी दो प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करायीं। एक कुमार-पालको दी तथा दूसरी मन्त्री उदयनको। हेमाचार्यकी भविष्यवाणी[2] यह थी कि यदि संवत् ११९९ कार्त्तिक मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया रविवार को जब चन्द्रमा हस्त नक्षत्रमें रहेगा, कुमारपाल सिंहासनारूढ़ न हुआ तो मैं इसके बादसे भविष्यवाणी करना ही छोड़ दूँगा। यह देख कुमारपाल तथा उदयनने स्वीकार किया कि यदि भविष्यवाणी सत्यमें परिणत हुई तो वे उनकी आज्ञाका पालन करेंगे। हेमचन्द्रने उसी समय कुमारपालसे भी प्रतिज्ञा करा ली कि यदि वह राजा हुआ तो जैनधर्म स्वीकार कर लेगा। इसके बाद कुमारपाल उदयनके घर गया। उदयनने उसका आदर-सत्कार

---

१. प्रबन्ध-चिन्तामणि : पृ० ७७ तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

२. प्रबन्ध-चिन्तामणि : पृ० १९४। सं० ११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्तनक्षत्रे यदि भवतः पट्टाभिषेको न भवति तदातः परं निमि-त्तावलोकसंन्यासः।

किया तथा सभी साधनोंसे युक्त कर उसे मालवा भेजा।

मालवामें खड्गेश्वरके मन्दिरके एक शिलापट्टमें जिसमें उसके शिलान्यासका विवरण उत्कीर्ण था, उसे एक श्लोक[1] दिखायी पड़ा जिसमें यह भाव व्यक्त थे कि—जब ११ सौ ९९ वर्ष पूर्ण हो जायेंगे तो ओ विक्रम, तुम्हारे समान ही कुमार नामका प्रतापी राजा होगा।[2] इस उत्कीर्ण लेखको पढ़कर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। उसी समय कुमारपालको विदित हुआ कि सिद्धराज जयसिंहका देहान्त हो गया। यह सुनकर वह अणहिलपुरकी ओर चला।

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन

कुमारपालके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें प्रभावकचरित्रका विवरण अल्पान्तरके साथ उक्त आशयका ही है। हेमचन्द्रने कुमारपालके भाग्योदयमें कितना योगदान दिया, उसका वर्णन इसमें मिलता है। कहते हैं कि जयसिंहको गुप्तचरों-द्वारा विदित हो गया था कि कुमारपाल साधुवेशमें तीन-सौ साधुओंके साथ अणहिलवाड़ा आया है। कुमारपालको पकड़नेके लिए ही राजाने सभी साधुओंको निमन्त्रित किया और सिद्धराज जयसिंहने सभी साधुओंके चरण धोनेका निश्चय किया। ऐसा करनेमें बाह्य रूपसे तो असीम भक्तिका प्रदर्शन था किन्तु वास्तवमें कुमारपालको उसके विशिष्ट राजचिह्नोंके आधारपर पकड़ना ही उसका अभिप्रेत था। ज्यों ही उसने कुमारपालके पैरका स्पर्श किया उसमें उसे कमल, छत्र तथा पताकाके विशिष्ट राजचिह्न अंकित मिले।[3] जयसिंहने अपने सेवकोंकी ओर संकेत

---

१. प्रबन्ध-चिन्तामणि : पृ० १९४, 'पुण्ये वर्षसहस्रशते वर्षाणां नवनवत्यधिके भवति कुमारनरेन्द्रस्तव विक्रमराजसदृशः।'

२. पुरातन-प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

३. विज्ञप्तमन्यदाचारैर्जटाधरशतत्रयम्। अभ्यागादस्ति तन्मध्ये भ्रातृपुत्रो भवद्रिपुः॥ भोजनाय निमन्त्र्यन्ते ते सर्वेऽपि तपोधनाः। पाद-

किया। कुमारपालने यह देख लिया और तत्क्षण हेमचन्द्रके निवासमें जा छिपा। गुप्तचर उसका पीछा करते रहे। हेमचन्द्रने उसपर ताड़ वृक्ष फैला दिये। ताड़के पत्रोंको राज्याधिकारियोंने शीघ्रतामें नहीं देखा। जब तात्कालिक संकट दूर हो गया तो कुमारपाल अणहिलवाड़ेसे भाग निकला। एक शैव ब्राह्मण वोसरीके साथ वह स्तम्भतीर्थ चला गया। यहाँ आकर उसने अपने मित्रोंको मन्त्री उदयनके पास सहायताका सन्देश लेकर भेजा। उदयनने राजाके शत्रुको किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नहीं किया। रात्रिमें कुमारपाल बहुत क्षुधा-पीड़ित हुआ। वह रातमें ही एक जैनमठमें आया। संयोगसे यहीं हेमचन्द्र चातुर्मास्य कर रहे थे। हेमचन्द्रने कुमारपालके विशिष्ट राजचिह्नोंको पहचानकर और यह समझकर कि यही भावी राजा है उसका स्वागत किया।[1] हेमचन्द्रने भविष्यवाणी की कि सातवें वर्ष वह राज्य सिंहासनपर आसीन होगा। हेमचन्द्रकी प्रेरणासे ही उदयनने कुमारपालकी भोजन, वस्त्र तथा धनसे सहायता की।[2] इसके पश्चात् सात वर्षों तक कुमारपाल कापालिकके वेशमें अपनी पत्नी भोपालादेवीके साथ विभिन्न प्रदेशोंमें भ्रमण करता रहा।[3] ११९९ विक्रम संवत्में जयसिंहकी मृत्यु हुई।[4] कुमारपालको जब यह समाचार मिला तो वह सिंहासनपर

योर्यस्य पद्मानि ध्वजश्छत्रं स ते द्विषन् ॥ श्रुत्वेत्याह्वाय्य तान् राजा तेषां प्राक्षालयत् स्वयम्। चरणौ भक्तितो यावत् तस्याप्यवसरोऽभवत्। पद्मेषु दृश्यमानेषु पदयोर्दृष्टिसंज्ञया। ख्यातेऽत्र तैर्नृपोज्ञानात् कुमारोऽपि बुबोध तत्।

१. प्रभावकचरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३७६-३८४।

२. वही,—'वरासन्युपवेश्योच्चे राजपुत्रास्स्वनिर्वृतः। अमुतः सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यसि।'

३. वही : पृ० १९७।

४. वही : द्वादशस्वथ वर्षाणां शतेषु विरतेषु च। एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवङ्गते ॥

अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त अणहिलपुर वापस लौटा ।[1]

कुमारपालका भ्रमण और जिनमदन

जिनमदनके 'कुमारपालचरित्र' में कुमारपाल तथा हेमचन्द्रका मिलन बहुत पहले कराया गया है। कुमारपालके अज्ञातवास तथा भ्रमणकी कहानी जिनमदनने भी थोड़े-बहुत अन्तरके साथ उसी प्रकार कही है। उसने लिखा है कि जयसिंहकी दृष्टि कुमारपालके प्रति उस समयसे बदली जब वह उसके दरबारमें अपनी अधीनता प्रकट करने गया था। जयसिंह के दरबारमें उसने हेमचन्द्रको देखा। हेमचन्द्रसे मिलनेके लिए वह तत्काल मठमें गया। वहाँ हेमचन्द्रने कुमारपालको उपदेश दिया तथा प्रतिज्ञा करायी कि वह परदाराको बहन समझेगा।[2]

कुमारपालके पलायनकी जो कथा जिनमदनने लिखी है उसमें प्रभावक-चरित्र तथा प्रबन्ध-चिन्तामणिमें वर्णित कथाका मिश्रण है। जिनमदन तथा मेरुतुंग दोनों ही इसपर एकमत हैं कि पलायन और भ्रमण करते हुए कुमारपालने हेमचन्द्रसे पहले कच्छमें भेंट की। किन्तु कुमारपाल हेमचन्द्र का यह मिलन कच्छके बाहरी द्वारपर स्थित एक मन्दिरमें होता है। यहीं उदयन भी हेमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आता है। उदयनकी उपस्थितिमें कुमारपालके प्रश्न करनेपर कि आगन्तुक कौन है, हेमचन्द्रने पूर्वके इतिहासकी चर्चा की है। इसके पश्चात् हेमचन्द्रकी भविष्यवाणी होती है और जिस प्रकार मेरुतुंगने लिखा है उसी प्रकार उदयनके यहाँ कुमारपालका आदर-सत्कार होता है। जिनमदनने तो यहाँतक लिखा है कि कुमारपाल बहुत दिनों तक उदयनका अतिथि रहा। जब जयसिंहको कुमारपालके कच्छमें रहनेकी बात ज्ञात हुई तो उसने कुमारपालको पक-

---

१. वही : श्लोक ३९५-३९७।

२. जिनमदन : कुमारपालचरित्र : पृ० ४४-५४। यह उपदेश ब्राह्मण-साहित्यके अनेक उद्धरणोंसे युक्त है।

ड़नेके लिए सैनिक भेजे। पीछा करते हुए सैनिकोंसे बचनेके लिए कुमारपाल हेमचन्द्रके मठमें भागा तथा वहाँ पाण्डुलिपिके समूहकी कोठरीमें छिप गया। पलायनकी अन्तिम कथा सम्भवतः प्रभावकचरित्रमें वर्णित हेमचन्द्रकी सहायताविषयक कहानीकी पुनरावृत्ति है। सम्भवतः जिनमदनने यह उचित नहीं समझा कि अणहिलपुरमें हेमचन्द्र-कुमारपाल मिलन हो और तत्काल बाद ही कच्छमें। इसलिए उसने ताड़पत्रोंमें छिपनेके प्रसंगको कच्छकी घटना बताया है। इस घटना प्रसंगको वास्तविकताका रूप देनेके लिए उसने पाण्डुलिपियोंकी कोठरीका उल्लेख किया है। इसके पश्चात्के भ्रमणोंका विवरण जिनमदनने बहुत विस्ततृरूपसे लिखा है। प्रभावकचरित्र तथा प्रबन्ध-चिन्तामणिमें इनका उल्लेख नहीं मिलता। निश्चय ही जिनमदनके इन विस्तृत विवरणोंका स्रोत पृथक् रहा है। इस विवरणके अनुसार कुमारपाल वातपद्र (बड़ौदा) की ओर जाता है और तत्पश्चात् क्रमशः भृगुकच्छ (भड़ौंच), कोल्हापुर, कल्याण, कनेई तथा दक्षिणके अन्य नगरोंमें परिभ्रमण करता हुआ पैथान-प्रतिष्ठान होता हुआ अन्तमें मालवा पहुँचता है। जिनमदनका यह वर्णन श्लोकबद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक कुमारपालचरित्रोंके आधारपर यह प्रस्तुत किया गया है।[1]

मेरुतुंगकी प्रबन्धचिन्तापणि, प्रभावकचरित्र तथा जिनमदनके कुमारपालमें, अज्ञातवास और पलायनकी मिलती-जुलती ही कथाएँ मिलती हैं। मेरुतुंगका उक्त वर्णन प्रभावकचरित्रसे प्रायः एकदम साम्य रखता है। इनके वर्णनमें जो कुछ अन्तर हैं, उनमें एक ध्यान देने योग्य यह है कि मेरुतुंगकी कथामें हेमचन्द्र एक ही बार सामने आते हैं। इसमें न तो अणहिलपुरमें ताड़की पाण्डुलिपियोंमें छिपनेका कथाप्रसंग उसने वर्णित किया है और न कुमारपालके सिंहासनारूढ़ होनेके पूर्व दूसरी भविष्यवाणी

---

१. जिनमदन : कुमारपालचरित्र : पृ० ५८-८३। इसमें हेमचन्द्र तथा उदयनके मिलनका भी विवरण है।

का उल्लेख। कुछ अन्तर-सहित उसने हेमचन्द्र तथा कुमारपालके स्तम्भ-तीर्थमें मिलनेकी कथाप्रसंगका ही विवरण दिया है।

मुसलिम इतिहासकी साक्षी

सम-सामयिक देशके इन विवरणोंके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारने भी कुमारपालके पलायनकी घटनाका उल्लेख किया है। इसमें कहा गया है कि कुमारपालको अपने प्रारम्भिक जीवनमें वेश बदलकर जयसिंहकी मृत्यु तक अनेकानेक देशोंका परिभ्रमण करना पड़ा था। अबुलफ़ज़लने अपनी आइने-अकबरीमें लिखा है कि कुमारपाल सोलंकीको अपने प्राणके भयसे जयसिंहके मृत्युपर्यन्त निर्वासनमें रहना पड़ा था।[1]

उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण

संस्कृत, प्राकृत तथा जैनग्रन्थोंमें अल्पाधिक अन्तरके साथ कुमारपालके अज्ञातवास, पलायन और परिभ्रमणके जो वर्णन मिलते हैं, उनसे इस निश्चित निष्कर्षपर आना स्वाभाविक है कि कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन राजनीतिक था। इस कालमें उसे अनेकानेक संकटों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जैनग्रन्थोंमें कुमारपालके भाग्योदय तथा उसको हेम-चन्द्र-द्वारा दी गयी सहायताके जो विवरण मिलते हैं, उससे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जैनमुनि हेमचन्द्रने कुमारपालको महान् सहायता प्रदान की थी। जिस समय कुमारपाल आश्रयविहीन हो अज्ञातवास तथा असहा-यावस्थामें इधर-उधर भ्रमण कर रहा था उस समय न केवल हेमचन्द्रने उसकी सहायता की, अपितु उसका पथ-प्रदर्शन भी किया। वस्तुतः उस समय जैनमुनि हेमचन्द्रके आदेशसे ही उदयनने राजा सिद्धराज जयसिंह द्वारा शत्रु समझे जानेवाले कुमारपालकी सहायता की। उदयनके यहाँ कुमार-पालके लिए न केवल शरण तथा भोजनकी व्यवस्था हुई अपितु उसने कुमारपालको धनादिकी सहायता देकर मालवा भेजा। हेमचन्द्राचार्यने ही

१. आइने-अकबरी : खण्ड २, पृ० २६३।

भविष्यवाणी की थी कि कुमारपाल गुजरातका भावी राजा होगा तथा सिद्ध-राज जयसिंहके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिकारी होगा। जिन संकट तथा विषम परिस्थितियोंमें कुमारपाल वेश परिवर्तन कर विभ्रमित भ्रमण कर रहा था उनमें यदि जैनमुनि हेमचन्द्रकी प्रेरणा, पथप्रदर्शन और सहायता न मिली होती, तो सम्भवतः उसके राजनीतिक जीवनकी विकासधारा कुछ और ही होती।

अणहिलपुर (पाटन) आगमन

सतत सात वर्षों तक साधु वेशमें अनेकानेक आपत्तियों और विपत्तियोंका सामना करता हुआ कुमारपाल अपनी पत्नी-सहित जब विक्रम संवत् ११९९में मालवामें था तो उसे सिद्धराज जयसिंहके देहान्तका समाचार विदित हुआ।[1] वह तत्काल ही राजगद्दीपर अधिकार करने अणहिलपुर लौटा। प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित्र दोनोंमें ही यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि जब जयसिंह सिद्धराजकी मृत्यु हुई तो यह समाचार पाकर कुमारपाल अणहिलपुर वापस आया। सात वर्षों तक निरन्तर देश-देशान्तर तथा राजदरबारोंके भ्रमणसे ज्ञानार्जन और अनुभवोंका संग्रह कर वह अणहिलपुर (पाटन) लौटा।[2]

१. प्रभावकचरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३९१-४००।

२. वही,—प्रस्थापितो मालवके देशं गतः···गुर्जरनाथं सिद्धाधिपं परलोकगतमवगम्यः—प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंगने लिखा है कि मालवासे जिस समय कुमारपाल अणहिलपुर लौटा तो उस समय रात्रिका समय हो गया था। उस समय वह बहुत ही भूखा था और उसके पासका सारा धन भी शेष हो गया था। उसने एक मिष्ठान्न-गृहसे कुछ माँगकर खाया और तब अपने बहनोई कान्हदेव (कृष्णदेव) के घर गया। कान्हदेव जयसिंह सिद्धराजके मन्त्रियोंमें सर्वप्रमुख था और उसीको जयसिंहने योग्य तथा उपयुक्त शासकको

सिंहासनारूढ़ करनेका कार्यभार सौंपा था।[१] राज्य-दरबारसे आकर कान्हदेवने कुमारपालको देखा तो विशिष्ट सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। फोर्ब्सने इस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे ही कान्हदेवने कुमारपालके आगमनका समाचार सुना वह राजमहलसे बाहर निकल आया और उसने कुमारपालका हार्दिक स्वागत किया और उसे आगे कर स्वयं पीछे चलकर प्रासादके भीतर ले गया।[२]

राजसिंहासनके लिए निर्वाचन

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रस्तुत सेनाके साथ कान्हदेव (कृष्णदेव) कुमारपालको राजमहल ले गया। जयसिंहका उत्तराधिकारी कौन हो इसी प्रश्नको हल करना था।[३] जब सभी राजदरबारी और प्रमुख सभामें एकत्र हुए तो पहले जयसिंहके एक युवक सम्बन्धीको निर्वाचनके निमित्त गद्दीपर बैठाया गया। लेकिन यह युवक एकदम असावधान व्यक्ति-सा प्रतीत होता था। उसने अपने पैरोंको उचित प्रकार वस्त्रसे ढंका तक न था; इसलिए साधारण लोकज्ञानके अभावमें उसे राजगद्दीके अयोग्य समझा गया। उक्त पदके लिए एक अन्य व्यक्तिको भी राजसिंहासनपर बैठाया गया, किन्तु वह भी मान्य सभासदों और प्रमुखों-द्वारा अनुपयुक्त ठहराया गया। जब वह सिंहासनपरबैठा तो बड़ी विनम्रताकी मुद्रामें, अपने दोनों हाथोंसे प्रणाम करता दृष्टिगत हुआ। इतना ही नहीं, जब उससे पूछा गया कि जयसिंह-द्वारा छोड़े गये अठारह प्रदेशोंका शासन तुम किस प्रकार करोगे तो उसने उत्तर दिया आप लोगोंके परामर्श और आदेशसे। यह उत्तर जयसिंह सिद्धराजके शौर्यपूर्ण स्वरको सुननेवाले अभ्यस्त प्रधानोंके कानको प्रभावपूर्ण और उचित नहीं लगे। ऐसा विनम्र और प्रभावहीन व्यक्तित्व भला सर्वोच्च राजकीय पदके

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

२. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

३. प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

लिए कैसे मान्य हो सकता था ?

कान्हदेवने, जिसे ही मुख्यत: योग्य शासकका चुनाव करना था, कुमारपालको सभाके सम्मुख उपस्थित किया। कुमारपाल राजकीय गौरवके अनुरूप ज्योंही सिंहासनपर बैठा चारों ओर हर्षध्वनि छा गयी। उससे भी प्रश्न पूछा गया कि वह सिद्धराज-द्वारा छोड़े गये राज्योंका शासन किस प्रकार करेगा ? इसका उत्तर उसने शब्दोंमें नहीं, अपितु पैरोंपर खड़े हो, नेत्रोंको आरक्त तथा अपनी असिको कक्षसे आधा बाहर निकालकर दिया।[1] राज्यपुरोहितने इसपर तत्काल ही राज्याभिषेकसम्बन्धी विविध संस्कार सम्पन्न किये। कान्हदेवने राजाके सम्मुख आदर तथा श्रद्धाका भाव प्रदर्शित किया। राजभवन हर्षध्वनिसे गूँज उठा। गुजरातके बड़े-बड़े जागीरदारों तथा भूमिधरोंने कुमारपालके सिंहासनके सम्मुख नतमस्तक होकर अपनी अधीनता व्यक्त की। शंखध्वनि तथा मंगलवाद्यके मध्यमें इस प्रकार कुमारपाल जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी निर्वाचित और मान्य हुआ। जब सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[2]

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालके राज्यारोहणकी एक भिन्न कथा वर्णित है। इसमें कहा गया है कि अणहिलपुर आनेपर कुमारपाल एक श्रीमत सम्बा (?) से मिला। इस अज्ञात व्यक्तित्वके विषयमें कुछ प्रामाणिक पता नहीं चलता। श्रीमत सम्बा जैनमुनि हेमचन्द्रके पास इस अभिप्राय और आशयसे गया कि कुमारपालमें, जयसिंहके उत्तराधिकारी होनेके विशिष्ट चिह्न एवं लक्षणादि हैं अथवा नहीं। जैसे ही उसने वहाँ प्रवेश किया उसने देखा कि कुमारपाल मठके गद्दीदार सिंहासनपर बैठा था। हेमचन्द्रके अनु-

---

१. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

२. वही।

सार यह चिह्न ही वांछित राजचिह्न था। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बह-नोई कान्हदेवके साथ, जो सामन्त था और जिसके पास दस सहस्र सैनिकोंकी सेना थी, राजमहल गया और राज्याधिकारी निर्वाचित किया गया।[1]

कुमारपाल-प्रतिबोधके रचयिता सोमप्रभाचार्यका मत है कि कुमार-पालके समस्त शरीरपर राज्यचिह्न थे। इसलिए दरबारके सरदारोंने ज्योतिषियों तथा ज्योतिष-विज्ञानके विशेषज्ञों सामुद्रिक, मौहूर्तिक, शाकु-निक तथा नैमित्तिकोंसे परामर्श कर और राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श कर कुमारपालको सिंहासनारूढ़ किया। कुमारपालका यह निर्वाचन सभीको इतना सन्तोषजनक प्रतीत हुआ कि निष्पक्ष निर्गुणोंने भी इसे न्यायो-चित स्वीकार किया तथा प्रसन्नता प्रकट की।[2]

राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव

इस प्रकार सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युके पश्चात् यद्यपि कुमारपाल बिना किसी संघर्षके सिंहासनारूढ़ हुआ किन्तु राजगद्दीके लिए एक प्रकार-का निर्वाचन संघर्ष तो अवश्य हुआ। यह बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि सिद्धराजकी मृत्युके बाद जो स्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमें कुमारपालके

---

१. आयात् पुरान्तरा श्रीमत्सांबस्य मिलतस्ततः। चित्तं संदिग्ध राज्या-प्तिनिमित्तान्वेषणादृतः॥—प्रभावकचरित्र: २२, श्लोक ३५६, ४१७।

२. एसो जुग्गो रज्जस्स रज्जलक्खण सणाह सव्वंगो
ता झत्ति ठविज्जउ निग्गुणेहिं पज्जत्तमन्नेहिं।
एवं परूप्परं मंतिऊण तह गिण्हिऊण सवायं।
सामुद्दिय मोहुत्तिय-साउणिय नेमित्तिय-नराणं।
रज्जंमि परिट्ठवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं।
तत्तो भुवणमसेसं परिओस-परं व संजायं।
—कुमारपाल-प्रतिबोध: पृ० ५।

बहनोई कान्हदेवने उसके सत्त्वोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखा। राजगद्दीके तीन उम्मीदवार थे—कुमारपाल तथा अन्य दो। ये दोनों सम्भवतः उसके भाई महिपाल तथा कीर्तिपाल ही थे।[1] राज्यमन्त्रि-परिषद्के सम्मुख ये दोनों भी कुमारपालके साथ ही, कौन शासक चुना जाये, इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए उपस्थित किये गये थे। राजसभा और प्रमुखोंके सम्मुख उत्तराधिकारीके चुनावमें ये दोनों ही राज्याधिकारके लिए अयोग्य समझे गये तथा कुमारपाल राजा निर्वाचित हुआ।

हेमचन्द्रके कुमारपालचरितमें भी इस बातका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कुमारपाल अपने मित्रों तथा राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंकी सहायतासे राज-सिंहासनपर अधिकार कर सका।[2] इसी प्रकार प्रभावकचरित्रके प्रणेताका भी कथन है कि कुमारपालका राज्यपदके लिए निर्वाचन हुआ था।[3] इन स्पष्ट उल्लेखोंको ध्यानमें रखकर हम इस निर्णयपर आते हैं कि सिंहासनारूढ़ होनेके पूर्व कुमारपालका वैधानिक निर्वाचन हुआ था। राज्य उत्तराधिकारके लिए वहाँ जो प्रतियोगिता हुई उसमें कुमारपालने अपनेको सबसे योग्य सिद्ध किया और इसीलिए राज्यके प्रधानोंने उसे राजा निर्वाचित किया। यह भी कहा जाता है कि कुमारपालको राजसिंहासनारूढ़ करानेमें गुजरातके शक्तिशाली जैन दलका प्रमुख हाथ था। कुमारपालको दस सहस्र सेनापर प्रभुत्व रखनेवाले कान्हदेवका समर्थन प्राप्त था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है।

---

१. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

२. तत्थसिरि कुमर-वालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
सुपरिट्ठ-परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
—कुमारपालचरित : प्रथम सर्ग, पृ० १५।

३. प्रभावकचरित्र : अध्याय २२, ३५६, ४१७।

प्रबन्धचिन्तामणि,[१] प्रभावकचरित्र[२] तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रह[३] सभी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं कि कुमारपाल सामन्त कान्हदेवके साथ एक बड़ी सेना-सहित राजदरबारमें गया था।[४] इससे स्पष्ट है कि राज्याधिकारके लिए कुमारपालके निर्वाचनके पीछे सशस्त्र सेनाका भी बल था। इसलिए वास्तविक अर्थमें उसे निर्वाचन नहीं कहा जा सकता। कुमारपालका प्रभावशाली व्यक्तित्व, सम्पन्न जैनदलोंका सहयोग और राज्याधिकारियों-द्वारा प्रदत्त सैनिक सहायता, इन समस्त विशेष स्थितियोंने कुमारपालको सिद्धराज जयसिंहका उत्तराधिकारी बनाने तथा राजसिंहासन प्राप्त करानेमें सहायता की, इसमें सन्देह नहीं।

विचारश्रेणीके अनुसार कुमारपाल मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको सिंहासनारूढ़ हुआ और कुमारपालप्रबन्धके[५] मतानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थीको। प्रबन्धचिन्तामणि[६] और कुमारपालप्रबन्धका[७] अभिमत है कि राज्याभिषेकके समय कुमारपालकी अवस्था लगभग पचास वर्षकी थी। मेरुतुंगकी थेरावलीमें लिखा है कि मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको श्रीकुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुए।[८] इस प्रकार प्राप्य सभी विवरणोंके अनुसार राज्याभिषेकके समय

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।
'प्रातस्तेन भावुकेन स्वसैन्यं सन्नद्धं नृपसौधमानीयाऽभिषेक।'

२. प्रभावकचरित्र : २२ अध्याय, पृ० १९७। "तत्रास्ति कृष्णदेवाख्यः सामन्तोऽश्वायुतस्थितिः...."

३. पुरातनप्रबन्धसंग्रह : पृ० ३८।

४. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

५. वही।

६. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९५।

७. रासमाला : ११ अध्याय, पृ० १७६।

८. मेरुतुंग : थेरावली : पृ० १४७ तथा बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल : खण्ड १०।

सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपालकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1]

कुमारपालका राज्याभिषेक

सोमप्रभाचार्यने अपने कुमारपालप्रतिबोधमें कुमारपालके राज्याभिषेक संस्कार तथा समारोहका वर्णन किया है। यह विवरण अत्यन्त रोचक तथा तत्कालीन वातावरणकी अनुपम झाँकी कराता है। इसमें कहा गया है कि जब कुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुआ तो सुन्दर नर्तकियाँ नृत्य तथा गायन-कलाका प्रदर्शन करने लगीं। समस्त संसारमें मंगलवाद्यका घोष होने लगा। राजप्रासादका प्राङ्गण टूटी हुई मालाओंसे आच्छादित हो गया था। उसका प्रभाव दिक्-दिगन्तर तक फैल गया। इस प्रकार कुमारपालने अपना शासनकाल प्रारम्भ किया।[2] प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रहमें भी राज्याभिषेक संस्कार समारोहके विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[3]

समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुमारपालके राज्या-रोहणके अवसरपर प्रजावर्गमें प्रसन्नताकी व्याप्त लहरका वर्णन किया है।

---

१. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

२. तुट्टहार दंतुरिय घरंगण नच्चिय चारुविलास पणंगण
निब्भर सद्द भरिय भुवणंतर वज्जिय मंगल तूर निरंतर।
साहिय दिसा चउक्को चउव्विहोवाय धरिय चउवन्नो
चउवग्गसेवणपरो कुमर-नरिंदो कुणइ रज्जं।
—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५, श्लोक ६२, ६३।

३. अभिषेकमिहैवास्य विदध्वं ध्वस्तदुर्द्धियः।
आसमुद्रावधिं पृथ्वीपालयिष्यत्यसौ ध्रुवम्॥
अथ द्वादशधा तूर्यध्वनिडम्बरिताम्बरम्।
चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमङ्गलम्॥
—प्रभावकचरित्र : २२ अध्याय, पृ० १९७।

इसमें कहा गया है कि सिद्धराजकी मृत्युसे शोकग्रस्त प्रजाके हृदयमें उसने आनन्दकी धारा प्रवाहित कर दी ।[1] सिंहासनपर आसीन होनेके उपरान्त कुमारपाल उन लोगोंको नहीं भूला था जिन्होंने विपत्तिकालमें उसकी सहायता की थी । उन सभी सहायक लोगोंको सम्मानित पद प्रदान किये गये । कहा जाता है कि उस कुम्हारको, जहाँ कुमारपालने शरण ली थी, सात-सौ ग्राम चित्रकूट अथवा राजपूतानेके निकट चिटोड़ा क़िलेके पास दिये गये । प्रबन्ध-चिन्तामणिकार मेरुतुंगका कथन है कि उसके समयमें उक्त कुम्हारके वंशज विद्यमान थे और हीनवंशमें उत्पन्न होनेकी लज्जासे अपनेको सगरा पुकारते थे ।[2] भीमसिंह जिसने कुमारपालकी जीवन-रक्षा की थी, उसका अंगरक्षक नियुक्त किया गया । देवश्रोने राज्यारोहणके अवसरपर कुमारपालको तिलक किया और उसे देवपो[3] नामक ग्राम प्रदान किया गया था। बड़ौदाके कलूक वणिक्को, जिसने कुमारपालको चना दिया था वातपद्र अथवा बड़ौदा ग्राम मिला । कुमारपालके चिरसाथो वोसारीको लतामण्डल अथवा दक्षिण गुजरातका राज्यपाल नियुक्त किया गया था ।

राज्याभिषेकके पश्चात् कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पटरानी बनाया । अपने सबसे पुराने समर्थक तथा प्रारम्भिक सहायक उदयनके पुत्र भागवत अथवा वहडको उसने अपना महामात्य (प्रधान सचिव) नियुक्त

---

१. एको यः सकलं कुतूहलितया बभ्राम भूमण्डलं
प्रीत्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्यलक्ष्मीः स्वयम् ।
श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजां
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्यवंशध्वजः ॥

—मोहराजपराजय : १, २८, पृ० १६ ।

२. आलिगकुलालाय सप्तशतीग्राममिता विचित्राः चित्रकूटपट्टिका ददे ।		—प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८० ।

३. कुमारपाल प्रबन्धके अनुसार धवलक्का अथवा धोलकर ।

किया तथा अलिगको महाप्रधान बनाया।[१] उदयनका दूसरा पुत्र अहड या अर्पभट्ट कुमारपालके आदेशानुसार न चला तथा उसके अधीन न रहा।[२] वह साँभरप्रदेशके राजाके यहाँ नौकरी करनेके निमित्त भाग गया।[3]

कुमारपाल, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पचास वर्षकी अवस्थामें राजगद्दीपर बैठा।[४] अपने प्रारम्भिक जीवनमें विभिन्न देशों और राज्यदरबारोंमें भ्रमणके फलस्वरूप अर्जित अनुभवोंके कारण, कुछ कालके अनन्तर ही कुमारपाल तथा उसकी राजसभाके अनेक पुराने उच्च अधिकारियोंमें प्रशासन सम्बन्धो नीतिविषयक मतभेद उत्पन्न हो गया।[५] पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि इतने योग्य तथा प्रभावशाली शासकके अधीन होनेके परिणामस्वरूप उनका समस्त प्रभाव एवं प्रभुत्व समाप्त हो गया है। इसलिए उन्होंने राजाकी हत्या करने और अपने प्रभावमें रहनेवाले शासकको राजगद्दीपर बैठानेकी मन्त्रणा की। इस प्रकार सभी सरदारोंने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि कुमारपालकी हत्या कर दी जाये। इस षड्यन्त्रको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने, उस नगर-द्वारपर

---

१. कुमारपालप्रतिबोधमें लिखा है कि उदयन महामात्य तथा भागवत सेनापतिके पदपर नियुक्त किये गये थे। उदयनके सबसे छोटे पुत्र सोल्लाने राजनीतिमें भाग नहीं लिया।

२. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७७।

३. साँभरके अणक या अरुणोराजाने, कहते हैं कुमारपालकी बहनसे विवाह किया था। बहनके साथ दुर्व्यवहार करनेपर कुमारपालने उससे युद्ध किया। इसी नामके कुमारपालकी चाचीके पुत्र, बघेल वंशके पूर्वज तथा भीमपल्लीके प्रधानसे उक्त अरुणोराजाका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए।

४. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

५. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

हत्यारोंको एकत्र किया, जिससे उसी रात्रिको कुमारपाल प्रवेश करनेवाला था। किन्तु 'पूर्वजन्मकृत सुकृतोंके फलस्वरूप' इस षड्यन्त्रका आभास कुमारपालको समय रहते लग गया और वह कार्यक्रममें पूर्व निश्चित मार्गसे न आकर दूसरे मार्गसे नगरमें आया। इसके पश्चात् कुमारपालने षड्यन्त्रकारियोंको मृत्युदण्ड दिया।[1]

थोड़े कालके पश्चात् ही कान्हदेवने, जिसने कुमारपालको राज-सिंहासनपर आसीन कराया था, अपनी सेवाओंको अत्यधिक बहुमूल्य समझकर, कुमारपालके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ किया। यही नहीं, कान्हदेव कुमारपालकी पूर्वदशा तथा उसकी वंशोत्पत्तिका उल्लेख कर राज्यसत्ताकी स्पष्ट अवज्ञा करने लगा। कुमारपालने जब इसका विरोध किया तो उसे और भी अशिष्ट उत्तर सुनना पड़ा। थोड़े दिनोंके बाद कुमारपालने जब यह भली प्रकार अनुभव कर लिया कि कान्हदेव सदा अवज्ञा करनेका ही निश्चय कर चुका है तो उसने उसे भी मृत्युदण्ड दिया। इस सम्बन्धमें मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालने कान्ह-देवसे अपनी आलोचनाएँ, व्यक्तिगत भेंट-मुलाक़ात तक ही सीमित रखने की बात कही, किन्तु कान्हदेवके अपमानजनक व्यवहारका अन्त होते न देख अन्तमें उसकी आँखें निकलवाकर उसे घर भिजवा दिया।[2] अवज्ञाके परिणामका यह उदाहरण उसकी राज्यसत्ताको सुदृढ़ करनेमें बहुत प्रभाव-कारी सिद्ध हुआ और उस दिनसे फिर सभी सामन्त राजाज्ञाकी अवहेलना करनेका साहस न कर सके। उन्हें भलीप्रकार यह तथ्य समझमें आ गया कि इस भावनासे दीपकको अंगुलीसे स्पर्श करना भ्रमपूर्ण है कि हमने ही इसे ज्योतित किया है, इसलिए इसके प्रति अनुचित व्यवहारसे भी हमारा हाथ न जलेगा। और ठीक यही बात राजाके प्रति भी

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

२. वही : पृ० ७९।

है।[1] अवज्ञा तथा अशिष्टताके प्रति कुमारपालके इन कठोर निश्चयों तथा दण्डोंने सभी प्रदेशों तथा अधीनस्थ राजाओंपर उसका प्रभुत्व स्थापित कर दिया।[2]

कुमारपाल-द्वारा उपाधिधारण

प्राचीनकालसे राजा-महाराजा अपनी राजशक्तिके प्रभाव और प्रतीक रूपमें विभिन्न उपाधियाँ धारण किया करते हैं। ब्राह्मणोंमें कहा गया है कि पारमेष्ठ्यम्, राज्यं, महाराज्यं तथा स्वाराज्यंकी उपाधियाँ देवलोककी हैं, किन्तु शिलालेखों तथा उत्कीर्ण लेखोंके अध्ययन और विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि मर्त्यलोकके राजा-महाराजा भी इनमें-से अधिकांश उपाधियाँ धारण किया करते थे। इस प्रकार ये उपाधियाँ केवल देवलोकके सम्राटों तथा शासकों तक ही सीमित न थीं।[3] पहले ये उपाधियाँ गुणोंकी प्रतीक थीं। बादमें ये किसी राज्य अथवा राजाकी वार्षिक आयकी अर्थबोधक हो गयीं। शुक्रनीतिमें इन उपाधियोंके क्रमिक अर्थका विशद विवरण है।[4]

कुमारपालके सभी उत्कीर्ण लेखोंमें अनेकानेक विशद उपाधियाँ मिलती हैं, जिनसे उसकी महान् शक्ति, शौर्य और सत्ताका बोध होता है। विभिन्न शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें कुमारपालकी निम्नलिखित उपाधियोंका वर्णन मिलता है—कुमारपालको सभी राजाओंमें सर्वशक्तिमान् कहते हुए 'समस्त राजावली'[5] की उपाधि दी गयी है। वह शिवभक्त 'उमापतिवर-

---

१. वही : आर्यो मयैवायमदीपि नूनं न तद्हेन्मामवहेलितोऽपि। इति प्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीपः॥

२. वही : इति विमृशद्भिः समन्ततः सामन्तैर्भयभ्रान्तचित्तैस्ततः प्रभृति स नृपतिः प्रतिपदं सिषेवे।

३. मैक्समूलर : वैदिक परिशिष्ट : चतुर्थ खण्ड।

४. शुक्रनीति : १, १८४-७।

५. गाला शिलालेख : पूना ओरियण्टलिस्ट : खण्ड १, उपखण्ड २, पृ० ४०।

लब्ध'[१] 'परमभट्टारक'[२], 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर'[३], चक्रवर्ती,[४] गुर्जरधराधीश्वर[५] परमार्हत[६] चौलुक्यकी विभिन्न उपाधियोंसे भी विभूषित किया गया था।

निश्चय ही कुमारपालकी ये उपाधियाँ उसकी महान् राजसत्ता और उसके प्रभावकी द्योतक हैं। इनमें-से एक उपाधि निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल (उसने समरभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित किया था) का तो कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें उल्लेख हुआ है।[७]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालकी उपाधियाँ अत्यन्त विशद तथा महान् सत्ता व्यक्त करनेवाली थीं। और इनसे यह भी स्पष्ट है कि कुमारपाल अपने समयका एक महान् राजा हो गया है। कुमारपालकी वीरता, उसकी महान् राजकीय सत्ता, उसका साहित्य, संस्कृति तथा कलासे प्रेम उक्त उपाधियोंके अनुरूप भी रहा है, इसमें सन्देह नहीं। गुजरातके चौलुक्योंके पूर्व उत्तरी भारतमें गुप्तवंश तथा पुष्यभूति राज्यवंशकी महान् राज्यशक्ति थी। गुप्तवंशके राजाओंने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज-जैसी उपाधियाँ ग्रहण की थीं। इस प्रकार राजा-महाराजाओं-द्वारा उपाधि ग्रहणकी प्रथा तथा परम्परा बहुत प्राचीन चली आ रही थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि महान् विजेता कुमारपाल, जिसके समयमें गुजरातके चौलुक्योंकी राजशक्ति चरम उत्कर्षपर पहुँच गयी थी, प्राचीन राजकीय परम्परानुसार

---

१. वही।

२. जालोर शिलालेख : इपि०इण्डि० : खण्ड ९, पृ० ५४, ५५।

३. वही।

४. ए० एस० आइ० डब्लू० सी०; १९०८, ५१, ५२।

५. इपि० इण्डि० : खण्ड ९, पृ० ५४, ५५।

६. वही।

७. ए० एस० आइ० डब्लू० सी० : १९०८-५१-५२।

विशद उपाधियाँ ग्रहण करता ।

गुर्जराधिप चौलुक्य कुमारपालकी विभिन्न उपाधियोंके विवेचन तथा विश्लेषण करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि उसने 'समस्त राजावली' की उपाधि इसलिए ग्रहण की क्योंकि वह संघटित तथा पंक्तिबद्ध राजाओंका प्रतीक था और उनमें सर्वशक्तिशाली था। महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक तथा चक्रवर्ती उपाधियाँ उसकी व्यापक और विशद राजकीय सत्ताकी द्योतक थीं। 'निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल' उपाधि कुमारपाल-द्वारा रणभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित करनेकी घटनाका स्मारक है और अन्तमें 'उमापतिवरलब्ध' तथा 'परमार्हत चौलुक्य' क्रमशः उसकी शिवभक्ति तथा जैनधर्मके प्रति असीम प्रेम एवं श्रद्धाभक्तिकी परिचायक हैं।

गुजरातके इतिहासकारोंका अभिमत है कि कुमारपाल अपने पूर्वजोंकी भाँति महान् योद्धा था। जयसिंहसूरिके कुमारपालचरितमें उसके दिग्विजयका विशद वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थके सम्पूर्ण चौथे सर्गमें कुमारपालके विजयी सैनिक अभियानोंका विस्तृत उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि कुमारपाल पहले जावालपुर[1] (आधुनिक जालोर) पहुँचा। यहाँके नायक-

---

१. कहीं-कहीं 'जावालीपुर' उच्चारण है। डी०एच०एन०आइ० : खण्ड २, पृ० ९८२।

ने उसका स्वागत किया। जावालीपुरसे कुमारपाल सपादलक्ष प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ा। सपादलक्षके (शाकम्भरी) राजा अरुणोराजाने जो कुमारपालका बहनोई भी था, उसका अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक अर्चन किया। यहाँसे कुमारपालने कुरुमण्डलकी दिशामें प्रस्थान किया और मन्दाकिनी (गंगा) के तटपर जाकर रुका। इसके अनन्तर गुर्जरनरेश कुमारपाल मालवाकी ओर अग्रसर हुआ। मालवाकी दिशामें सैनिक अभियानके मध्यमें चित्रकूटके अधिपतिने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अवन्ती देश पहुँचकर कुमारपालने इस प्रदेशके शासकको बन्दी बनाया। इसके बाद उसके सैनिक अभियानकी दिशा नर्मदा तटके किनारे-किनारे हुई। रेवलूरमें थोड़ा विश्राम करनेके पश्चात् उसने नदी पार की तथा आभीर-विषयमें प्रवेश कर प्रकाशनगरीके अधिपतिको अधीनस्थ होनेके लिए बाध्य किया। कुमारपालका सुदूर दक्षिण अभियान विन्ध्य पर्वतोंके कारण अवरुद्ध रहा। फिर भी उसने इस क्षेत्रके छोटे-छोटे ग्रामपतियोंसे कर वसूला तथा पश्चिम दिशाकी ओर मुड़कर लाटप्रदेशके अधिपतिको अपने अधीनस्थ किया।

लाटप्रदेशसे कुमारपाल पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़ा तथा उसने सौराष्ट्र विषयके प्रधानको पराजित किया। सौराष्ट्रसे उसने कच्छमें प्रवेश किया। यहाँके प्रधान शासकको पराजित कर कुमारपाल पंचनदाधिप नौसाधन समुद्धातासे युद्ध करने गया। उसपर विजय प्राप्त कर कुमारपाल मूलस्थान (आधुनिक मुलतान) के राजा मूलराजपर आक्रमण करने गया। मूलराजसे भीषण युद्ध कर तथा विजयश्री हस्तगत कर चौलुक्य नरेश कुमारपाल शक प्रदेशसे जालन्धर और मरुस्थान होता हुआ लौटा। इसके आगे जयसिंहने शाकम्भरी-नरेश अरुणोराजा और कुमारपालके बीच हुए युद्धका विस्तृत विवरण दिया है। जयसिंहका कथन है कि इस युद्धका कारण अरुणोराजाका कुमारपालकी बहन देवलदेवीके प्रति दुर्व्यवहार था। कहते हैं कि चौहान राज्यको छोड़कर वह चली आयी और अपने

भाई कुमारपालसे असद्व्यवहारकी शिकायत की। इसी कारण कुमारपालने चौहान राज्यपर आक्रमण किया और अरुणोराजाको रणभूमिमें पराजित किया, किन्तु अन्तमें उसे ही सिंहासनारूढ़ किया।[१]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि गुर्जराधिप कुमारपालने अपने शौर्य-वीर्यसे साँभरप्रदेशके अधिपतिको पराजित किया था।[२] साँभरके राजाके पक्षमें रहनेवाले एक प्रसिद्ध राजा त्यागभट्टने कुमारपालके विरुद्ध सैनिक आक्रमण किया। इस आक्रमण को कुमारपालने पूर्णतया विफल ही नहीं किया अपितु त्यागभट्टको पराजित करनेमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।[३]

द्वयाश्रय काव्यमें हेमचन्द्रने कुमारपाल-द्वारा श्रीनगर, कांची तथा तिलंगानापर विजय प्राप्त कर राज्य-विस्तारको व्यापक करनेकी घटनाका संक्षेपमें विवरण दिया है।[४] कुमारपालके इन सैनिक अभियानोंमें पश्चिमोत्तरसे सिन्धुके राजाने भी अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं।[५] द्वयाश्रय महा-

---

१. कुमारपाल चरित : जयसिंह : चतुर्थ सर्ग, पृ० १७०।

२. देवगुज्जर नरेसर परक्कमक्कंत सायंबरी भूपाल—मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क, पृ० १०६।

३. धन्यस्त्यागभरः कुमारतिलकः शाकम्भरीमाश्रितो
योऽसौ तस्य कुमारपालनृपतेश्चौलुक्यचूडामणेः।
युद्धायाभिमुखोऽभवज्जयविधिस्त्वास्यं विधिः प्रेक्षते
प्रोद्गर्जन् विफलं शरद्घन इव त्वं केवलं वल्गसि॥
—मोहराजपराजय : अङ्क ५, श्लोक ३६।

४. पहु सिरि नयर सिरीए जुज्जसि जुप्पसि तिलंग लच्छीए
जुज्जसि कंचि सिरीए भुंजंतो दाहिणिं इण्हि ॥७२॥

५. सिंधु वई तुह चमाण वेलिल्लो तुमइ दिन्न चड्डुणओ
न जिमई दिवसे जेमई निसाइ पश्छिम दिसाइ तह ॥७३॥

काव्यके प्राकृत भागमें कुमारपालके सम्मुख अन्य प्रदेशोंके राजाओं-द्वारा अधीनता स्वीकार करनेकी घटनाका उल्लेख बहुत ही संक्षेपमें किया गया है। जवणके राजाने कुमारपालके भयसे सभी राग-रंगका परित्याग कर दिया था।[1] उव्वेश्वरने कुमारपालको प्रचुर धनराशिकी भेंटके साथ उत्तम कोटिके अश्व प्रदान किये थे।[2] वाराणसीका राजा कुमारपालसे मिलनेके लिए सदा उसके प्रासाद-द्वारपर अवस्थित रहा करता था।[3] मगध देशसे बहुमूल्य रत्नोंकी तथा गौड़ देशसे श्रेष्ठतम हाथियोंकी भेंट कुमारपालके समक्ष आती थी। उसकी सेनाने कान्यकुब्ज प्रदेशको पादाक्रान्त कर वहाँके राजाको आतङ्कित कर दिया था। दशार्न देशकी तो अत्यधिक शोचनीय स्थिति हो गयी थी। वहाँका राजा भयत्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इस प्रदेशका सारा धन कुमारपालके सैनिक ले गये तथा दशार्न देशके अनेकानेक सेनापति युद्धमें हत हुए। चेदिराज (त्रिपुरी, त्रिपुरा) की शक्ति तथा गर्वका मर्दन कर कुमारपालकी सेनाने रेवा नदीके तटपर अपना शिविर स्थापित किया। सैनिकों-द्वारा रेवा नदीके घड़ियालोंको मारने तथा यहाँके उपवनोंको क्षतिग्रस्त करनेका भी उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर कुमारपालकी सेनाने यमुना नदी पार की और मथुराके राजापर आक्रमण किया। मथुराका राजा अपनी निर्बल स्थितिको अच्छी तरह समझता था। उसने स्वर्णराशिकी भेंट-द्वारा आक्रामकोंको सन्तुष्ट किया और अपने नगरकी रक्षा की। कुमारपालकी व्यापक प्रभुता

---

१. तम्बोलं न समाणई कम्मण-काले वि नण्हए जवणो
विसए अ नोव भुंजइ भएण तुह वसुह कम्मवण ॥७४॥

२. मणि गढ़िअ कणय घड़िआहरणे उव्वेसरो वर-तुरंगे
संगलिअ लक्ख संखे पेसइ तुह रिउ अमंवड़ियो ॥७५॥

३. हरिस सुरिआणणो सो महि मंडण कासि-रीडयोराया
टिविडिक्कइ तुह वारं हय चिंचिअ हत्थि चिंचइअं ॥७६॥

तथा महत्ताका परिचय इस तथ्यसे भी मिल जाता है कि 'जंगलराज', 'तुर्क मुसलमानोंका शासक' तथा 'दिल्लीके सम्राट्' भी उसकी प्रशंसा और प्रशस्ति किया करते थे। षष्ठ सर्गके अन्तमें कविने जंगलराजको कुमारपालकी प्रशस्ति करते हुए अंकित किया है।[1]

चौहानोंके विरुद्ध युद्ध

द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल तथा अण अथवा अणकसे युद्धका जो वर्णन मिलता है, वह भिन्न है। इसमें कहा गया है कि उदयनके एक दूसरे पुत्र वहडने, जो सिद्धराज जयसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र था, कुमारपालके अधीनत्व और आदेशोंपर कार्य करना अस्वीकार कर दिया। वहड कुमार-पालकी सेवामें न रहकर, नागोरके राजा 'अण' या जिसे मेरुतुंगने 'अणक' कहा है, के यहाँ चला गया। अणो या अणक वीसलदेव चौहान का पौत्र था। लक्षग्रामोंके राजा 'अण'ने जब सिद्धराज जयसिंहकी मृत्यु का समाचार सुना तो उसने सोचा कि नये और निर्बल सिंहासनाधिकारी कुमारपालके नेतृत्वमें इस समय गुजरातकी सरकार है। अब अपनेको

---

१. नीपाइअ जय कंज अविअट्टिअ विक्कमं बलं तुज्झ
अविलोहिअ जय मदुराहिवस्स फंसावही विजयं ॥८८॥
अविसंवाइ परिक्खा तणु पक्खोडण झडन्त पंसु कणा
णीहरिअ नक्क चक्कं तुट्ट तुरया जंउणमुत्तिन्ना ॥८९॥
रिउ अक्कंदावणयं अखिजमाण हयमजूरिएभकुलं
अविसूरंत चमूवं पत्तं मद्दुराइ तुह सेन्नं ॥९०॥
सग्गल्लि अंत जस भर जंगल वइणोवसप्पिउं दिण्णा
तुह रिउ झंखावण घण पयाव संतप्पि एण गया ॥९४॥
तइ पेल्लिओ तुरुक्को टिल्ली नाहो गलत्थिओ तह य
अड्डुक्खिओ अ कासी रिउ वत्तण छुह महाएसं ॥९६॥
—द्वयाश्रय काव्य : सर्ग चतुर्थ, पृ० २१२, २१६।

स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त समय आ गया है। इतना ही नहीं, अणने किसीसे कुछ प्रतिज्ञा करा और किसीको धमकी देकर, उज्जयिनीके राजा वल्लाल तथा पश्चिमी गुजरातके राजाओंसे मैत्री कर ली। कुमारपालके गुप्तचरोंने उसे सूचना दी कि अणराजा सेना लेकर गुजरातके पश्चिमी सीमान्तकी दिशामें अग्रसर हो रहा है। उसकी सेनामें अनेक सेनापति विदेशी भाषाओं के भी ज्ञाता थे। अण राजाको कुंथागम (कुंठकोट) के राजाका सहयोग मिल गया तथा अणहिलवाड़की सेनाका एक सैनिक वहड भी उसके पक्षमें जा मिला था। उज्जयिनीराज देश-देशान्तरमें भ्रमणशील व्यवसायियोंसे गुजरातकी वास्तविक स्थितिसे परिचित हो चुका था। उसने मालवनरेश वल्लालसे एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी। उसने सैनिक आक्रमणकी योजना बनायी थी कि जैसे ही अणराजा आक्रमण कर प्रगति करेगा, वह पूर्व दिशाकी ओरसे गुजरातके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। कुमारपालको जब यह स्थिति विदित हुई तो उसके क्रोधका पारावार न रहा।

कुमारपालका सैनिक संघटन

इस अवसरपर कुमारपालकी सहायता तथा सहयोगके लिए भी अनेकानेक राजा आगे आये। कुमारपालको कूली जातिके लोगोंका भी सहयोग प्राप्त हुआ जो प्रसिद्ध अश्वारोही माने जाते थे। पहाड़ी जातिके लोग भी चारों ओरसे कुमारपालके साथ आ गये। कुमारपालके अधीनस्थ कच्छकी जनताने भी उसका साथ देना निश्चय किया। कच्छके साथ ही सिन्धुकी जनता भी सहयोगके लिए प्रस्तुत हो गयी। जैसे ही कुमारपाल आबूकी ओर अग्रसर हुआ उसके साथ मृगचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले पहाड़ी भी आ मिले। आबूका परमार राजा विक्रमसिंह, जो जालन्धर देशकी जनता का नेता था, कुमारपालके साथ हो गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अणराजाने कुमारपालके आगमनकी सूचना पाकर अपने मन्त्रियों के परामर्शकी अवहेलना कर युद्ध करनेका निश्चय किया। किन्तु अभी

उसकी सेना युद्धके लिए प्रस्तुत भी न थी कि रणभेरी सुनायी पड़ी और गुजरातकी सेना पर्वतोंकी ओरसे प्रवेश करने लगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्र दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि सपादलक्ष के राजाने ही पहले आक्रमण किया था। मेरुतुंगका यह भी कथन है कि गुजरातपर आक्रमण करनेके लिए चौहान नरेशको वहडने ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया था। वहड कुमारपालके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था। उसने उन प्रदेशोंके सरकारी अधिकारियोंको बहुमूल्य भेंट तथा रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। वहडने सपादलक्षके राजाको साथ लाकर गुजरातके सीमान्तपर एक शक्तिशाली सेना खड़ी कर दी थी।[1] किन्तु वहडके ये सभी प्रयत्न, जिनके द्वारा वह कुमारपालको पराजित तथा पदाक्रान्त करनेकी योजना बना चुका था, एक विचित्र घटनाके कारण विफल हो गये। कुमारपालके पास रणभूमिमें कौशल प्रदर्शित करनेवाला कलहपंचानन नामका एक अत्यन्त श्रेष्ठ हाथी था। इस हाथीके महावतका नाम कालिंग था। इसे वहडने धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। संयोगसे एक बार कुमारपालकी डाँट-फटकार उसे बहुत अप्रिय लगी और वह अपना कार्य छोड़कर चला गया। उसके रिक्त स्थानपर सामल नामका हस्तिचालक जो अपने कौशल तथा ईमानदारीके लिए प्रसिद्ध था, नियुक्त किया गया। रणक्षेत्रमें जब कुमारपाल तथा अणककी सेनाका संघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि कुमारपालके गुप्तचरोंने सूचना दी कि उसकी सेनामें असन्तोष फैला दिया गया है। इस विषम घड़ीमें वीर कुमारपाल विचलित नहीं हुआ वल्कि ठीक उसके विपरीत साहस एवं दृढ़तासे अणकसे अकेले ही सामना करनेका निश्चय किया। उसने सामलको अपना हाथी आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी। यह देख कि सामल उसकी आज्ञाका पालन करनेमें द्विधासे काम ले रहा है कुमारपालने उसपर विश्वासघाती होनेका आरोप

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : पृष्ठ १२०।

लगाया। सामलने इस आरोपको अस्वीकार करते हुए अपनी कठिनाईका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि विपक्षी दलकी सेनामें वहड भी हाथीपर सवार है। इसकी आवाज ऐसी है, जिससे हाथी भी आतङ्कित हो जाते हैं। उसने अपने वस्त्रोंसे हाथीके दोनों कानोंको बाँधकर उक्त बाधा हटा दी और उसके अनन्तर कुमारपाल रणभूमिमें अणकके विरुद्ध अग्रसर हुआ।

अरुणोराजाकी पराजय

वहडको हाथीके महावतके परिवर्तनकी स्थिति ज्ञात न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि हस्तिचालकसे अवश्य सहायता मिलेगी। यह सोचकर उसने अपना हाथी कुमारपालकी ओर बढ़ाया और हाथमें तलवार लेकर उसके मस्तकपर चढ़ जानेका प्रयत्न किया। सामलने इस आक्रमणकी चालको तत्काल समझ लिया और अपने हाथीको तनिक-सा पीछे हट जानेका आदेश दिया। इस प्रकार वहड दो हाथियोंके मध्य गिर पड़ा और कुमारपालके पैदल सैनिकों-द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिया गया।[1] इसके अनन्तर तत्काल कुमारपाल अरुणोकी ओर बढ़ा। उसके निकट जाकर सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने कहा, 'जब तुम इतने वीर योद्धा थे तो सिद्धराजके सम्मुख क्यों नतमस्तक हुए थे। पूर्वकालमें तुम्हारा वह कार्य निश्चय ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि अब मैं तुम्हें पराजित नहीं करता तो सिद्धराजकी धवल कीर्तिका प्रकाश मन्द पड़ता जायेगा।'[2]

इस प्रकार दोनों राजाओंमें युद्ध हुआ। दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भी भीषण रण-संघर्ष हुआ। कुमारपालने अरुणोराजाको क्षत्रियोंकी भाँति युद्ध करनेकी चुनौती देकर ठीक उसके मुखपर ही बाण छोड़ा। बाणसे आहत होकर जब वह हाथीके सामने गिर पड़ा तो कुमारपालने अपने परिधानको वायुमें प्रसन्नतापूर्वक फहराकर विजयकी घोषणा की। जब अरुणोराजाके

१. प्रभावकचरित्र : अध्याय २२, पृ० २०१, २०२।

२. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७७।

पक्षके दोनों नेता इस प्रकार पराजित हो गये तो सभीने कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालको इस युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

साहित्य और शिलालेखोंमें वर्णन

कुमारपालकी अरुणोराजापर इस विजय-घटनाका उल्लेख वसन्त-विलास[1] वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति[2] तथा सुकृत कीर्तिकल्लोलिनी[3] में हुआ है। साहित्यमें उल्लिखित कुमारपाल तथा अरुणोराजाके इस युद्धका शिलालेखों और उत्कीर्ण लेखोंमें भी वर्णन है। किराडु[4] (वि० सं० १२०९) तथा रतनपुर प्रस्तर[5] लेखोंमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि नाडुल्य चौहानोंका प्रदेश कुमारपालके साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया गया था। भटुंड शिलालेख[6] में यह अंकित है कि विक्रम संवत् १२१०–१६ में कुमारपालका एक दण्डनायक नाडुल्य प्रदेशमें नियुक्त किया गया था। अनहिल-

---

१. गायकवाड ओरियण्टल सिरीज : संख्या ७, ३, २९।

२. जैनधर्मसूरिच्चकार सहसाऽर्णोराजमत्रासयद्
बाणैः कुङ्कणमग्रहीदपि गुरुचक्रे स्मरध्वंसिनम्।
इत्थं यस्य परिक्षतक्षितिभृतो हंसावलीनिर्मलै
रामस्येव निरन्तरं नवयशःपूरैर्दिशः पूरिताः॥
गा० ओ० सिरीज : संख्या १०, परिशिष्ट १, पृ० ५८।

३. कथ्यन्ते न महीभृतः कति महीयांसो महीशेखरा
माहात्म्यं स्तुमहे तु हेतुनिगमादेतस्य चेतोहरम्।
मर्यादामतिलङ्घयन् रसलसद्यद्वाहिनी वाहितो
ऽर्णोराजः स जगाम जाङ्गलमहीभागेषु भग्नोन्नतिः॥
गा० ओ० सिरीज : संख्या १०, परिशिष्ट २, पृ० ६७।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४।

५. प्राकृत संस्कृत शिलालेख : भावनगर पुरातत्त्व विभागः २०५-७।

६. आर्केयॅलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया वेस्टर्न सर्किलः १९०८,५१,५२।

पाटक तथा शाकम्भरी राज्योंके मध्य चौहानोंका नाडुल्य राज्य था। चौलुक्योंकी राज्यसीमामें नाडुल्य निश्चित रूपसे सफल युद्ध-द्वारा ही मिलाया गया होगा। इस तथ्यका समर्थन कुमारपालके चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेखसे भी होता है, और जिसका काल वि० सं० १२२० है।[1] इस उत्कीर्ण लेखमें यह लिखा हुआ है कि कुमारपालने सपादलक्ष प्रदेशको पदाक्रान्त कर शाकम्भरी नरेशको पराजित किया और उदयपुर चित्तौरके सालिपुरा स्थानमें अपना विशाल शिविर स्थापित किया।[2] वडनगर प्रशस्तिके उत्कीर्ण लेखमें कुमारपालका उल्लेख करते हुए उसकी दो सैनिक विजयोंकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। इनमें एक तो राजपूतानाके शाकम्भरी साँभर प्रदेशके अधिपति अर्णोराजा (श्लोक १७) पर है और दूसरी विजय पूर्व दिशाके मालवराजपर है। इसी प्रशस्ति-द्वारा हमें विदित होता है कि विक्रम संवत् १२०८ के पूर्वमें ये युद्ध समाप्त हो गये थे।[3] अबतक नाडोल दानपत्रके आधारपर यही कहा जा सकता था कि अर्णोराजा वि० सं० १२१३ के पूर्व विजित हो गया था।[4]

इस घटनाका उल्लेख कुमारपालके वि० सं० १२०७के चित्तौरगढ़ शिलालेखमें भी हुआ है।[5] इसमें कहा गया है कि उक्त घटना अभी हालकी है। कुमारपालके पाली शिलालेखमें जो वि० सं० १२०९ का है, यह अंकित है कि उसने शाकम्भरी नरेशको पराजित किया था।[6] अर्णोराजाको

१. वही, १९०५–६, ६१।

२. इस शिलालेखमें वर्णित 'सालिपुरा' नामक स्थानका जहाँ कुमारपालने शिविर स्थापित किया था, अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लग सका है। इपि० इण्डि० : खण्ड २, पृ० ४२१–२४।

३. इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृ० २९६, श्लोक १४, १८।

४. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४१, पृ० २०२–३।

५. इपि० इण्डि० : पृ० ४२१, सूची, संख्या २७९।

६. आर्कयॅलॉजिकल सर्वे आव इण्डियाः वेस्टर्न सरकिलः १९०७–८।

पराजित करनेपर कुमारपालको जो उपाधि दी गयी थी, उसका अन्य उत्कीर्ण लेखोंमें भी उल्लेख है।[1]

मालव विजय

शाकम्भरीके चौहानोंसे जो युद्ध हुआ, उसके कारण कुमारपालको पूर्वीय सीमान्तपर दो और युद्ध करने पड़े। द्व्याश्रय काव्यमें लिखा है कि अर्णोराजापर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कुमारपालको यह परामर्श दिया गया कि वह मालवाधिपति वल्लालको पराजित कर यश अर्जन करे। कुमारपालके मन्त्रियोंने उसे मालवापर आक्रमण करनेका परामर्श क्यों दिया, इसका उल्लेख हेमचन्द्रने एक अन्य स्थलपर किया है। उसने लिखा है कि अर्णोराजा गुजरातके सीमान्तकी ओर बढ़ आया और उसने अवन्ति नरेश वल्लालसे अभिसन्धि कर ली थी। इसके अन्तर्गत यह योजना बनी कि उत्तर तथा पूर्व दोनों दिशाओंसे चौलुक्य राज्यपर एक साथ ही आक्रमण किया जाये।[2] जब चौलुक्य नरेश कुमारपाल पाटन लौटा तो उसे यह समाचार मिला कि विजय तथा कृष्ण जिन्हें उसने वल्लालका प्रतिरोध करनेके लिए भेजा था (और स्वयं अणके विरुद्ध सेना लेकर गया था) उज्जयिनी-नरेशके पक्षमें जा मिले। उज्जयिनी-नरेश अब उसकी राज्यकी सीमामें प्रवेश कर अणहिलपुरकी ओर अग्रसर हो रहा था।

कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर वल्लालका सामना करनेके लिए रवाना हुआ। हाथीपर सवार कुमारपालने वल्लालपर

'....प्रौढ़प्रतापनिजभुजविक्रमरणांगणविनिर्जितशाकम्भरीभूपालश्रीमत्कुमारपाल देव।'

१. भीमदेव द्वितीयका दानलेख वि० सं० १२६६: इण्डि० एण्टी० खण्ड १८, पृ० ११३।

२. इण्डि० एण्टी०: खण्ड ४, पृ० २६८।

प्रहार कर उसे पराजित किया।[१] वसन्तविलासमें भी वल्लालपर कुमारपालकी विजयका उल्लेख हुआ है।[२] कीर्तिकौमुदीसे विदित होता है कि कुमारपालने वल्लालका शिरश्छेद कर दिया था।[३] साहित्यके इन ग्रन्थोंमें वर्णित इस घटनाकी पुष्टि शिलालेखोंसे भी होती है। दोहाद[४] प्रस्तर स्तम्भमें जयसिंहके समयका वि०सं०११९६का एक उत्कीर्ण लेख है। इसीमें विक्रम संवत् १२०२का भी एक लेख उत्कीर्ण है। आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें महामण्डलेश्वर वपनदेवका नामोल्लेख नहीं है। दोहद क्षेत्रकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थितिको देखते हुए यह सम्भव है कि सन् ११४०-११४६के मध्य इसपर चौलुक्योंका अधिकार न रह गया हो। जो हो, शिलालेखके लिखनेवालेने चाहे जिस कारणसे कुमारपालका इसमें नामोल्लेख न किया हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् ११६३ ईस्वीके कुछ पूर्व ही यह प्रदेश पुनः चौलुक्योंके अधीन आ गया था।

कुमारपालके दो उदयपुर प्रकीर्ण लेखोंमें जिनका काल क्रमशः वि० सं० १२२० तथा १२२२ है, यह स्पष्ट अंकित है कि वह अपने पूर्वाधिकारी की भाँति ही पुनः मालवाधिपति भी था।[५] ये शिलालेख अणहिलपाटकके कुमारपालके समयके हैं, जो 'शाकम्भरी तथा अवन्तिके अधिपतियोंको समरभूमिमें पराजित कर चुका' था। भाव बृहस्पतिकी प्रशस्तिमें भी कुमारपालको 'वल्लाल गजके मस्तकपर उछलनेवाला सिंह' कहा गया है।[६] वडनगर प्रशस्तिमें भी इस बातका उल्लेख है कि चौलुक्यराजने

१. वही।
२. वसन्तविलास : ३, २९।
३. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृ० १८५।
४. इण्डि० एण्टो० : खण्ड १०, पृ० १५९।
५. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १८, पृ० ३४१-४४।
६. भावनगर शिलालेख : पृ० १८६।

देवी दुर्गाको मालवाधिपतिका कमल मस्तक, जो उसके द्वारपर लटका दिया गया था, अर्पण कर प्रसन्न किया था।[1] इस शिलालेखसे स्पष्ट है कि वल्लाल सन् ११५१ के कुछ दिन पूर्व मारा गया था।[2] ऐतिहासिक परम्परासे मालवनरेश वल्लालकी पहचान करना कठिन है। परमारोंके प्रकाशित विवरणोंकी वंशावलीमें उक्त नाम नहीं आया है। जैसा ल्यूडर्सने कहा है सम्भव है वल्लालने अचानक ही सन् ११३५-११४४ ईस्वीमें मालवाकी राजगद्दीपर अधिकार कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली हो।[3] कुमारपालकी कठिनाइयोंसे लाभ उठानेके विचारसे अणहिलपाटककी गद्दीपर उसके बैठते ही वल्लालने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया हो। इतना ही नहीं, उसने गुजरातके विरुद्ध सैनिक आक्रमण करनेवाले शाकम्भरीके चौहानोंसे सन्धि कर ली हो और अपने राज्यके परम्परागत शत्रुसे लोहा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गया हो। वडनगर प्रशस्तिमें पूर्व दिशाके अधिपति मालव शासकपर कुमारपालकी प्रसिद्ध विजयका उल्लेख हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि मालव-नरेश अपने देशकी सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपालके राजप्रासादके द्वारपर लटकाया गया था। उसी उत्कीर्ण लेखके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृ० ३०२, श्लोक १५ तथा देखिए उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास : खण्ड २, पृ० ८८६।

२. वेरावल शिलालेखके आधारपर ल्यूडर्सका मत है कि वल्लाल सन् ११६९ के पूर्व मरा होगा। इपि० इण्डि० : खण्ड ८, पृ० २०२। किन्तु वडनगर शिलालेखका मालवाधिपति ही निश्चित रूपसे बादके विवरणों का वल्लाल रहा। इसलिए उसके निधन कालकी अवधि १८ वर्ष पूर्व निश्चित की जा सकती है।

३. इपि० इण्डि० : खण्ड ७, पृ० २०२–८। यशोवर्मन्की अन्तिम तथा लक्ष्मीवर्मन्की प्रारम्भिक तिथियाँ।

मालवासे युद्ध विक्रम संवत् १२०८ के पूर्व समाप्त हो गया था। इस उत्कीर्ण लेखकी सहायतासे हमें दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि जयसिंहने मालवाको पहले ही अपने गुजरात राज्यमें मिला लिया था। दूसरी बात यह कि वहाँ हुए विद्रोहका दमन पाँच वर्ष पहले ही किया जा चुका था। कीर्तिकौमुदीके अनुसार कुमारपालने गुजरातपर आक्रमण करने वाले मालवराज वल्लालका शिरश्छेद कर दिया था। इस संघर्षका परिणाम यह हुआ कि मालवा पुनः पहलेकी भाँति अनहिलवाड़के राजाओंके अधीन हो गया। भिलसाके निकट उदयपुरमें तथा उदयादित्यके मन्दिरमें अनेक प्रकीर्ण लेख मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने सम्पूर्ण मालवा को विजित किया था। ये शिलालेख जिस व्यक्तिने अंकित कराये हैं, उसने अपनेको कुमारपालका सेनापति कहा है।

परमारोंके विरुद्ध युद्ध

कुमारपालको अर्णोराजा चौहानके विरुद्ध आक्रमणके सिलसिलेमें जो दूसरा युद्ध करना पड़ा, वह आबूके चन्द्रावती प्रदेशके परमारोंके विरुद्ध था। कुमारपालचरितमें उल्लेख मिलता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजासे युद्धरत था, चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसलिए कुमारपालने उत्तरी शासक (अर्णोराजा) को पराजित कर चन्द्रावतीपर आक्रमण किया और इस नगरपर अपना पूर्ण अधिकार कर यहाँके शासकको बन्दी बनाया।[1]

हेमचन्द्रके विवरणके आधारपर कहा जा सकता है कि जब कुमारपाल

---

१. द्व्याश्रय काव्य : ४, ४२१—५२ : में इस आशयका कथन मिलता है कि आबूके परमार शासक विक्रमसिंहने उस समय कुमारपाल का अपनी राजधानीमें स्वागत किया था, जब वह सपादलक्षके 'अण' के विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था। इण्डि० एण्टी०: खण्ड ४, पृ० २६७।

अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था तो आबू राज्यके शासक विक्रम-सिंहका स्वागत-सत्कार मैत्रीभावका दिखावा मात्र था। बादके घटनाक्रमसे हमें विदित होता है कि चन्द्रावतीके शासक विक्रमसिंहने युद्धमें अर्णोराजाका पक्ष ग्रहण किया था और कुमारपालने इसके लिए उसे दण्डित किया था। विक्रमसिंहको अनहिलवाड़ेमें एकत्र बहत्तर अधीनस्थ शासकोंके सम्मुख अपमानित कर बन्दीगृह भेज दिया गया। विक्रमसिंहकी राजगद्दीपर उसके भ्रातृपुत्र यशोधवलको आसीन कराया गया।[1] इस घटनाकी पुष्टि तेजपाल के विक्रम संवत् १२८७ की आबू पहाड़ी प्रशस्तिसे भी होती है। इसमें कहा गया है कि अर्बुद परमार यशोधवलने यह विदित होते ही कि वल्लाल, चौलुक्यराज कुमारपालका विरोधी तथा शत्रु हो गया है, मालवाधिप वल्लालको तत्काल हत कर दिया।[2] प्रशस्तिके इस उल्लेखसे इस निर्णयपर पहुँचा जा सकता है कि यशोधवल कुमारपालका अधीनस्थ शासक था।

कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष

इसके पश्चात् कुमारपालकी सेनाने, दक्षिण कोंकणके राजा मल्लिकार्जुनसे युद्ध किया। उत्तरी कोंकणके राजाओंकी प्रकाशित सूचीसे विदित होता है कि सन् ११६० ईस्वीमें शिलाहार वंश राज्यारूढ़ था। मल्लिकार्जुनके विरुद्ध कुमारपालको अपनी सेना क्यों भेजनी पड़ी, वह घटना इस प्रकार है—एक दिन कुमारपाल अपनी राजसभामें सेनापतियों तथा अधीनस्थोंके मध्य जब बैठा हुआ था तो एक भाटने मल्लिकार्जुनकी प्रशस्ति सुनायी। इसमें मल्लिकार्जुन-द्वारा राजपितामहकी उपाधि ग्रहणकी घटना

---

१. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृष्ठ १८५।

२. इपि० इण्डि० : खण्ड ७, पृष्ठ २१६, श्लोक ३५ तथा उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास :, खण्ड २, पृष्ठ ८८६ तथा ९१४।

का उल्लेख था।[1] कुमारपाल यह अपमान न सह सका और सभामें चतुर्दिक् देखने लगा। आश्चर्य-सहित कुमारपालने देखा कि उसका सचिव आम्बड हाथ जोड़े खड़ा है।[2] राजसभा जब समाप्त हो गयी तो कुमारपालने आम्बडको बुलवाया और सभामें उसकी उक्त मुद्रा-विशेषका अभिप्राय पूछा। आम्बडने कहा कि महाराजाके चारों ओर देखनेका अर्थ मैंने यही लगाया कि आप जानना चाहते हैं कि इस सभामें कोई ऐसा योद्धा है, जो मल्लिकार्जुनके असत्य अभिमानका मर्दन कर सके। इस कार्यके लिए मैं ही अपनी सेवाएँ अर्पित करना चाहता हूँ और इसी आशयसे मैंने उक्त भाव व्यक्त किया था। तत्काल ही कुमारपालने अपनी विभिन्न सेनाके अधिकारियों तथा अधीनस्थोंको बुलाकर मल्लिकार्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आदेश दिया।

कालविनी[3] नदी पार कर तथा अनेकानेक अभियानोंके अनन्तर आम्बड अभी अपना सैनिक शिविर स्थापित ही कर रहा था कि मल्लिकार्जुनने उसपर आक्रमण कर पदाक्रान्त कर दिया। इस प्रकार पराजित होकर वह नदीके उस पार चला गया। यहाँ आ उसने काले वस्त्र धारण किये, सेनामें काले झण्डोंसे कार्य संचालनका आदेश दिया तथा काले रंगके

---

१. शिलाहार राजाओंमें यह उपाधि प्रचलित थी।—बाम्बे गज़ेटियर : १२, ४३७ टिप्पणी।

२. इसका शुद्ध अम्बड है। इसका संस्कृत रूप अमरभट्ट तथा अम्बक है।

३. यह चिकली तथा वालसारसे प्रवाहित होनेवाली कावेरी नदी है। नासिक केव इन्सक्रिप्शनमें इसी नदीका नाम 'कारवेना' अङ्कित है। बाम्बे गज़ेटियर : १६, ५७१। कावेरीका संस्कृत रूप ही 'कालविनी' तथा 'कारावेना' है। सम्भवतः पेरिप्लसने इसी कावेरीको 'अकावेरी' लिखा है।

खेमेकी व्यवस्था की। यह सुनकर कुमारपाल उस प्रदेशमें आ गया और उसने यह स्थिति देखी। उसे विदित हुआ कि यह आम्बडका ही सैनिक शिविर है। पराजयसे आम्बडका जैसा अपमान हुआ था, उससे लज्जित होकर उसने काले वस्त्रोंको धारण किया था। कुमारपाल अपने पराजित सेनापतिकी इस भावनासे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने शक्तिशाली राजाओं-सहित दूसरी सेना आम्बडकी सहायताके लिए भेजी। इस प्रकार साधनसम्पन्न होकर आम्बडने पुनः कावेरी नदी पार कर, एक मार्गका निर्माण किया और मल्लिकार्जुनकी सेनापर आक्रमण किया। आम्बडका ध्यान मल्लिकार्जुनपर ही विशेष रूपसे था। आम्वड अपने हाथीकी सूँड़से उसके मस्तकपर चढ़ गया और मल्लिकार्जुनको युद्धके लिए ललकारा। युद्धमें उसने मल्लिकार्जुनको नीचे गिराकर उसका शिरश्छेद कर दिया।[1] जिन अधीनस्थ राजाओंको सहायताके लिए कुमारपालने भेजा था, वे नगर को लूटनेमें लगे थे। इस प्रकार कोंकणमें कुमारपालके आधिपत्यकी स्थापना कर आम्बड, अणहिलपुर लौटा। उसने राजसभामें बहत्तर राजाओंकी उपस्थितिमें सुवर्णराशिमें मल्लिकार्जुनका सिर अभिवादन-सहित कुमारपालके सम्मुख उपस्थित किया। उसने मल्लिकार्जुनके कोषागारसे प्राप्त विशाल धनराशि भी सम्मुख रख दी।[2] इसपर प्रसन्न होकर कुमारपालने मल्लिका-र्जुनसे छीनी गयी 'राजपितामह' की उपाधि आम्बडको प्रदान करते हुए

---

१. प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार मल्लिकार्जुनको चौहानराज सोमेश्वरने मारा था जो उस समय कुमारपालकी राजसभामें रहता था।
—जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटीः १९१३, पृ० २७४–५।

२. श्रृंगार कोडी साडी १ माणिकउपछेडउ २ पापख उहारु ३ संयोग सिद्धि सिप्रा ४ तथा हेमकुम्भा ३२ तथा मौक्तिकानां सेउड ६ चतुर्दन्त हस्ती १ पात्राणि १२० कोटी सार्द्ध १४ द्रव्यस्य दण्डः।
—प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० २०३।

उसे सम्मानित किया।[1]

मल्लिकार्जुनके समयके दो शिलालेखोंका पता चलता है, जिनकी तिथि क्रमशः ईस्वी ११५८ (शक १०७८) तथा ईस्वी ११६० (शक १०८०) हैं। इनमें-से प्रथम चिपलम्में मिला है और दूसरा बेसिनमें। मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा उसके अन्तका समय ईस्वी सन् ११६० तथा ११६२ है क्योंकि सन् ११६२में ही उसके उत्तराधिकारी अपरादित्यका शासनकाल प्रारम्भ हो जाता है। कुमारपालकी सहायता वल्लालके विरुद्ध करनेवाले अर्बुद परमार यशोधवलने इस युद्धमें भी उसकी सहायता की थी। आबूकी तेजपाल प्रशस्ति (वि० सं० १२८७) में कहा गया है कि 'जब यशोधवल क्रोधाभिभूत होकर समरभूमिमें सन्नद्ध हो गया उस समय कोंकण-नरेशकी रानियाँ अपने कमल समान नेत्रोंसे अश्रुपात करने लगीं।[2]' इस मल्लिकार्जुनका परिचय तथा विवरण उक्त दो शिलालेखोंसे सटीक प्राप्त होता है कि वह शीलहार राजवंशका था।[3] श्री भगवानलालका भी मत है कि मल्लिकार्जुनका अन्त सन् ११६० तथा ११६२ ईस्वीके बीच हुआ था।[4]

काठियावाड़पर सैनिक अभियान

मेरुतुंगने कुमारपालके अन्य जिस युद्धका उल्लेख किया है, वह सुमवरा या सौंसरके विरुद्ध हुआ था। इस अभियानका नेतृत्व महामात्य उदयनने किया था। इस युद्धमें चौलुक्य सेना पराजित हुई और उदयन घायल होकर शिविरमें पहुँचाया गया। प्रबन्धचिन्तामणिमें कुमारपालके काठियावाड़के

---

१. प्राकृत द्व्याश्रय काव्यमें इस सैनिक विजयका कवित्वमय वर्णन ६ठें सर्गके ५२ से ७० तक श्लोकोंमें दिया गया है।

२. इपि० इण्डि० : खण्ड ८, पृ० २१६, श्लोक ३६।

३. प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १२२–२३।

४. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृ० १८६, सुकृत कीर्ति-कल्लोलिनीः गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज : खण्ड १०, परिशिष्ट पृ० ६७।

एक आक्रमणका भी उल्लेख है जिसमें मन्त्री उदयन सौंसर राजासे लड़ते-लड़ते घायल होकर हत हुआ था।[1] श्री भगवानलालका मत है कि यह युद्ध सन् ११४९ ईस्वी (वि० सं० १२०५) के लगभग हुआ था। इसका कारण यह है कि मृत्युके पहले पालितानामें आदिनाथका जीर्णोद्धार करानेकी उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह सन् १२५६–५७ (वि० सं० १२११) में पूर्ण हुई।[2] श्री भगवानलालका यह भी मत है कि सौराष्ट्रका यह शासक सम्भवतः गोहिलवाड वंशका रहा होगा। यह भी सम्भव है कि वह जूनागढ़के अधीन शासकके राजवंशका हो, जो आभीर चूड़ा-समा वंशका था और मूलराज प्रथमके समयसे ही चौलुक्योंके विरुद्ध कार्यरत था। कुमारपालचरितमें इस घटनाका उल्लेख है कि अन्तमें समर या सौंसर युद्धमें पराजित हुआ और उसका पुत्र राजगद्दीपर बैठाया गया। सुन्धा पहाड़ी शिलालेखसे विदित होता है कि नाडुल्य चौहान आल्हाध्नने[3] सौराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रोंमें होनेवाले विद्रोहोंके दमनमें कुमारपालकी सहायता की। समरको पराजित करनेमें सम्भवतः इस शासककी भी सहायता कुमारपालको प्राप्त हुई थी।[4]

अन्य शक्तियोंसे संघर्ष

प्रबन्धचिन्तामणिमें मेरुतुंगने कुमारपालके साँभरपर एक ऐसे आक्रमणका उल्लेख किया है जो वह्डके छोटे भाई चह्डके नेतृत्वमें किया गया था। चह्डकी अतिमुक्तहस्तता लोगोंको विदित थी किन्तु कुमारपालने परा-

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८६ : 'सुराष्ट्रदेशीयं सउंसरनामानम्'।

२. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृ० १८६।

३. भावनगर इन्सक्रिप्शन : पृ० १७२–७३ तथा किरादू शिलालेख का अल्हणदेव।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ७१।

मर्श देकर उसीको सेनापतित्व करनेके लिए चुना। साँभर पहुँचनेपर चहडने बावरानगरके क़िलेको अपने अधिकार तथा नियन्त्रणमें कर लिया, किन्तु उस दिन लूट-पाट न की क्योंकि उसी रात्रिको सात-सौ कुमारियोंका विवाह होनेको था।[१] दूसरे दिन चहडकी सेनाने क़िलेमें प्रवेश किया तथा नगरमें लूट-पाट मचा दी। इस प्रकार इस प्रदेशमें कुमारपालका प्रभुत्व घोषित किया गया। उक्त बावरानगरका पता नहीं लग सका है। सम्भवतः उक्त स्थान साँभरका नहीं अपितु काठियावाड़का बावरियावाद है। इस सैनिक विजयके उपरान्त चहड पाटन लौटा। कुमारपाल चहडसे बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अमित व्ययके लिए दोषारोप करते हुए उसे 'राज घटत्ता' की उपाधि दी।

कुमारपालको सौंसरपर आक्रमण करनेके बाद जिस नये आक्रमणके संकटकी सूचना मिली वह थी चेदि या धहलके राजा कर्ण-द्वारा।[२] जब कुमारपाल सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने जा रहा था उसी समय गुप्तचरोंने उसे उक्त आक्रमणकी सूचना दी। इस आक्रमणकी सूचनासे थोड़े कालके लिए कुमारपाल किं-कर्तव्य-विमूढ़ रह गया। इसी बीच एक घटना-विशेष हुई। कर्णके नेतृत्वमें उसकी सेना रात्रिमें आगे बढ़ रही थी। कर्ण राजा गलेमें स्वर्णका हार पहने हाथीपर बैठकर यात्रा कर रहा था। रात होनेके कारण उसकी आँखोंमें निद्रा भरी थी। संयोगसे एक वृक्षकी डालमें उसका हार फँस गया और वृक्षमें लटककर वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

यदि इस कथामें सत्य घटना मिश्रित है तो यह कर्ण, धहल कलचुरी गयाकर्ण होगा, जिसने सन् ११५१ ईस्वीके लगभग शासन किया था।

---

१. एक ही दिनमें इतने अधिक विवाहकी प्रथा या तो कडवा कुनभी या भारवदोंमें थी और यह अबतक प्रचलित रही है।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १४६ तथा उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास : पृ० ७९२।

कलचुरी राजा गयाकर्णके शिलालेखकी तिथि चेदि संवत् ९०२, ईस्वी सन् ११५२ है। गयाकर्णके पुत्र नरसिंहदेवके सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेखकी तिथि ११५७ ईस्वी (चेदि ९०७) है। इस आधारपर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गयाकर्णकी निधन तिथि कुमारपालके शासनकालमें ईस्वी ११५२ तथा ११५७के बीच थी।

गौरवपूर्ण सैनिक विजयोंका क्रम

इस प्रकार कुमारपाल भारतीय इतिहासमें महान् विजेताके रूपमें अंकित है। उसके सभी सैनिक अभियान सफल रहे और सर्वदा अन्तमें विजयश्री कुमारपालको ही प्राप्त होती रही। शासनके प्रथम दस वर्षोंमें सन् ११४२ से ११५२ तक कुमारपाल आन्तरिक शत्रुओं और उक्त आक्रमणों-द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा। वह महान् योद्धा था और उसने गुजरात-के राज्यकी सीमाका व्यापक विस्तार किया। जयसिंहसूरि-द्वारा कुमार-पालचरित तथा हेमचन्द्र-द्वारा द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजयका जो वर्णन है, वह प्राचीन भारतीय राजाओंकी दिग्विजयका परम्परागत कवित्वमय वर्णन है और उनको सम्पूर्णतया ज्योंका-त्यों ऐतिहासिक कोटि-के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता तथापि उन युद्धविवरणोंमें अनेकानेक तथ्य भरे पड़े हैं, जिनकी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह इसलिए कि इन तथ्योंकी पुष्टि उन शिलालेखों तथा ऐतिहासिक प्रबन्धोंसे भी होती है जिनकी प्रामाणिकतापर सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता।

साँभर प्रदेशके अर्णोराजा, शीलहारराजा मल्लिकार्जुन तथा मालवा-धिप वल्लालपर कुमारपालकी विजयकी ऐतिहासिक घटनाएँ ऐसी हैं, जो केवल जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नहीं अपितु इनका विभिन्न शिलालेखोंमें भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमारपालने उन राजाओंको भी परा-जित कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया, जिन्होंने विद्रोह किया अथवा शत्रुके पक्षको ग्रहण कर उसकी सहायता की। इस प्रकार चन्द्रावतीके विक्रमसिंह, काठियावाड़के सौंसरराज तथा अन्य राजाओंको कुमारपालने न केवल परा-

जित किया अपितु उनपर अपना पूर्ण आधिपत्य भी स्थापित किया।

जयसिंहके कुमारपालचरित तथा हेमचन्द्रके द्वयाश्रयमें कुमारपालकी विभिन्न सैनिक विजयोंकी गौरवगाथाके जो विशद वर्णन मिलते हैं, उनसे विदित होता है कि उसने किस प्रकार पहले सौराष्ट्र विषय और फिर कच्छ विजयके पश्चात् पंचनदाधिपको रणभूमिमें पददलित और पराजित किया। इसके अनन्तर कुमारपालने पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़कर मूलस्थानके मूलराजको भी अपने अधीन किया। यह मूलस्थान आधुनिक मुलतान है। काठियावाड़में कुमारपालके सैनिक अभियान और अन्तमें उसकी महान् विजयके सुस्पष्ट विवरण अनेक जैन ग्रन्थोंमें मिलते हैं। यही नहीं, इन जैन ग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंगोंकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखों-द्वारा भी होती है। इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए बहुतसे प्रमाण हैं कि अपने समयमें कुमारपालका समस्त गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतपर एकच्छत्र प्रभुत्व स्थापित था। द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजय वर्णनका विश्लेषण करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि उसकी मान्यता तत्कालीन भारतके एक महान् प्रभुसतासम्पन्न शक्तिके रूपमें विद्यमान थी। वस्तुत: बारहवीं शताब्दीमें भारतमें कोई ऐसी एक संघटित तथा शक्तिशाली राज्य-शक्ति न थी, जो उसकी समानता करती।

कुमारपालकी राज्यसीमा

हेमचन्द्रके महावीरचरित्रमें कहा गया है कि कुमारपालकी विजयोंका क्षेत्र उत्तरमें तुर्किस्तान, पूर्वमें गंगा, दक्षिणमें विन्ध्यपर्वत तथा पश्चिममें समुद्र तक व्यापक था।[1] जयसिंहने कुमारपालकी अखण्ड विजयोंका विवरण देकर उसके दिग्विजय क्षेत्रका भी उल्लेख किया है। उसका कथन है

१. स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्।
याम्यामाविन्ध्यमावार्धि पश्चिमां साधयिष्यति॥
—महावीरचरित : ४ : ५२।

'आगंगाम् ऐन्द्रोम्, आविन्ध्याम् याम्याम् , आसिन्धु पश्चिमाम् , आतुरुष्काम् कौबेरीम् चौलुक्यः साधयिष्यति ।' अभिप्राय यह कि कुमारपालके दिग्विजयका क्षेत्र पूर्व दिशामें गंगा नदी, दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत, पश्चिममें सिन्धु तथा उत्तरमें तुरुष्कभूमि तक विस्तृत था।

कुमारपालकी इन सैनिक विजयोंपर विचार करनेसे स्पष्ट है कि उसका आधिपत्य हरिद्वारके निकट गंगा तक सुदृढ़तापूर्वक स्थापित था। उसने कान्यकुब्ज प्रदेशको पराजित कर इस क्षेत्रके सभी राजाओंको अपने अधीनस्थ कर लिया था। दक्षिणमें कुमारपालने मालवराजको पराजित कर एक बार पुनः उस प्रदेशको चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत मिला लिया था। देशमें कोई भी दूसरी ऐसी शक्ति नहीं थी जो इस समय चौलुक्य प्रभुत्वका विरोध करती अथवा उसको चुनौती देती। दक्षिणमें कुमारपालने विन्ध्यपर्वत तक विजय प्राप्त कर ली थी और उस क्षेत्रमें उसका एकच्छत्र प्रभुत्व था। यह बात तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें तो वर्णित है ही, कुमारपालके सैनिक अभियानोंसे भी पुष्ट होती है।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि कुमारपालने मुलतानके राजाको हटाकर श्रीनगरपर भी विजय प्राप्त की। इनके बाद वह पंचनदाधिप (पंजाबके राजा)के विरुद्ध सफल युद्ध कर जालन्धर तथा मरुस्थानके मार्गसे लौटा। कुमारपालचरित तथा द्वयाश्रय महाकाव्यका यह विवरण यदि अक्षरशः न भी माना जाये, तो भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इतना तो कमसे-कम स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुमारपालके राज्यपालने पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतके पहाड़ी राज्यों, जिनमें श्रीनगर भी सम्मिलित था, दमनकर चौलुक्य प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार ये क्षेत्र महान् चौलुक्यराज कुमारपालके अधीन थे। राज्यका पश्चिमी सीमान्त समुद्र बताया गया है। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि कुमारपालने सौराष्ट्र प्रदेशमें अनेक सैनिक अभियानों-द्वारा देशके उस भागको अपने राज्याधीन कर लिया था। इस दिशामें तो महान् चौलुक्य

शक्तिसे प्रतियोगिता करनेवाली कोई राज्यशक्ति थी ही नहीं । सिन्धुराजको उसकी प्रभुता मान्य थी । इस प्रकार चौलुक्यराज कुमारपालकी ऐसी महत्ता और सत्ता स्थापित हो गयी थी, जैसी किसी चौलुक्य राजाको अब तक न हो पायी थी । कुमारपालके प्रचुर संख्यामें प्राप्त शिलालेख, ताम्रपत्र, दानलेख और उनके प्राप्तिस्थान सभी एकमतसे उसकी इसी व्यापक और विशाल राज्य-सीमाकी स्थितिका समर्थन करते हैं । इस प्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व दिशामें गंगा, पश्चिममें समुद्र, उत्तरमें मुलतान तथा श्रीनगर और दक्षिणमें विन्ध्यपर्वतके विस्तृत एवं व्यापक प्रदेशमें कुमारपालका आधिपत्य सुदृढ़तया स्थापित था । प्रबन्धकारोंके अनुसार हेमचन्द्र-द्वारा उल्लिखित राज्यसीमाके अन्तर्गत कोंकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च, भाभेरी, मारवाड़, मालवा, मेवाड़, कीट, जांगल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर, राष्ट्र अर्थात् महाराष्ट्र आदि अठारह देश थे । गुजरातके साम्राज्यकी सीमा प्रदर्शित करनेवाली, इतनी व्यापक विशाल रेखा, भारतके मानचित्रमें केवल कुमारपालके पराक्रमने अंकित की थी ।

चौलुक्य-साम्राज्य चरम सीमापर

मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालकी आज्ञाकी मान्यता कर्ण, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, मालवा, कोंकण, जांगलक, मेवाड़, सपादलक्ष और जालन्धरमें होती थी और इन राज्योंमें उसने 'सप्तव्यसन' पर प्रतिषेधाज्ञा लगा दी थी।[1] इससे भी कुमारपालकी राज्यसीमाका ठीक-ठीक

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९५—'कर्णाटे गुर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छसैन्धवे । उच्चायां चैव भम्भेर्यां मारवे मालवे तथा ॥ कौङ्कणे तु तथा राष्ट्रे कीरे जाङ्गलके पुनः । सपादलक्षे मेवाड़े ढील्यां जालन्धरेऽपि च ॥ जन्तूनामभयं सप्तव्यसनानां निषेधनम् । वादनं न्यायघण्टाया रुदतीधनवर्जनम् ॥'

पता लग जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है। चौलुक्य साम्राज्यपर उसके संस्थापक मूलराजके समयसे यदि विचार किया जाये तो विदित होगा कि मूलराजने सारस्वत मण्डल (सरस्वती नदीकी घाटीमें) अणहिल-पाटकको अपनी राजधानी बनाकर राज्यकी स्थापना की। इस प्रदेशमें उसने सत्यपुर मण्डल, जो जोधपुर या मारवाड़ राज्यका आधुनिक सांचोर प्रदेश है, सम्मिलित किया। उसके पुत्र भीम प्रथमने, कच्छमण्डल (कच्छ) को विजित किया। इसके बाद कर्णने लतामण्डल, दक्षिण गुजरातको तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मण्डल (काठियावाड़) अवन्ति, भाल्लास्वमी महदवाड शाका प्रायः सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मण्डल, आधुनिक दोहादका चतुर्दिक् प्रदेश, आधुनिक जोधपुर तथा उदयपुरके अनेक मण्डलोंको चौलुक्य साम्राज्य में मिलाया। जयसिंह सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने इस व्यापक एवं विस्तृत राज्यमें न केवल अनेक प्रदेशोंपर विजय प्राप्त कर उन्हें अन्त-र्भूत किया, बल्कि आधुनिक गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानेके सुदूर प्रदेशोंमें अपना आधिपत्य स्थापित रखनेमें भी सफलता प्राप्त की। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि कुमारपालके राज्य-कालमें चौलुक्य साम्राज्य अपनी चरम सीमापर प्रतिष्ठित एवं मान्य था।

चौलुक्यकालमें गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतके विशाल भूखण्डकी राज्यव्यवस्थाका इतिहास अध्ययन करने योग्य है। इस समयकी विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों और अधिकारियोंके नाम ही नहीं मिलते अपितु एक-एक इकाइयों-द्वारा प्रादेशिक विस्तार तथा उनके शासन-प्रबन्धकर्त्ताओंके भी विवरण प्राप्त होते हैं। दसवीं शताब्दीके अन्तमें भारत, काबुलसे कामरूप तथा कश्मीरसे कुमारीअन्तरीप तक विभिन्न राज्यखण्डोंमें विभाजित था। इनमें कुछ राज्य बड़े थे तो कुछ छोटे। इनका शासन निरंकुश

हिन्दू राजा, जो अधिकतर राजपूत थे, कर रहे थे। इस समय कोई ऐसी महान् शक्ति न थी, जो सम्पूर्ण देशको एकच्छत्र और एकसूत्रमें आबद्ध कर सकती। फिर भी प्राचीन परम्परा, धर्म तथा जातिकी एकता का एक ऐसा सूत्र विद्यमान था जिससे सभी राज्योंको साम्राज्यमें एक-बद्ध किया जा सकता था। भारतीय साम्राज्यकी कल्पना देशके राजाओंके सम्मुख थी। इसके अनुसार अधीनस्थ राज्योंका पददलन अनिवार्य न था। अपेक्षित था—केवल उनका अधीनस्थ होना और सम्राट् या चक्रवर्तीकी प्रभुसत्ताकी मान्यता स्वीकार करना। चौलुक्य-शासन-कालमें गुजरातमें राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था थी। यह तथ्य चौलुक्य राजाओंकी सत्ता तथा महत्तासूचक उपाधियों—महाराजा,[१] राजाधिराज,[२] परमेश्वर,[३] परमभट्टारक,[४] तथा महाराजाधिराजसे प्रमाणित और पुष्ट है। चौलुक्य राजे अपनेको गुर्जरधराधीश्वर कहते थे, अर्थात् वे गुजरात प्रदेशसे सर्वोच्च अधिपति थे।[५]

राष्ट्रका स्वरूप

चौलुक्य राजवंशके संस्थापक मूलराजने सारस्वत मण्डलमें अपना राज्य स्थापित कर अणहिलपाटकको (आधुनिक पाटन, बड़ौदा) राजधानी बनाया। इसमें उसने सत्यपुर मण्डल, साँचोरके चतुर्दिक् प्रदेशको जो आधुनिक जोधपुर मारवाड़ क्षेत्रके अन्तर्गत हैं, मिलाया। उसके पुत्र भीम-प्रथमने कच्छ मण्डल, कर्णने लता मण्डल दक्षिणी गुजरात तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मण्डल (काठियावाड़) अवन्ति, सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मण्डल

१. गाला शिला० : पो० ओ० खण्ड १, उपखण्ड २, पृ० ४०।

२. पाली शिला० : इपि० इण्डि०: खण्ड ११, पृ० ७०।

३. वही।

४. वही।

५. जालोर प्रस्तर लेख : इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ५४–५५।

(आधुनिक दोहदका चतुर्दिक्प्रदेश) और आधुनिक जोधपुर, उदयपुर राज्यके अनेक मण्डलोंको राज्यमें मिलाकर चौलुक्य राज्यका विस्तार किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने इन सुदूर प्रदेशोंपर जो आधुनिक गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानाके प्रदेश थे, अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखनेमें सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि ये सभी शासक साम्राज्य-निर्माता थे। अन्य प्रदेशोंको अपने राज्यमें इन्होंने निरन्तर मिलाया और सुदूर प्रान्तों तक अपनी सत्ता स्थापित की। चौलुक्योंकी राष्ट्र-व्यवस्था नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक थी। आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिके सिद्धान्तानुसार प्रभुसत्तासम्पन्न राजशक्तिको व्यवस्था तथा विधान निर्माणका अपरिमित अधिकार होता है। नियन्त्रित राजतन्त्रसे यह अभिप्राय है कि जहाँ विधान-व्यवस्थामें राजा ही सर्वाधिकारी नहीं अपितु उसका यह अधिकार वहाँकी संसद् अथवा लोकसभामें भी सन्निहित रहता है।

प्राचीन भारतमें राजाओं अथवा जनताको नवीन विधान बनाने अथवा विद्यमान विधानमें परिवर्तन करनेका अधिकार न था। आदिकालमें ब्रह्माने प्रथम राजा मनुको उन समस्त आवश्यक राजनियमोंको निर्मित कर प्रदान कर दिया था जो लोकशासन व्यवस्थामें पथ-प्रदर्शन किया करते थे। यह ईश्वरीय स्मृति-निर्मित राजनियम ही भारतके विभिन्न राज्योंमें प्रचलित था। इससे निरंकुश राजाओंकी स्वेच्छाचारितापर कुछ सीमा तक अंकुश लग जाता था। इससे स्वेच्छाचारी राजाओंकी निरंकुश व्यवस्था भी नियन्त्रित हो जाती थी। इस प्रकार दसवीं और बारहवीं शतीमें भारतके बहुत से निरंकुश राज्योंमें वस्तुतः नियन्त्रित राजतन्त्र-व्यवस्था विद्यमान थी और इसके अन्तर्गत सुशासन था तथा जनता प्रसन्न थी।[1]

नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता

साधारणतः यह धारणा प्रचलित है कि भारतीय राजा निरंकुश तथा

---

१. सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत : खण्ड ३, पृ० ४४७।

स्वेच्छाचारी हुआ करते थे। डाक्टर विसेण्ट स्मिथ तथा श्री एस० एम० एडवर्ड्सका यह मत है कि भारतीय राजा-महाराजा अनियन्त्रित होते थे। डॉक्टर बनर्जीका कथन है कि निरंकुश राजाका स्वरूप हिन्दू संस्कृतिकी दयालुताके अनुरूप न था।[1] अर्थशास्त्र तथा हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें देशके शासकपर लगे विभिन्न अंकुशों और प्रतिबन्धोंका उल्लेख है। इसपर भी यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिताका अतिरेक करता तो उसे अपदस्थ, उसके विरुद्ध खुला विद्रोह तथा दूसरे राजाको सिंहासनारूढ़ करनेका मार्ग खुला रहता था। इन परिस्थितियोंमें प्रायः कोई राजा पूर्णतः निरंकुश नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय राजव्यवस्थामें शासितके प्रति पितृ-प्रेमकी परम्परा भी प्राचीनकालसे चली आ रही थी। साधारणतः हिन्दू राजे अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह भाव रखते थे जैसी सहज स्नेहभावना एक पिता अपने पुत्रके लिए रखता है। यह भावना सिद्धान्तमात्र ही न थी अपितु प्रयोगमें भी लायी जाती थी। भारतीय राजाओंने कठोर और क्रूरता की नीति-द्वारा अपनी प्रजाका निर्दलन किया हो, इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। उफीने अपने 'जमैयत-उल-हिकायत'[2] में दीर्घजीवन बूटीकी एक मनोरंजक कथाका उल्लेख किया है, जिससे विदित होता है कि मुसलिम बादशाहोंकी तुलनामें भारतीय राजा-महाराजा अपेक्षाकृत दयालु हुआ करते थे। उनकी धारणा थी कि प्रजाका दमन करनेसे जन-अभिशापसे आततायी राजाओंकी आयु कम हो जाती है। इस कथाका चाहे जो भी महत्त्व हो, इतना तो स्पष्ट है ही कि हिन्दूराजा प्राचीन परम्पराके अनुसार अपनी प्रजाके प्रति पुत्र-जैसा स्नेह रखते थे। इसीलिए मध्यकालीन इतिहासमें कश्मीरके अतिरिक्त कहीं किसी आततायी राजाका उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. प्राचीन भारतमें जनशासन : पृ० ७४।

२. इलियट २ : पृष्ठ १७४।

इन परिस्थितियोंमें चौलुक्य राजे न तो निरंकुश राजे थे और न उनके अधिकार ही बहुत अधिक सीमित थे। राजकीय सत्तापर अंकुश तथा प्रतिबन्धोंके होते हुए भी चौलुक्य राजे प्रायः अपनी स्वेच्छाके अनुसार कार्य करते थे। महामात्यों और सचिवोंके परामर्शसे उनकी नीति निर्देशित होती अवश्य थी, किन्तु उसको स्वीकार करनेके लिए वे वाध्य न थे। इस प्रकार एक शब्दमें उन्हें हितैषी स्वेच्छाचारी शासक कहा जा सकता है।

राज्यमें कुलीनतन्त्र

द्व्याश्रय तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें अनहिलवाड़ेका ऐसा चित्रण एवं वर्णन हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहाँका राजा प्रभुसत्तासम्पन्न था। उसके पार्श्वमें श्वेत परिधानवाले जैनधर्मके आचार्यों अथवा ब्राह्मणोंका समूह रहता था। उसके एक ओर राजपूत योद्धा उपस्थित रहते जो युद्ध-भूमिमें अपनी वीरता तो दिखाते थे, साथ ही मन्त्रि-परिषद्में महत्त्वपूर्ण परामर्श भी दिया करते थे। इसके बाद वणिक् मन्त्रेश्वरोंका भी उसकी सभामें अस्तित्व था, जो यद्यपि शान्तिप्रिय धन्धोंमें लग गये थे, फिर भी उनकी नसोंमें अभी तक क्षत्रिय रक्त अवशेष था। किनारेकी ओर एक मण्डलमें प्रमुख योद्धा, राजकोय उच्च अधिकारी, भाट-बन्दोजन जिनकी वाणीमें बल था तथा शान्तिप्रिय किसानोंका समूह फूल-फलोंकी भेंट अर्पित करता दृष्टिगोचर होता था। इनके पृष्ठभागमें पहाड़ी क्षेत्रके आदिवासी भील आदि थे जिनका रंग काजल-सा काला था। इन्हें देखकर भय उत्पन्न होता था किन्तु यही धनुषधारी भील उनके रक्षक थे।[1] तत्कालीन अधिकारियों एवं मान्य ग्रन्थकारोंके उक्त विवरणसे राज्यके प्रमुख वर्गों तथा जातीय तत्त्वोंका परिचयबोध हो जाता है। राजसभामें सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा श्वेत वस्त्रोंकी पोशाकमें जैन पण्डितोंका उल्लेख मिलता है तो द्वितीयतः हमारी दृष्टि राजपूत योद्धाओंकी ओर आकृष्ट हो जाती है, जो रणभूमिमें अपना शौर्य

१. फोर्ब्स : रासमाला : पृष्ठ २३०–३१।

दिखलाते थे तथा सचिव-सभामें परामर्शका भी कार्य करते थे। तृतीयतः वणिक् 'मन्त्रेश्वरों' का भी उल्लेख मिलता है, जो यद्यपि 'शान्तिका व्यवसाय' करते थे फिर भी जिनकी धमनियोंमें क्षत्रिय रक्त अब भी विद्यमान था। अन्तमें हमें शब्दों-द्वारा गर्जन करनेवाले भाटों तथा शान्तिप्रिय किसानोंका वर्णन मिलता है।

सामन्तवादका अस्तित्व

राज्यमें ब्राह्मणोंकी स्थिति शक्तिशाली, प्रतिष्ठित और सम्पन्न थी। चौलुक्य राजाओंने पुण्य-प्राप्तिके लिए ब्राह्मणोंको भूमिदान किया था। भूमिदानका दूसरा उद्देश्य पंच महायज्ञ, बलि, चरु, विश्वेदेवा, अग्निहोत्र तथा अतिथि यज्ञ था। इसके अतिरिक्त इसी कालमें सर्वप्रथम मोढ़ ब्राह्मण शासनके विभिन्न विभागोंमें विशेषतः महाक्षपटलिकके पदपर नियुक्त किये गये थे।[1]

राजपरिवारके सदस्योंको भी ज़मीन-जागीर देनेकी प्रथा थी। कुमारपालके सम्बन्धमें भी ऐसा ही कहा जाता है। सोलंकी सम्राट्ने कुम्हार अलिगको सात-सौ ग्रामोंका दानपत्र दिया था। उक्त कुम्हारने अपने निम्नकुलसे लज्जित होकर अपना उपनाम 'सगरा' रखा जो बादमें भी उसके

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ११, पृष्ठ ७३। श्री ध्रुवके अनुसार कुम्यारेना लेखक 'मोढ़परिवार'का सदस्य था। मूलराजके काडी शिलालेख में जिस प्रकार मोढ़ेरा 'श्री मोढ़ेरा' लिखा गया है, उससे विशेष पवित्रताका भाव विदित होता है। इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृष्ठ १९१। अब भी मोढ़ेरामें मोढ़ ब्राह्मणों तथा बनियोंकी कुलदेवीका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्रकार मोढ़ तथा मोढ़ेराकी अपनी प्राचीन परम्परा है तथा इनका उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें भी मिलता है। कुमारपालके परामर्शदाता, पथप्रदर्शक तथा जैन महापण्डित हेमचन्द्र मोढ़ ही थे। —प्रबन्धचिन्तामणि : पृष्ठ १२२७।

वंशका बोधक एवं परिचायक रहा।[1] यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बघेलके सिवा सैनिक सेवाके निमित्त वंश-वंशजोंके लिए किसीको भी स्थायी रूपसे भूमि नहीं प्रदान की गयी। गुजरातकी मुख्य भूमिमें जितने क़िले थे, उनमें राजाकी ही सेना रहती थी। सामन्तों और सरदारोंका उनमें हस्तक्षेप न था। प्रायः सभी राजपूत घरानेमें जिनके प्रधान बड़े-बड़े जागीरदार तथा शासक होते थे, उन्हें अणहिलपुरके राजा-द्वारा भूमि देनेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इसमें एक अपवाद भीलोंका है, जिनका कथन है कि उन्होंने चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा कर्ण द्वितीयसे भूमि प्राप्त की थी।

द्वयाश्रय महाकाव्य, प्रबन्धचिन्तामणि तथा चौलुक्योंके अनेक विवरण-पत्रोंमें मूलराजकी राजसभामें युवराज और महामण्डलेश्वरका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके बहनोई कृष्णदेवका (कान्हदेवका) वर्णन एक बड़े सामन्तके रूपमें हुआ है, जिसके अधीन भारी सेना भी थी।[2] जब सामन्त उदयन काठियावाड़में सौंसरके विरुद्ध सैनिक अभियान कर रहा था, उस समय जब वह नूरद्वानमें पहुँचा तो वहाँ उसने सभी महामण्डलेश्वरोंको एकत्र किया। ये महामण्डलेश्वर और कोई नहीं सभी प्रदेशोंके प्रधान थे। उन मण्डलीक राजाओंका भी उल्लेख मिलता है जो अणहिलपुरकी राजसत्ता तो स्वीकार करते थे किन्तु उनके प्रदेश गुजरातके अन्तर्गत नहीं थे। सामन्त, सैनिक अधिकारी थे और उन्हें राजकोषसे वेतन मिलता था। इनकी सेनामें जितने सैनिक रहते थे, उसीके अनुसार उसका पद

---

१. '....ते नु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते।'
—प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश चतुर्थ, पृष्ठ ८०।

२. प्रभावकचरित : २२ अध्याय, पृष्ठ १९७ 'तत्रास्ति कृष्णदेवाख्यः सामन्तोऽश्वायुतस्थितिः'।

होता था।[1] यही पद्धति बादमें दिल्लीके मुग़ल सम्राटोंके कालमें प्रचलित हुई। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें अनेकानेक उच्च सैनिक अधिकारी जो अपनी स्वतन्त्र सेना भी रखते थे, वणिक् (बनिया) वर्गके थे। इन लोगोंमें वनराज तथा सुज्जनके साथी जाम्ब, जयसिंहके सेवक मुँजाल और कुमारपालके समय उदयन और उसके पुत्रके नाम उल्लेखनीय हैं।

अभिजात तन्त्रकी प्रमुखता

इस प्रकार स्पष्ट है कि जागीरदार राजपूतोंके कुलीनतन्त्रके अतिरिक्त वणिक् या वैश्योंका भी राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश और प्रभाव था। केवल प्रवेश ही नहीं, इनके हाथ शासनसूत्र भी था। ऐसे लोगोंमें प्राग्वत, जो अब पोरवाड कहे जाते हैं तथा मोढ़ प्रसिद्ध हैं।[2] श्री एच० डी० सनकालिया का यह मत है कि 'वोडावा' नामक राजपूत जातिका अब अस्तित्व नहीं किन्तु इनका अस्तित्व आधुनिक पोरवाड बनियोंमें दृष्टिगत होता है। चौलुक्योंके अधीन शासकके रूपमें इनका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल[3] उल्लेख्य हैं जिन्होंने, देलवारा मन्दिरका निर्माण कराया था तथा अपने सम्बन्धियोंके अनेकानेक लेख उत्कीर्ण कराये थे। ये और इनके पूर्वज श्वेताम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ होनेके अतिरिक्त राजाके कुशल सचिव भी थे।

यशपालका तत्कालीन नाटक 'मोहराजपराजय' राजधानी अणहिल-

---

१. शिलालेखों तथा सिक्कोंमें 'सामन्त' शब्दका बराबर प्रयोग हुआ है।

२. प्रागवत सम्भवतः पोरित्याबद्नाका संस्कृत रूप है जिसका उल्लेख कुमारपालकालीन नाडोलपट्टमें हुआ है।—इण्डि० एण्टी० : खण्ड १०, पृष्ठ २०३।

३. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृष्ठ २१०।

पुरमें वणिकोंकी प्रमुखताका उल्लेख करता है। इसमें जो चित्रांकन किये गये हैं उनके अनुसार यहाँ कोटीश्वरों तथा लक्षाधिपतियोंके भवनोंपर ऊँची पताकाएँ तथा घण्टे लगे रहते थे। उनका वैभव राजकीय वैभवके ही समान था। उनके पास हाथी, घोड़े भी रहते थे। कुबेरने ६ करोड़ स्वर्ण मुद्रा, आठ-सौ तोला रजत, ८ तोला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र कुम्भ अन्न, दो सहस्र तेलकी खारी, ५० हज़ार अश्व, एक सहस्र हाथी, ८० हज़ार गाय, ५०० हल, गाड़ी गृह आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[1] ये जैन वणिक् राज्यमें बहुत प्रभावशाली थे। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमार-पालके राज्यारोहणमें सत्ताधारी वणिकोंके दलने योगदान दिया था। कुबेरने 'परिग्रहपरिमाणव्रत'के अन्तर्गत अपने धन-धान्यकी सीमा निश्चित की थी।

यह स्थिति स्पष्ट बताती है कि राज्यमें जैन-व्यवसायियों और वणिकों का बहुत ऊँचा स्थान था। इसके दो कारण थे—एक था उनके पासकी

---

१. गुरुपादमूलकमले गृहमेधिजनोचितानिमान्नियमान्।
प्रतिपद्यते कुबेरो वैराग्यतरङ्गितस्वान्तः।
तद्यथा—जन्तून् हन्मि न वच्मि नानृतमहं स्तेयं न कुर्वे पर-
स्त्रीर्नो यामि तथा त्यजामि मदिरां मांसं मधुभक्षणम्।
नक्तं नाद्मि परिग्रहे मम पुनः स्वर्णस्य षट् कोटय-
स्तारस्याष्ट तुलाशतानि च महार्हाणां मणीनां दश ॥३९॥
कुम्भखारी सहस्रे द्वे प्रत्येकं स्नेहधान्ययोः।
पञ्चायुतानि वाहानां सहस्रमपि हस्तिनाम् ॥४०॥
अयुतानि गवामष्टौ पञ्च पञ्च शतानि तु।
हलाट्टसद्मनां यानपात्राणामनसामपि ॥४१॥
पूर्वं योपार्जिता लक्ष्मीरियत्यस्तु गृहे मम
इतो निजभुजोपात्तां करिष्ये पात्रसात्पुनः ॥४२॥
—मोहराजपराजय

विशाल सम्पत्ति तथा धनराशि और दूसरा कारण था उनके अधीनस्थ सेनाका होना। इस प्रकार निश्चयपूर्वक इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि उस समय सामन्तों अथवा जागीरदारोंके कुलीनतन्त्रकी प्रमुखता न थी अपितु वहाँ सम्पन्न प्रभावशाली जैन वणिकोंका अल्पजनाधिपत्य था जिसे अभिजाततन्त्र कहा जा सकता है।

नागर शासन-व्यवस्था

हिन्दू राजतन्त्रका आधार, सैनिक शासनका न था अपितु उनके अन्तर्गत नागर अथवा सानुनय व्यवस्थाका प्राधान्य था।[१] इस कालमें अधिकांश युद्ध, भूमिलोभ अथवा राज्यविस्तारकी आकांक्षासे प्रेरित न होकर उच्च सिद्धान्तोंके लिए हुए। यह उच्च सिद्धान्त था स्वर्गकी प्राप्ति।[२] समुद्रगुप्तमें भी यही भावना परिलक्षित होती है। उसकी मुद्राएँ इस तथ्यका स्पष्ट संकेत करती हैं।[3] प्रत्येक राजाका शासन सिद्धान्त मुख्यतः इसीपर आधृत था। हिन्दूराजा, नागर या सानुनय राजकीय व्यवस्थाको पसन्द करते थे और उनके शासन-प्रबन्धमें सैनिकवादका प्राधान्य न था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि साधारणतः हिन्दू राज्यके दीर्घजोवी होनेके लिए परम्परागत सर्वमान्य राजनियमोंका पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता था।

चौलुक्य राजाओंका प्राचीन भारतीय राजाओंकी भाँति यही महान्

---

१. नराधिपश्चाप्यनुशिष्यमेदिनीं दमेन सत्येन च सौहृदेन।
महद्भिरिष्ट्वा क्रतुभिर्महायशाः त्रिविष्टपे स्थानमुपैति शाश्वतम्॥
—शान्ति पर्व : ६१।

२. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन : अध्याय २, पृ० ७६।

३. 'राजाधिराजा पृथ्वीम् अवनित्य दिवं जयति अप्रतिवार्यवीर्यः' जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री : खण्ड ६, उपखण्ड २, स्टडीज इन गुप्त हिस्ट्री : पृ० ३२।

लक्ष्य था कि विदेशी आक्रमणों अथवा आन्तरिक उपद्रवोंसे अपनी प्रजाकी रक्षा करना तथा अपने सीमान्तको व्यापक विस्तृत बनाकर उन प्रदेशोंको अपने अधीनस्थ करना। वस्तुतः उनका राजनीतिक आदर्श राजा विक्रमादित्य था, जिसने सभी दिशाओंके प्रदेशोंमें आक्रमण कर राजमण्डलोंको अपना सेवक बना लिया था।[1]

चौलुक्य राजे राज्यमें सेना रखनेके अतिरिक्त सामन्तशाहीकी स्वीकृति भी देते थे। इस प्रकार सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको एक-सौ अश्वोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल, अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने गया तो यह कहा जाता है कि उसकी सेनामें 'महाभूत' तथा 'भूतराजा' नामके सेनानायक थे।[2] यह स्थिति स्पष्ट करनेका अभिप्राय इतना ही है कि गुजरातके चौलुक्यराजाओंका शासन सानुनय था, सैनिक नियमोंके अनुसार यहाँकी राजव्यवस्था न थी। केवल युद्धके समय राज्यकी सेनाके साथ अधीनस्थों तथा राज्यके बाहरके प्रधानों की सेनाका एकीकरण हो जाता था और शत्रुसे संघटित युद्ध होता था।

केन्द्रीय सरकार

चौलुक्योंके समय नौकरशाही अथवा सामन्तशाही शासन पद्धति थी, इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। इसका ठीक-ठीक निर्द्धारण करना तो आधुनिक कालमें भी कठिन हो जाता है। आज भी जब कि लम्बे-चौड़े विशद विधान बन गये हैं, यह श्रेणी विभाजन सच्चे अर्थमें सम्भव नहीं। इसके लिए तत्कालीन समय और परिस्थितियोंका विचार करना ही होगा। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना होगा कि साम्राज्यकी आवश्यकताओंके अनुसार राजाओंकी नीति निर्द्धारित हुई होगी। जहाँतक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, उसके आधारपर निश्चित

---

१. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २२४।

२. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २२२।

रूपसे कहा जा सकता है कि चौलुक्यकालीन गुजरातमें शासनयन्त्रकी व्यवस्थित प्रणाली विद्यमान थी।

राजा और उसका व्यक्तित्व

कुमारपालका साम्राज्य व्यापक और विशाल था, यह हम देख चुके हैं। उसीके कालमें चौलुक्योंकी शक्ति तथा प्रभुत्व चरम सीमापर पहुँच गया था। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, दानलेखों तथा साहित्यिक सामग्रियोंसे विदित होता है कि उसके समयमें सुदृढ़ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन-व्यवस्था विकसित और विद्यमान थी। शासनका सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वही सम्मान तथा उपाधियोंका वर्षण-वितरण किया करता था।[१] उसकी मुख्य रानी 'पट्टमहिषी' कही जाती थी।[२] मुख्य राजकुमार अथवा युवराज, राजाके बाद सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्तितत्व रखता था। राज्यके शासन संचालन तथा सम्पादनका कार्यभार उसके प्रमुख कर्तव्योंमें था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि सिंहासनारूढ़ होनेपर कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालादेवीको पट्टरानी बनाया। राजाकी अस्वस्थता अथवा अनुपस्थितिमें ये उसका कार्य करते थे।[३]

तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंमें राजाका वर्णन इस प्रकार मिलता है—प्रभुसत्तासम्पन्न राजाका व्यक्तितत्व राजकीय वैभवसे पूर्ण रहता था। उसके ऊपर लाल मखमलका राजच्छत्र रखा जाता था। उसके सिरके पृष्ठभागमें सुनहरे सूर्य मण्डलका चित्राङ्कन चमकता रहता था। उसके गलेमें वहुमूल्य मोतियोंका हार तथा उसके हाथोंमें चमकते हुए हीरोंका कंकण रहता था। उसका व्यक्तित्व तथा आकृति भी असाधारण होती थी।

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड २, पृ० २३७।

२. महारानी राजाके राज्याभिषेकके समय सिरपर सुवर्णपट्ट धारण करती थीं। इसलिए उसे 'पट्टरानी' कहा जाता था।

३. सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारतका इतिहास : पृ० ४५८।

उसके विशाल बाहुमें भाला तथा तलवार सुन्दर लगते थे। युद्धभूमिमें उसके नेत्रोंसे अग्निवर्षा होती थी। युद्धभूमिका प्रचण्ड शंखनिनाद भी उसे उसी प्रकार परिचित रहता, जितना राजप्रासादका मधुर ध्वनियन्त्र। वह शस्त्रधारी होता था और साथ ही अभिषिक्त प्रधान। वह क्षत्रियपुत्र होता था और रानीका राजकुमार होता था।[1]

राजाके कर्त्तव्य

राजाके कर्त्तव्य मुख्यतः तीन प्रकारके थे। वह शासन परिषद्का अध्यक्ष था। वह प्रधान सेनापति था और वही होता था न्यायाधिकरणका सर्वोच्च अधिकारी। कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताने कुमारपालकी दिन-चर्याका जो वर्णन किया है उससे राजाके विभिन्न कर्तव्यों तथा कार्योंका स्पष्ट परिचय मिलता है।[2] सोमप्रभाचार्यका कथन है कि राजा बहुत सवेरे ही उठ जाता था और पवित्र जैनधर्मके पंच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण तथा देवताओं और गुरुओंका ध्यान करता था। इसके पश्चात् स्नानादिके अनन्तर वह राजप्रासादके मन्दिरमें जैन मूर्तियोंका वन्दन-अर्चन करता था। यदि कभी समय रहता था तो अपने मन्त्रियोंके साथ वह हाथीपर कुमार विहार मन्दिर भी जाया करता था। वहाँ अष्टाङ्गिक पूजन करनेके अनन्तर वह हेमचन्द्रके पास जाता था। उनका वन्दन तथा धार्मिक शिक्षा श्रवण-कर वह मध्याह्नमें राजप्रासाद लौटता। तब वह साधुओंको भिक्षा देता और अपने मन्दिरकी जैन मूर्त्तियोंको प्रसाद भोग लगाता और फिर स्वयं भोजन करता। भोजनके पश्चात् वह विद्वानोंकी एक सभामें सम्मिलित होता और धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर उनसे विचार-विमर्श करता। इसमें कवि सिद्धपाल प्रमुख थे, जो कुमारपालको अनेकानेक प्रासंगिक कथाएँ सुनाकर प्रसन्न करते थे। दिवसके चतुर्थ प्रहरमें राजसभामें राजा

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

२. कुमारपालप्रतिबोध : पृष्ठ ४२२ तथा ४७१।

सिंहासनपर आसीन हो राज्यका कार्य सम्पादन करता। इसी समय वह जनताकी प्रार्थना सुनता तथा तद्विषयक निर्णय भी सुनाता था। कभी-कभी वह राजकीय कर्तव्य भावनाके अन्तर्गत मल्लयुद्ध, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकार के अन्य आयोजनोंमें भी सम्मिलित होता था।

इसके पश्चात् वह सूर्यास्तके लगभग ४८ मिनिट पूर्व सन्ध्याका भोजन करता। प्रत्येक पक्षको अष्टमी और चतुर्दशीको वह केवल एक शाम ही भोजन करता। भोजनोपरान्त वह प्रासाद स्थित मन्दिरोंमें पुष्पोंसे अर्चना करता तथा नर्तकियों-द्वारा देव मूर्तियोंके सम्मुख दीपक नृत्यका आयोजन कराता। इस पूजा और अर्चनाके अनन्तर वह वाद्ययन्त्र तथा चारणोंसे संगीत सुनता। इस प्रकार दिन व्यतीत कर वह मस्तिष्कमें त्यागकी भावना रख विश्राम करने जाता था।[१]

यद्यपि कुमारपालप्रतिबोधसे बहुत ही सीमित और संक्षिप्त ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है, फिर भी विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि यह संक्षिप्त जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय और प्रामाणिक है। उक्त ग्रन्थ का लेखक कुमारपालका केवल समसामयिक ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनकी अन्तरंग बातोंका भी ज्ञाता था। कुमारपालके धार्मिक गुरु हेमचन्द्रने अपने कुमारपालचरित्रमें उसकी दिनचर्याका जो विवरण दिया

---

१. तो राया वुट्टवग्गं विसज्जिअं दिवस चरम-जामम्मि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाई।
सामंत मतिमंडलिय सेट्ठिपमुहाण दंसणं देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडीयारं।
कय-निव्विवेय जण विम्हियाइं करि अंक मल्लयुद्धाइं
रज्जट्ठिइ त्ति कइया वि पेच्छए छिन्नवंछो वि।
—कुमारपालप्रतिबोध : पृष्ठ ४४२।

है वह सोमप्रभाचार्यके वर्णनसे पूर्णतः साम्य रखता है।[१]

श्री फोर्ब्सने राजाके दैनिक जीवनके कार्यक्रमका जो विवरण लिखा है वह भी उक्त वर्णनसे समानता रखता है। उसका कथन है कि राजाकी निद्रा प्रभातकालमें राजकीय वाद्य तथा शंखनादसे भंग की जाती थी। राजा शय्याका त्यागकर अश्वारोहणके लिए चला जाता था। मध्याह्नमें वह लोगोंकी प्रार्थनाएँ और आवेदन-निवेदन सुनता था। राजसभाके द्वार पर सशस्त्र सैनिक रहते थे। ये ही सभामें लोगोंको प्रवेश करने देते अथवा निषेध करते थे। युवराज अथवा भावी उत्तराधिकारी, राजाके पार्श्वमें रहता। मण्डलेश्वर तथा सामन्त राजाके चारों ओर रहते थे। मन्त्रिराज अथवा प्रधान अपने सचिवोंके साथ वहाँ विद्यमान रहता था। वह मित-व्ययिता तथा साधुपरामर्शके लिए सदा प्रस्तुत रहता था। अपने परामर्शकी पुष्टि और प्रामाणिकताके लिए वह लिखित व्यवस्था तथा पूर्वमें हुई उसी प्रकारकी घटनाकी परम्पराका व्यवस्था-पत्र भी प्रस्तुत रखता था। आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर पण्डित तथा विद्वान् आमन्त्रित किये जाते थे और उनके साहित्य तथा व्याकरणशास्त्रका रसास्वादन होता और उनपर विचार-विमर्श होता।[२]

शासन-परिषद्का अध्यक्ष

उपर्युक्त आधिकारिक विवरणोंसे स्पष्ट है कि राजाको तीन प्रकारके कर्त्तव्य सम्पादन करने पड़ते थे। शासन-परिषद्के अध्यक्ष होनेके नाते उसे राजकीय व्यवस्थाका निरीक्षण करना पड़ता था। उक्त ग्रन्थोंके वर्णनोंसे स्पष्ट है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमें (लगभग ३ बजे) राजा, सभामें सिंहासनपर आसीन होकर राज-काजका निरीक्षण करता था।[३]

---

१. हेमचन्द्र : कुमारपालचरित्र : सर्ग १, श्लोक २९, ७४।

२. फोर्ब्स : रासमाला अध्याय : १३, पृ० २३७।

३. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४४३।

महामण्डलेश्वर तथा सामन्त उसके चतुर्दिक् रहते थे। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों-सहित साधुतापूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते हुए लिखित आधिकारिक व्यवस्था लिये सदा प्रस्तुत रहते थे।[1] स्पष्टतः राजाको राज्य-कार्य सम्पादनमें मन्त्रियोंसे सहायता प्राप्त होती थी।

सैनिक कर्त्तव्य

राजा रणभूमिमें प्रधान सेनापति भी होता था, परिणामस्वरूप उसे सेनाके प्रशासनकी भी देख-भाल करनी पड़ती थी। यद्यपि दण्डाधिपति या दण्डनायकपर ही प्रधान सेनापतिका समस्त उत्तरदायित्व रहता था और उसीपर सैनिक व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी फिर भी राजा स्वयं सैनिक टुकड़ियोंका निरीक्षण किया करता था। कुमारपालप्रतिबोधमें कहा गया है कि यदा-कदा राजकीय कर्त्तव्य पालन करनेके लिए कुमारपाल मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोंमें सम्मिलित होता था।[2] यह केवल मनोरञ्जनके निमित्त न था अपितु राजकीय कर्त्तव्य के अन्तर्गत था। इससे विदित होता है कि सैनिक प्रदर्शनों, घुड़दौड़ों, हस्तियुद्धों आदिमें सम्मिलित हो कुमारपाल अपने आवश्यक 'सैनिक कर्त्तव्य' का पालन करता था।

वैचारिक कर्त्तव्य

न्यायाधिकरणके उच्चतम अधिकारीके रूपमें राजा जनपक्षके तर्क भी दिनमें सुनता था।[3] राजा अपने राजदरबारमें सिंहासनपर आसीन होकर जनतासे पुनर्वाद सुनता तथा अपना निर्णय देता था।[4] राजा अपना यह वैचारिक कर्त्तव्य गूढ़ परिषद्के अध्यक्ष रूपमें सम्पन्न करता था। इसके

१. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३७।

२. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४४३।

३. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३७।

४. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४४३।

अतिरिक्त अधिस्थानकके अधीन अनेक स्थानीय तथा प्रान्तीय न्यायालय रहे होंगे। राजा जहाँ महत्त्वपूर्ण पुनर्वाद सुना करता था वह सर्वोच्च न्यायालय था। यहाँ वह बहुत ही आवश्यक प्रश्नों तथा पुनर्वादोंको सुनता और मन्त्रियोंकी सलाहसे निर्णय दिया करता था। उसके मन्त्री, जिनके विषयमें हम पहले ही देख चुके हैं, लिखित आधिकारिक व्यवस्था-पत्र तथा पहले निर्णीत प्रश्नोंका उदाहरण प्रस्तुत रखते थे और न्याय सम्पादनमें राजाकी हर प्रकारसे सहायता करते थे। इस बातपर पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि पूर्वकालमें हुए निर्णयोंकी अवहेलना न हो।[1]

अन्य विभिन्न कर्त्तव्य

इनके अतिरिक्त भी राजाको अन्य विभिन्न कर्त्तव्योंका पालन करना होता था—यथा धार्मिक कर्त्तव्य आदि। वह विद्वत्परिषद् तथा पण्डित-मण्डलीमें उपस्थित हो उसमें दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श किया करता था। वह साधुओं-संन्यासियोंको भोजन-भिक्षा दिया करता था और मन्दिरोंमें अन्नादिकी भेंट करता। शासन कार्योंका सम्पादन कर, पण्डित तथा विभिन्न विषयोंके आचार्य आमन्त्रित कर लिये जाते थे और साहित्य तथा व्याकरण शास्त्रकी चर्चा छिड़ जाती। इससे भी अधिक आकर्षक कार्यक्रम होता था भ्रमणशील चारण अथवा चित्रकारका आगमन। ये राम तथा विभीषणकी प्राचीन कथाएँ सुनाते अथवा किसी विदेशी सुन्दरीके सौन्दर्यका चित्रण कल्पना-चक्षुके सम्मुख उपस्थित करते।[2] उपर्युक्त कार्य राजाके अतिरिक्त कर्त्तव्योंके अन्तर्गत थे, जिनका सम्पादन उसे अपने दैनिक उत्तरदायित्वोंको वहन करनेके साथ-ही-साथ करना पड़ता था।

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

राजा : नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित

चौलुक्य राजा, प्राचीन हिन्दू राजतन्त्रके अनुसार अनियन्त्रित राजे थे। राजा ही शासनसम्बन्धी समस्त विभागोंका अध्यक्ष और सर्वोच्च अधिकारी था। सिद्धान्ततः उसकी शक्ति और अधिकारमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अंकुश लगानेवाली अनेक शक्तियाँ थीं। इस प्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल सदा जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमें रहता था। उसके सिंहासनारूढ़ होनेमें राजधानीके सम्पन्न जैन दलोंने बड़ी सहायता की थी। ये जैन करोड़पति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक् उच्च पदोंपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दण्डनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोंके साथ पाटन छोड़कर चले गये थे और उन्होंने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बड़े-बड़े जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओंका प्रभुत्व सहन न था। कर्णदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठ-पुतली थे।[2] इस प्रकार महान् शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओंकी स्वेच्छा-चारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौलुक्य राजाओंको शासन कार्यमें मन्त्रियों-द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमें

१. के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व : खण्ड १, पृ० ३।
२. वही : पृ० ४५।

मन्त्रियोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिए, क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमें सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओं और सहायकोंके बिना राज्य उसी भाँति न चलेगा जिस प्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिए तथा उनसे सलाह लेनी चाहिए। मेरुतुंगने अपनी रचना प्रबन्धचिन्तामणिमें सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राज-दरबारमें मन्त्रियोंकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत हैं कि कुमारपालके यहाँ मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पण्डितोंकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज-सभामें वह महामण्डलेश्वरों तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों-सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओंकी उपेक्षा अथवा उल्लंघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टतः इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुमारपालको राज्य-शासन संचालनमें मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियों तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासन-

---

१. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न चास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलकानुविद्धम्॥
—प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

२. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४२३–४४३।

३. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

कालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु-शय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि जब सिद्धराजके उत्तराधिकारीका निर्वाचन हो रहा था, उस समय मन्त्रिगण सिंहासनके आकाङ्क्षी राजकुमारोंसे प्रश्न कर उनकी योग्यताकी परीक्षा ले रहे थे। जब एक राज्यसिंहासनाकाङ्क्षीसे पूछा गया कि वह सिद्धराजके अट्ठारह क्षेत्रोंका शासन कैसे संचालित करेगा तो उसका यह उत्तर कि 'आपके परामर्श तथा आदेशानुसार' उन मन्त्रियोंको उचित नहीं प्रतीत हुआ, जो सिद्धराज जयसिंहके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। इसलिए वह अयोग्य ठहराया गया।[1] प्रभावकचरित्रमें इस बातका उल्लेख है कि कुमारपालका राज्यारोहण श्रीमत् सम्भाके द्वारा हुआ था, जिसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता।[2] इसी प्रकार कुमारपालप्रतिबोधका कथन है कि मन्त्रियोंने परस्पर विचार-विमर्श कर कुमारपालको सिंहासनारूढ़ किया।[3] द्व्याश्रय काव्यके प्रणेता हेमचन्द्रने भी लिखा है कि मन्त्रियोंने कुमारपालको राज्यसिंहासनपर आसीन किया।[4]

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

२. प्रभावकचरित्र : २२, ३५६, ४१७।

३. एवं परुप्परं मंतिऊण तह गिण्हिऊण सवायं
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय नराणां।
रज्जंमि परिट्ठवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं
तत्तो भुवणमसेसं परिओस-परं व संजायं।

—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५।

४. तत्थ सिरि कुमरवालो वाहाए सव्वओवि धरिअ धरो
सुपरिट्ठ परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।

—द्व्याश्रय काव्य : सर्ग १, पृ० १५, श्लोक २८।

मन्त्री और उनका स्वरूप

इस प्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि एक-न-एक रूपमें इस समय मन्त्रिपरिषद्का अस्तित्व अवश्य था और उसका कार्य था राजा को शासन-सञ्चालन तथा न्याय-निर्णयमें सहायता प्रदान करना। इस मन्त्रि-परिषद्का अध्यक्ष सम्भवतः महामात्य, मन्त्री अथवा सचिव होता था। इस प्रकार जयसिंहके मुंजाल, कुमारपालके महादेव[१], अजयपालके नागड[२] तथा सोमेश्वर,[३] भीम द्वितीयके रत्नपाल,[४] वीरधवल वस्तुपाल और तेजपाल, वीसलदेवके नागड,[५] अर्जुनदेवके मूलदेव,[६] सारंगदेव, मधुसूदन तथा वेध्या मन्त्री थे।[७] यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिशाली राजाओं के अधीन ये मन्त्री तदनुकूल नीति निर्देशित करते थे। यह हम पहले ही देख चुके हैं। राज्यके उत्तराधिकारीके चुनावके अवसरपर एक राजकुमार का यह कथन कि 'आपके आदेश तथा परामर्शानुसार' उन मन्त्रियोंको उचित उत्तर प्रतीत नहीं हुआ जो सिद्धराजके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। यह बात स्पष्टतः सिद्ध करती है कि शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंके लिए राजकीय सत्ताका विरोध कर सर्वथा स्वतन्त्र नीतिका निरूपण कदापि सम्भव न था।

---

१. आर्कैयॅलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया वेस्टर्न सर्किल : १९०७-८, ५४-५५।

२. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १८, पृ० ३४७।

३. वही : पृ० ११३।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड ८, पृ० २०९।

५. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० ११२।

६. राव शिलालेख।

७. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४१, पृ० २१२ तथा पूना ओरियण्टलिस्ट जुलाई : १९३१ पृ० ७१।

कुमारपाल बहुत शक्तिशाली राजा था। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि वह पचास वर्षकी अवस्थामें सिंहासनारूढ़ हुआ। उसकी प्रौढ़ावस्था तथा विभिन्न देशोंमें पर्यटनसे प्राप्त अनुभवोंके फलस्वरूप उसमें तथा उसके कतिपय पुराने उच्च कर्मचारियोंमें मतभेद उत्पन्न हो गया। पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि कुमारपाल-जैसे योग्य तथा शक्तिशाली शासकके अधीन उनका प्रभाव एकदम विलुप्त हो गया है। परिणामस्वरूप उन्होंने राजाकी हत्या कर अपनी पसन्दका राजा गद्दीपर बैठानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे कुमारपालको इस षड्यन्त्रका पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारियोंको प्राणदण्ड मिला। निरंकुश तथा शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंकी स्थिति कैसी रहती थी, यह उसका एक उदाहरण है।

केन्द्रीय सरकारका संघटन

गुजरातके चौलुक्योंके शासनकालमें विभिन्न शासन यन्त्रोंका विकसित तथा पुष्ट स्वरूप विद्यमान था। ऐतिहासिक तथा तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंके अतिरिक्त शिलालेखों, दानपत्रों आदिके भी ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं, जिनसे विभिन्न राज्याधिकारियोंका पता चलता है। उनके कर्त्तव्योंपर प्रकाश डालते हुए ये विभिन्न प्रशासकीय इकाइयोंका भी नामोल्लेख करते हैं। कुमारपालका साम्राज्य बहुत लम्बा-चौड़ा था, इसलिए शासनकी सुविधाके विचारसे इसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंमें विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सरकारमें विभिन्न अधिकारी और विभाग निम्नलिखित थे :

१. महामात्य[1]
२. सचिव
३. मन्त्री
४. महाप्रधान[2]

---

१. आर्क्यॅ० सर्वे इण्डिया वे० स० : १९०७–८, पृ० ५४–५५।
२. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १३, पृ० ८३।

५. महामण्डलेश्वर[1]
६. दण्डाधिपति
७. दण्डनायक[2]
८. देशरक्षक[3]
९. कर्णपुरुष
१०. अधिष्ठानक[4]
११. शैय्यण्पाल
१२. भट्टपुत्र
१३. विषयिक[5]
१४. पट्टाकिल[6]
१५. सान्धिविग्रहक[7]
१६. दूतक[8]

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १०, पृ० १५९, इपि० इण्डि०: खण्ड ८, पृ० २१९, इण्डि० एण्टी० : खण्ड १८, पृ० ८३, वही : खण्ड १०, पृ० १६० ।

२. आर्कयॅ० सर्वे इण्डिया वे० स० : १९०७–८,४४-४५, ५१-५२, ५४-५५ ।

३. आर्कयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३ तथा मोह-राजपराजय : अङ्क ४, पृ० ७८ ।

४. वही ।

५. वही ।

६. वही तथा इपि० इण्डि० : खण्ड २३, पृ० २७४ ।

७. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४ ।

८. इण्डि० एण्टि० : खण्ड ४१, पृ० २०२-३ ।

१७. महाक्षपटलिक[1]

१८. राणक[2]

१९. ठाकुर[3]

शिलालेखों, दानपत्रों तथा अन्य प्रामाणिक विवरणोंसे विदित होता है कि महामात्य, महाप्रधान, सचिव और मन्त्री, राजाके परामर्शदाता थे। बाली शिलालेखमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि राजा कुमारपालके शासनकालमें श्रीमहादेव, महामात्यके पदका भार ग्रहण कर राजकार्य सञ्चालन करते थे।[4] इस तथ्यकी पुष्टि पाली,[5] किराडू[6] तथा गाला[7] शिलालेख भी करते हैं, जिनका तिथिक्रम क्रमशः विक्रम संवत् १२०९, १२०९ तथा १२० (१?) है। कुमारपालके समयके इन सभी शिला-लेखोंमें कहा गया है कि महामात्य महादेव (महामात्य श्रीमहादेव)के अधीन ही राजमुद्रा रहती थी। सचिव और मन्त्री, महामात्यके अधीन साधारण मन्त्री थे। अमात्य तथा महाप्रधानका उल्लेख केवल एक बार अजयपालके दानलेखमें हुआ है।[8]

दण्डाधिपति तथा दण्डनायक—ये क्रमशः प्रधान सेनापति तथा राज्य-

---

१. आर्कॅयॅलॉजी ऑव गुजरातः अध्याय ६, पृ० २०३।

२. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४७–४८।

३. वही।

४. '.....श्रीमत्कुमारपालदेव कल्याण विजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनी महामात्य श्रीमहादेवे....समस्त मुद्रा व्यापारान परिपंथयति।' आर्कॅयॅ० सर्वे० इण्डिया वे० स०: १९०७–८ पृ० ५४-५५।

५. वही : प० ४४-४५।

६. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४।

७. पूना ओरियण्टलिस्ट : खण्ड १, उपखण्ड २, पृ० ४०।

८. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १३, पृ० ८३।

पाल थे। दण्डनायकका उल्लेख, कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। भटिण्डा,[1] पाली[2] तथा बाली[3] शिलालेखोंमें दण्डनायक वजयलदेव (दण्ड श्रीवजयलदेव, दण्डनायक श्रीवैजाक)का उल्लेख हुआ है। इस बातकी अधिक सम्भावना है कि दण्डनायक वजयलदेव चौहान राजधानीके प्रशासक थे, क्योंकि यह महत्त्वपूर्ण और साथ ही नवविजित प्रदेश था।

देशरक्षक—डाक्टर हसमुख डी० संकालियाके कथनानुसार देशरक्षक सम्भवतः आधुनिक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टका पद था।[4] यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयमें 'दण्डपाशिक' नामके एक अधिकारीका उल्लेख किया है, जिसका कर्त्तव्य जाँच-पड़ताल करना बताया गया है।[5] जो हो, ऐसे सुसंघटित शासनमें पुलिस अधिकारीके विद्यमान होनेमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, यह तो निश्चित ही है। फलस्वरूप इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि देशरक्षकका पद तथा कर्त्तव्य उसीके समान रहा होगा।

महामण्डलेश्वर—मण्डलका प्रशासक महामण्डलेश्वर कहा जाता था। जयसिंहके शासनकालमें दधिपद्रमण्डलके महामण्डलेश्वर वपनदेव थे।[6] भीम द्वितीयके कालमें सोमसिंहदेव और वयजलदेव क्रमशः अर्बुद[7] (आबू) तथा नर्वदातट मण्डलोंके महामण्डलेश्वर थे। सारंगदेवके शासनकालमें सौराष्ट्र मण्डलकी राजधानी वयनस्थली (जूनागढ़के निकट वनथली)के महा-

---

१. आर्कैयॉ० सर्वे० इण्डिया वे० स० : १९०७-८, पृ० ४४-४५।

२. 'श्रीनड्डुले दण्ड श्रीवयजलदेव प्रभृति....' वही : पृ० ५४-५५

३. 'महानड्डुले भुज्यमान महाप्रवणं दण्डनायक श्रीवैजाकः' वही : पृ० ५१-५२।

४. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

५. मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क, पृ० ७८।

६. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १०, पृ० १५९।

७. इपि० इण्डि : खण्ड ८, पृ० २१९।

मण्डलेश्वर विजयानन्द थे।[१] यह हम पहले देख चुके हैं कि राजसभामें राजा के पार्श्वमें महामण्डलेश्वर तथा सामन्त उपस्थित रहते थे।[२] महामण्डलेश्वर की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार-द्वारा होती थी और साधारणतः राजवंशके ही किसी व्यक्तिको उक्त पदपर नियुक्त किया जाता था। वह मण्डलका सर्वोच्च प्रशासक तथा कार्याध्यक्ष होता था। विक्रम संवत् १२०२ (सन् ११४५ ईस्वी) के दोहाद प्रस्तर लेखमें भी 'महामण्डलेश्वर'का उल्लेख आया है। इसमें कहा गया है कि महामण्डलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शंकरसिंह महान् पदको प्राप्त कर सके। अनेक विद्वानोंका मत है कि यद्यपि इसमें शासन करनेवाले राजाका स्पष्ट नाम नहीं दिया गया है, तथापि यह कुमारपालके शासनकालका ही है।[३]

अधिष्ठानक—राज्यके महत्त्वपूर्ण न्याय विभागका विचारक अधिष्ठानक कहा जाता था।

सान्धिविग्रहिक—राजनीतिक दूत थे, जिनका सम्बन्ध शान्ति और युद्धसे था। इनका महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य था—केन्द्रीय सरकारको पर-राष्ट्रीय परिस्थितियोंसे अवगत रखना। कुमारपालके शासनकालके किराडू शिला-लेखमें सान्धिविग्रहिककी भी चर्चा हुई है। इसमें कहा गया है कि यह आदेश राजा कुमारपालके हस्ताक्षरसे प्रसारित हुआ तथा सान्धिविग्रहिक खेलादित्यने इसे लिखा था।[४]

विषयिक—मण्डलसे छोटे किन्तु ग्रामोंके समूहका सर्वोच्च शासक विषयिक होता था। यह सबसे बड़ा प्रादेशिक क्षेत्र होता था, जिसे आधुनिक कालमें प्रान्त कहा जा सकता है। प्रत्येक विषय अथवा पाठकके

---

१. पूना ओरियण्टलिस्ट : खण्ड ३, पृ० २८।

२. रासमाला : खण्ड १, पृ० २३७।

३. ध्रुव : इण्डि० एण्टी० : खण्ड १०, पृ० १६०।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४, सूची संख्या २८७।

प्रशासनके लिए यह अधिकारी नियुक्त होता था तथा अपने उच्च अधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि वधिपाठकके महामण्डलेश्वर वयजलदेवके शासनकालमें महामण्डलेश्वर राणा सामन्तसिंह अमात्य नागडके अधीन थे।[1] वमनस्थलीके महत्तर शोयनदेवके तत्कालीन उच्च अधिकारी सौराष्ट्रके महामण्डलेश्वर सोमराज थे।[2]

पट्टाकिल—यह गाँवकी मालगुजारी एकत्र करनेवाला अधिकारी था।[3] आधुनिक पाटिल अथवा पटेल इसी शब्दसे बने हैं। कोंकणके शीलहारोंके शिलालेखोंमें पट्टालिक शब्द व्यवहृत हुआ है।[4] पट्टाकिल ग्रामका उत्तरदायी अधिकारी था और उसका मुख्य कर्त्तव्य था मालगुजारी एकत्र कराना। प्रान्तीय सरकारके माध्यमसे उसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारसे भी था।

दूतक तथा महाक्षपटलिक—ये क्रमशः राजदूत तथा अभिलेखपाल थे। महाक्षपटलिक राज्यका बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। राज्यके समस्त अभिलेख उसीके अधीन रहते थे। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे हमें विदित होता है कि यह विभाग राज्यमें बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा था और इसके अन्तर्गत विशद पद्धति प्रचलित थी।[5]

राणक तथा ठाकुर—ये भी राज्यके दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। ये दो उपाधियाँ ऐसी थीं, जो राष्ट्र अथवा राज्यके प्रति की गयी सेवाओंके विचारसे किसी व्यक्तिको प्रदान की जाती थीं। 'राणक'का केवल गुजरातमें ही प्रयोग नहीं पाया जाता अपितु अन्य स्थानोंमें भी। सम्भवतः यह

---

१. इण्डि० ऐण्टी० : खण्ड ९, पृ० १५१।

२. वही : खण्ड १८, पृ० १२३।

३. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड २३, पृ० २७४।

५. अर्थशास्त्र : अध्याय २, श्लोक ७।

राजपूत उपाधि 'राणा'का पूर्वरूप है।[1] ठाकुर भी राज्यके उच्च अधिकारी थे। कुमारपालके शासनकालमें ठाकुर खेलादित्य सान्धिविग्रहिकका कार्य सम्पन्न कर रहे थे।[2] कुमारपालके शिलालेखोंमें दूतक,[3] राणा तथा[4] ठाकुर[5] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों, दानलेखों, अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्त्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-संचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खण्डोंमें विभाजित था, जिसे प्रान्त या प्रदेशकी संज्ञा दी जा सकती है।

मण्डल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खण्ड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रदेशसे की जा सकती है। कहीं लाट और सौराष्ट्रको देश कहा

---

१. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

२. '...सान्धिविग्रहिक ठा० खेलादित्येन लि....' किरादू शिलालेख।

३. '...दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्ष्यगुगुण'... : इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४१, पृ० २०२-३।

४. '....वोरिपद्यके राणा लखमण राजे..." इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४७-४८।

५. 'स्वति सोनाणाग्रामे ठा० अणसीहुस्य...' : वही।

गया है और कहीं गुर्जर मण्डल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमण्डलका प्रयोग हुआ हो। मण्डलका प्रशासक महामण्डलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार-द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अङ्कित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९९ तथा १२२९ के मध्यमें की थी। उसने आभीरोंके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोंको दण्डनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्त्व-विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम संवत् १२००के बाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योंसे सदा लड़ते रहते थे। अन्तमें चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंहने चौहानोंको पराजित किया। बालीमें जयसिंहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुल्यका नया प्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजलदेव-द्वारा प्रशासित था। ऐसा प्रतीत होता है कि चौहानोंने अपने अधिपति चौलुक्योंको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडसे उन्हें हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नये सेनापति वयजलदेवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामण्डलेश्वरोंकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थे, जिनकी नियुक्ति वे स्वयं करते थे, किन्तु उनकी स्वीकृति केन्द्रसे लेनी पड़ती थी। महामण्डलेश्वरोंको पुरस्कृत और दण्डित करनेका भी अधिकार था। इसकी

---

१. 'श्री गूमदेवो बली यत्खड्गाहतभीतिकम्पतरलैराभीरवीरैः' पूना ओरियण्टलिस्ट: खण्ड १, उपखण्ड २, पृ० ३९।

२. '.....तस्मिन् काले प्रवर्त्तमाने श्रीनड्डूले दण्ड श्रीवयजलदेव प्रभृति पंचकुलप्रतिपत्तौ.....'—आर्कैय० सर्वे० इण्डिया वे० स०: १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा 'महानड्डले भुज्यमानमहाप्रवणदण्डनायक श्रीवैजाकः'—भट्टूंड शिलालेख।

पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसमें कहा गया है कि महामण्डलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शंकरसिंहने उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मण्डलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई विषय तथा पाठक थे। विषय ग्रामोंका समूह था तो पाठक बड़ा गाँव था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनोंमें कोई विशेष भिन्नता नहीं मानी जाती थी। एक स्थानमें गाम्भूत विषयके नामसे सम्बोधित किया गया है तो दूसरे स्थानमें उसे पाठक कहा गया है।[1] प्रत्येक विषय और पाठक एक पृथक् अधिकारीके अधीन था। यह अधिकारी अपने उच्च पदाधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। कुमारपालके शिलालेखोंमें इन प्रादेशिक इकाइयोंका नामोल्लेख हुआ है। विक्रम संवत् १२०९के पाली शिलालेखमें पल्लिका विषय (श्रीमत्पल्लिकाविषये)की चर्चा आयी है जहाँ चामुण्डराज शासन कर रहे थे। यही प्राचीन पल्लिका नगर आधुनिक पाली है। इसी प्रकार ग्राम भी इस समय शासकीय इकाई था। केल्हणके नडलाई शिलालेखसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०२३में चौलुक्यराज कुमारपालके शासनकालमें जब केल्हण नाडुल्यके तथा राणा लक्ष्मण वोदिपद्यकके शासक थे, उस समय सोनाणाग्रामके ठाकुर अर्णसिंह थे।[2] आहार, द्रांगा, मण्डली तथा स्थली आदि शासकीय इकाइयोंका चौलुक्य शासनमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभी अभिलेखोंमें इनको इतनी अधिक चर्चा आयी है कि चौलुक्योंके समय इनका

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ६, पृ० १९६-८ तथा (२) वी० ओ० जे० वी०, २००। प्रथममें गाम्भूतको 'पाठक' कहा गया और दूसरेमें 'विषय'।

२. 'श्रीकुँवरपालदेव विजय राज्ये श्रीनाडुल्य पुरात् श्रीकेल्हणः राजे वोरिपद्यके राणा लखमण राजे स्वतिसोनणाग्रामे ठा अणसी हुस्य....' इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४७-४८।

उल्लेख न होना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके दो कारण सम्भव हैं—एक तो काठियावाड़के अनेकानेक स्थानोंका अभी तक उत्खनन नहीं हुआ है और दूसरा यह कि सम्भवतः ये मैत्रिकोंके बाद विलीन[1] हो गयी हों।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारका सम्बन्ध

चौलुक्योंकी सरकारका केन्द्रीयकरण अत्यन्त सुदृढ़ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकारका शासनतन्त्र पृथक्-पृथक् था तथापि प्रान्त, केन्द्रीय सरकारकी नीतिका ही अनुगमन करता था। उच्च प्रान्तीय अधिकारी विशेषतः दण्डपाल तो केन्द्र-द्वारा ही नियुक्त होता था। गाला शिलालेखमें यह बात स्पष्ट रूपसे अंकित है कि राजधानी अणहिलपाटनमें महामात्य महादेव समस्त राजकार्यका संचालन करते थे। इसीके साथ उन सभी उच्चाधिकारियोंके नामोंका भी उल्लेख हुआ है, जिनकी नियुक्ति पहले महामात्य अम्बप्रसाद तथा चहड़देवने अपने शासनकालमें काठियावाड़के उस प्रदेशमें की थी जहाँ गाला स्थित है।[2] इससे स्पष्ट है कि प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकारके प्रति उत्तरदायी थी।

कभी-कभी राजा स्वयं आज्ञा प्रचारित करता था और उसको जनता से कार्यान्वित कराना अधिकारियोंका कर्त्तव्य होता था। विक्रम संवत्

---

१. आर्कियॉलॉजी ऑव गुजरात : पृ० २०२।

२. 'महामात्य श्रीमहादेव : (वे) इत्येतस्मिन् काले प्रवर्तमाने···· कुमारपाल पर ? तड़ाग कर्म्मस्थाने महामात्य श्रीअम्बप्रसाद प्रतिबद्ध मेह० सजिग। महाक्ष० श्रीदेऊयप्रतिबध(द्ध) पारे० धवल। महाक्ष० श्रीकल्लनप्रसाद प्रतिबध(द्ध) द्वि पारे० बाधूय। महामात्य श्रीचाहडदेव प्रतिबध(द्ध) त्रि ? प्रता····' पूना ओरियण्टलिस्ट : खण्ड १, उपखण्ड २, पृ० ४०।

१२०९में कुमारपालने कतिपय विशेष दिनोंको पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लङ्घन करनेवाले राजकीय परिवारके सदस्योंके लिए भी अर्थदण्डकी व्यवस्था थी और अन्य साधारण लोगोंके लिए मृत्युदण्ड नियत था। यह आज्ञा कुमारपालके हस्ताक्षरसे स्वीकृत और प्रचारित की गयी थी।[1]

अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारकी एक विशेष स्थिति ध्यान देने योग्य है। साधारणतः होता यह था कि विजयी राजाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लेनेपर विजित प्रदेश उसके मूल शासकको पुनः सौंप दिया जाता था। जबतक अधीनस्थ राजा विश्वस्त बना रहता था, यह स्थिति रहती थी। इससे विपरीत स्थिति होनेपर राज्य ज़ब्त कर लिया जाता था। कुमारपालके क़िराडू शिलालेखमें उस घटनाका उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि विक्रम संवत् ११९८में सिद्धराज जयसिंहकी अनुकम्पासे सोमेश्वरने सिन्धुराजपुर वापस प्राप्त कर लिया था।[2] विक्रम संवत् १२०५में कुमारपालकी कृपादृष्टिसे उसने अपने राज्यको और सुदृढ़ बनाया। इन कथनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि दन्दूकने भीम प्रथमसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे किन्तु प्रभुसत्ता और अधीनस्थमें पुनः विग्रहकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि किराडू प्रदेश गुर्जरराज-द्वारा हस्तगत कर लिये गये। बादमें उदयराज तथा उसके पुत्र सोमेश्वरने सिद्धराजको युद्धमें सहायता प्रदान कर प्रसन्न कर लिया था। फलस्वरूप उसका राज्य लौटा दिया गया था। सोमेश्वरने किरातपुरमें दीर्घकाल तक शासन किया। यही किरातपुर आधुनिक किराडू है। विक्रम संवत् १२०९के किराडू शिलालेखसे ज्ञात होता है कि किरातकूप चौहान अलहणदेवके अधिकारमें कुमारपालकी कृपासे था, किन्तु शिलालेखमें इस बातका भी

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४।

२. इण्डि० एण्टी : खण्ड ६१, पृ० १३५ सूची संख्या ३१२।

उल्लेख है कि यह परमार वंशसे अधिकारमें आया था।[1]

स्थानीय स्वायत्त शासन

भारतमें अनेकानेक धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्तियाँ हुईं, किन्तु इनके होते हुए भी ग्रामोंकी स्वायत्तशासन करनेवाली सत्तापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भारतमें अंगरेज़ोंके आगमनके पूर्व तक ग्राम-पंचायतों और ग्राम-संघोंका अस्तित्व था। चौलुक्योंके शासनकालमें भी 'देश' ग्रामोंमें विभाजित था। ग्रामीण, कौटुम्बिक कहलाते थे और ग्रामका मुखिया पट्टाकिल (पटेल) कहलाता था।[2] केन्द्रीय सरकारके संघटनमें हम देख चुके हैं कि पट्टाकिल मालगुज़ारी एकत्र करनेवाला राज्याधिकारी था।[3] कोंकणके शीलहारोंके शिलालेखोंमें पट्टाकिलका, जो बादमें पटेल हो गया, उल्लेख हुआ है।[4] यद्यपि वह ग्रामका मुखिया था और उसका मुख्य कार्य मालगुज़ारी एकत्र करना था तथापि विभिन्न कार्योंके सम्पादनमें उसे ग्रामसभासे अवश्य सहायता मिलती होगी। ग्रामशासन यद्यपि स्वतन्त्र तथा स्वायत्त था तथापि कुछ-न-कुछ अंशोंमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे वह केन्द्रके प्रति भी उत्तरदायी था।

नगरोंमें बड़े-बड़े व्यवसायी कुबेर, महत्तर वणिज, महाजन तथा वणिकोंकी श्रेणियाँ और संघ थे। कुबेर नगरश्रेष्ठी कहा जाता था। सरकारपर इसका अत्यधिक प्रभाव था। राजधानी अणहिलवाड़ाके वणिक् बहुत सम्पन्न थे। वहाँ अनेक लक्षाधिपति थे और कोटीश्वरोंके भव्य भवनोंपर बड़ी-बड़ी पताकाएँ और घण्टे लटकते रहते थे। उनका वैभव, राजकीय वैभवके समान प्रतीत होता था। कुमारपाल नगरश्रेष्ठीकी चर्चा बहुत आदरपूर्वक करता

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४३।

२. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३१।

३. आर्क्यॉलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड २३, पृ० २७४।

है,[1] और उसकी मृत्युका समाचार सुनकर शोकग्रस्त होता है।[2] चौलुक्य राजाओंपर उद्योगपतिवर्गका कैसा प्रभाव था, इससे स्पष्ट हो जाता है। राजधानी अणहिलवाड़ामें वणिज श्रेणी अथवा संघ स्वायत्त शासनसे परिचालित होते थे और नगरपालिकाके शासनमें भी सहयोग प्रदान करते थे, इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिए अनेक कारण हैं।

आर्थिक व्यवस्था पद्धति

आर्थिक व्यवस्थाका विभाग राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग था। यह विदित था कि अर्थसे ही सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है। यही सभी धर्मोंका भी साधन है।[3] रामायणमें लंकाकाण्डमें लक्ष्मणने रामसे जो कथन व्यक्त किया है, उससे धर्म तथा अर्थका महत्त्व सम्यक्रूपेण स्पष्ट हो जाता है।[4] वास्तवमें राष्ट्रको भौतिक उन्नतिके लिए अर्थ अनिवार्य है। वैदिककालसे ही करका संग्रह राजाके कर्त्तव्यके अन्तर्गत समझा जाता रहा है।[5]

---

१. निजविभवनिर्जितामरपुरीकमेते वयं सहानेन
यन्नगरमधिवसामः कथं न जानीम तं (स्तं) नाम।
—मोहराजपराजय : अङ्क ३, पृ० ५१।

२. कष्टं भोः कष्टम्। मन्ये च तद्गृहादेवायमतीव करुणो रोदनध्वनिरुद्गमत्। वही।

३. वनपर्व : ३३-४८।

४. अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः॥
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥
—वाल्मीकि रामायण।

५. 'इयं ते राट् कृषिः त्वा क्षेमत्वा कोषत्वा।'—शतपथ ब्राह्मण ५, २, २५।

यह परम्परा समयानुसार और भी विकसित हुई होगी और इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं कि चौलुक्योंने भी इस व्यवस्था और विभागकी ओर समुचित ध्यान अवश्य दिया था।

भूमि ही आयका सबसे महत्त्वपूर्ण साधन थी। हिन्दू समाजके इतिहासमें भूमिका प्रश्न सभीके मौलिक हित और स्वार्थका प्रश्न था। चौलुक्योंके समकालीन लेखकों तथा ग्रन्थकारोंने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है और सम्भवतः इसीलिए कि यह तो समस्त संसारको विदित ही था। प्रसंगोंसे हमें ज्ञात होता है कि उपजमें राजाका भाग होता था। कभी राजा अपना यह भाग सीधे किसानसे या अपने कर्मचारी-द्वारा जो 'मन्त्री' कहलाते थे, लिया करता था। कभी यह भी होता था कि किसानसे ग्रामका मुखिया अन्नका हिस्सा ले लेता था और राजा ग्रामके इन शासकों-द्वारा अपना अंश प्राप्त करता था।

अवर्षणके फलस्वरूप राजाका अंश किसान न दे पाता था और उसपर राजाका हिस्सा देनेके लिए दबाव डाला जाता था। किसान हठपूर्वक सिद्धान्तकी दुहाई देता और असहाय बालकके समान अपना दुःख प्रकट करता। दोनों पक्षोंमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं और एक न्यायालयमें अन्तिम समझौता होता। यह न्यायालय ठीक वैसा ही होता था, जैसा न्यायालय आज भी स्थानीय नियमोंके अनुसार देशके विभिन्न भागोंमें ऐसे प्रश्नोंका निर्णय किया करता है।[१] इस प्रकार आयका बहुत बड़ा भाग भूमिसे प्राप्त होता था। इसमें भूमिकी उपजका एक निश्चित अंश द्रव्य या अन्नरूपमें देनेका सिद्धान्त नियत रहता था। अन्नरूपमें ही उक्त भाग देना अधिक अच्छा माना जाता था।[२] राजाको उपजका छठाँ हिस्सा करके रूपमें दिया जाता था। इसीलिए राजाको 'षड्भागभृत् राजा',

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१-२३२।

२. हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटय़ूशन : अध्याय ४, पृ० १६३।

'षड्भागभाक्' और षडंशवृत्ति कहा जाता था। इस प्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि राजाका हिस्सा भूमिकी उपजका षष्ठ भाग नियत था।

भूमिका विशाल भाग राज्यके अधिकारमें था। यह इस बातसे भी स्पष्ट है कि राजाओंने बहुत-सी भूमि दान दी थी। मुख्यतः राजाओंने धार्मिक व्यक्तियों अथवा मन्दिरोंको उक्त भूमिखण्डोंका दान दिया था। इस प्रकारके अनेक उदाहरण अभिलिखित हैं। उदाहरणार्थ सिद्धपुर तथा सिहोर ग्राम ब्राह्मणों और जैन आचार्योंको राजाकी ओरसे दान दिये गये थे। राजा-द्वारा इन भूमिखण्डोंके पृथकीकरणको 'ग्रास' कहा गया है। यह शब्द तत्कालीन धार्मिक दानलेखोंमें साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। राजपरिवारके लोगोंको भी भूमि या जागीरें मिला करती थीं। ऐसे लोगोंमें देत्युली तथा बघेलके नाम उल्लेख्य हैं। दयालुताके सम्राट् कुमारपाल-के सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि उन्होंने संकटके समय अमूल्य सहायता प्रदान करनेवाले अलिग कुम्हारको सात-सौ गाँव लिखकर दान कर दिये थे।[1]

भूमिसे आयके अतिरिक्त अणहिलपाटनके राजाको व्यापारसे भी पर्याप्त मोटी रक़मकी आय होती थी। राज्यसे ले जाये जानेवाले सभी मालोंपर निकासी कर तथा 'दान' लिया जाता था।[2] पोत, समुद्र-व्यवसायी तथा समुद्री लुटेरोंका भी उल्लेख आया है। व्यवसायियों तथा उद्योगपतियोंको वणिज, महत्तर वणिज और महाजन कहा जाता

---

१. तदनु चौलुक्यराज्ञा कृतज्ञचक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्त-शती ग्राममिता विचित्रा चित्रकूट पट्टिका ददे। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

२. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३५।

था।[1] यहाँके उद्योगपति अत्यधिक सम्पन्न थे। जिस व्यवसायीके पास एक करोड़की सम्पत्ति एकत्र हो जाती थी उसे कोटयधीशकी पताका फहरानेका गौरव प्रदान किया जाता था। योगराजके शासनकालमें, एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़े और व्यापारके सामानोंसे लदा जहाज़ सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहपर बहकर आ लगा था। सिद्धराजके राज्य-कालमें समुद्रसे व्यापार करनेवाले सांयात्रिक अपना स्वर्ण, समुद्री डाकुओंके भयसे गाँठोंमें छिपाकर ले जाते थे। अणहिलपाटनके राजाके अधिकारमें उत्तरी कोंकण तथा समस्त गुजरातके समुद्री स्थान भी थे। स्तम्भतीर्थ तथा भृगुपुर क्रमशः सूरत तथा गुंडावाके बन्दरगाह हैं। सूर्यपुर सम्भवतः सूरत है तथा गुंडावा गुणदेवी है। देव्य, द्वारका, देवपाटन, मोवा, गोपनाथ आदि बन्दरगाह सौराष्ट्रके तटपर स्थित हैं।[2] स्पष्टतः राजाको भारी पैमाने-पर होनेवाले इस उद्योगसे, राजकीय कोशमें पर्याप्त अच्छी धनराशि मिल जाती थी। अवश्य ही उद्योगके लिए उपयुक्त इन प्रसिद्ध बन्दरगाहोंसे भी राजकोशमें यथेष्ट परिमाणमें धन प्राप्त होता था।

राजकीय आयका इस समय एक और भी महत्त्वपूर्ण साधन था। वह यह था कि उत्तराधिकारी न छोड़नेवाले निःसन्तान लोगोंकी मृत्युके बाद उनकी समस्त सम्पत्ति राज्य हस्तगत कर लेता था। ऐसे लोगोंके घरपर अधिकार कर चुकने तथा एक पंचकुलकी (समिति) नियुक्तिके पश्चात् राज्याधिकारी सभी वस्तुएँ जब उठा ले जाते थे, तब कहीं शव अन्तिम क्रियाके निमित्त ले जाया जा सकता था। इस प्रकारकी घटनाका पता, कुमारपालके समसामयिक यशपालके नाटक मोहराजपराजयसे लगता है। इसमें कहा गया है कि राजाके पास चार उद्योगपति इस आशयका समाचार लेकर पहुँचे कि राजधानीका कुबेर नामका एक लक्षाधिपति समुद्र-यात्रामें

---

१. मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५०-७०।

२. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३५।

दिवंगत हो गया है, इसलिए राज्याधिकारियोंको भेजकर उसकी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले।[1]

मद्य तथा द्यूत भी राज्यकी आयके साधन थे। राजा तथा प्रजा दोनोंमें द्यूतका अत्यधिक प्रचार था। यह राज्यके नियन्त्रणमें होता था। यशपालने लिखा है कि द्यूत तथा मद्यसे राजकोशमें विशाल धनराशि आती थी।[2] वेश्यावृत्ति भी राज्यके निरीक्षणमें होती थी और यह भी राज्यकी आयका साधन थी।[3] खानें, चरागाह तथा जंगल राज्यकी आयके अतिरिक्त साधन थे, जिनसे अच्छी आमदनी होती थी। राजकोशके विचारसे खानें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आयका साधन थीं।[4] वनोंसे बहुमूल्य इमारती लकड़ियाँ प्राप्त होती थीं। ओषधिके लिए वनस्पति भी यहींसे मिलती थी और हाथी जो युद्धके महत्त्वपूर्ण साधन थे, वनोंसे ही प्राप्त होते थे। आर्थिक दण्ड तथा न्यायालय शुल्क भी आयके साधन थे। असाधारण दिनोंमें सम्पन्न उद्योग-पतियोंसे बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंटादिकी पद्धति भी ग्रहण की जाती थी। फोर्ब्स ने लिखा है तीर्थयात्रियोंसे 'कुट' नामक कर भी लिया जाता था।[5] इन विभिन्न साधनोंसे राजकोशमें विशाल धनराशि एकत्र हो जाती थी, इसमें

---

१. वणिजः—'देव ! कुबेरस्वामी निष्पुत्र इति तल्लक्ष्मीर्नरेन्द्र-गृहानुपतिष्ठते। तदादिश्यतामध्यक्षः कोऽपि येन तत्परिगृहीते गृह-सर्वस्वे करोति महाजनस्तदौर्ध्वदेहकानि'।—मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५२।

२. '···ननु वयं राजकुले द्रव्यं पूरयामः। देव ! वयं द्यूतं जांगलको मद्यशेखरो राजकुले प्रभूतं द्रव्यं पूरयामः।' वही : चतुर्थ अंक, पृ० १०९–११०।

३. 'वेश्याव्यसनं तु बराकमुपेक्षणयीम्'। : वही।

४. 'आकरो प्रभवकोषः' : अर्थशास्त्र।

५. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

सन्देह नहीं।

न्याय विभाग

देशके शासनमें न्याय विभाग अत्यन्त आवश्यक विभाग था। दिनमें राजा मुक़दमे सुना करता था। न्यायालयके द्वारपर सशस्त्र रक्षक रहते थे जो अधिकारी व्यक्तिको ही प्रवेश करने देते और अवांछितोंको द्वारपर ही रोक लेते थे। राजाके पार्श्वमें युवराज रहता और चतुर्दिक् महामण्डलेश्वर तथा सामन्त। मन्त्रिराज या प्रधान भी अपने विभागके अधिकारियोंसहित उपस्थित रहा करते थे। ये विचारपूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते रहते थे और प्रस्तुत रहते थे, पूर्वमें किये गये लिखित निर्णयोंको लेकर, जिससे पहले दी हुई आज्ञा अथवा आदेशकी अमान्यता न हो।[1] रासमालामें फोर्ब्सने राजाके न्याय-सम्बन्धी कार्योंका जो उक्त उल्लेख किया है, उससे स्पष्ट है कि राजा न्याय-सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य मन्त्रियोंकी सहायतासे करता था। कुमारपालप्रतिबोधमें भी राजाके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी चर्चा है। इसमें कहा गया है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमें (लगभग ३ बजे) राजा अपने दरबारमें सिंहासनपर आसीन हो जाता था। इसी समय वह शासनकार्य करता और जनतासे पुनर्वाद सुनकर उनपर अपना निर्णय सुनाता।[2]

कुमारपालके जीवनचरित्र लिखनेवाले विद्वानोंका कथन है कि राजधानी अणहिलपुरमें राजा स्वयं न्याय करता था। किन्तु इस राजकीय

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

२. तो राया वुहवग्गं विसज्जिअं दिवस चरम जामम्मि
अत्थाणी मण्डव मंडणम्मि सिंहासने ठाइ
सामन्त मंति मंडलिय सेट्ठियमुहाण दंसणं देइ
बिन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तहा पडीयारं।
—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४४३।

सर्वोच्च न्यायालयके अतिरिक्त साधारण अभियोगों तथा मामलोंपर विचार करनेके लिए अन्य साधारण न्यायालय भी अवश्य रहे होंगे। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिष्ठानक विचारपति था और उसका कर्त्तव्य न्यायविभागसे सम्बद्ध था। ये न्यायालय सम्भवतः दो प्रकारके थे। एक दीवानी और दूसरा सैनिक। अपराधियोंका पता लगानेके लिए गुप्तचरोंकी नियुक्ति होती थी। मोहराजपराजय नाटकमें तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितिका सच्चा चित्राङ्कन हुआ है। इसमें दिखाया गया है कि मन्त्री पुण्डकेतुने जाँच-पड़ताल तथा सूचना प्राप्तिके निमित्त गुप्तचरकी नियुक्ति की थी और राजा उससे द्युतकुमारको पकड़ने की आज्ञा देता है।[1]

नियमों तथा शास्त्रोंसे न्याय किया जाता था। फोर्ब्सने लिखा है कि मन्त्रिराज अथवा प्रधान अपने कर्मचारियोंके साथ, पूर्वकालमें हुए लिखित निर्णयोंको लेकर सदा प्रस्तुत रहते थे। इस बातकी ओर भी सदा ध्यान रखा जाता था कि पूर्व निर्णयोंकी अवहेलना न होने पावे। इससे स्पष्ट है कि विवादोंका निर्णय करनेके लिए लिखित आधिकारिक अधिनियम बने थे। तत्कालीन साहित्यमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंसे भी अपराधोंके दण्डका स्वरूप समझा जा सकता है। कारागार, निर्वासन आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं।[2] मोहराजपराजय नाटकमें कुमारपाल संसारको शृंखलामें बद्ध करनेकी आज्ञा देता है। चौर्य कर्म करनेपर कठिन दण्ड दिया जाता था। गम्भीर अपराधोंके लिए निष्कासनका दण्ड नियत था। उक्त नाटकमें धर्मकुंजर कुमारपालकी आज्ञा पाकर द्यूत और उसकी पत्नी असत्या काण्डली, मद्य, जांगलक, सून तथा मारिकी

---

१. मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क, पृ० ८३।

२. मोहराजपराजय : अङ्क ४, पृ० ८२ 'एनं तावत्कारागारनिगडितं कुरु'।

खोजमें जाता है। ये सभी राजाके धर्म-परिवर्तनकी चर्चा करते हुए अपने निष्कासनकी अफ़वाहका भी उल्लेख करते हैं। धर्मकुंजर इन सभीको पकड़ कर राजाके सम्मुख उपस्थित करता है। सभी अपने-अपने पक्ष-समर्थनका तर्क उपस्थित करते हैं और क्षमा याचना करते हैं। राजा उनकी एक नहीं सुनता है और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[१] मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। शिलालेख इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि राजाज्ञा उल्लंघन करनेपर मृत्युदण्ड दिया जाता था। विक्रम संवत् १२०९ के कुमारपालके किराडू शिलालेखमें कहा गया है कि शिवरात्रिके विशेष दिन जीवहिंसाके अपराधके लिए साधारण लोगोंको मृत्युदण्ड दिया जाता था और राज-परिवारके सदस्योंको अर्थदण्ड देना पड़ता था।[२] इन सभी साधनोंसे निस्स-न्देह कहा जा सकता है कि चौलुक्य राजाओंने न्याय विभागका व्यवस्थित संघटन किया था और उसीके द्वारा प्रजाके निमित्त न्याय कार्य सम्पादित किया जाता था।

जन निर्माण विभाग

जनसेवाका कार्य सरकार अपने जननिर्माण विभाग-द्वारा कार्यान्वित कराती थी। राजा केवल कर ही नहीं वसूलता था अपितु प्रजाका हित-चिन्तन भी उसके कर्त्तव्यका एक अंग था। राज्यको जल तथा स्थल मार्गसे अच्छे यातायातकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। तालाब और कुओंका निर्माण मुख्यतः दो विचारोंसे होता था। एक तो यात्रियोंकी सुख-सुविधाका ध्यान रखकर और दूसरे सिंचाईके विचारसे। मोढ़ेरा, सिहोर तथा अन्य

---

१. वही, पृष्ठ ८३-११०।

२. ''''जा च व्यतिक्रम्य जीवानां वधं कारयति करोति वा सन्याया ''''कोऽपि पापिष्ठतरो जीववधं कुरुते तदा समं चन्द्रमैर्दण्डनीय''''नाहराज्ञि कस्यैको द्रम्मोऽस्ति। स्वहस्तोयं महाराज श्रीअल्हणदेवस्य'''' : इपि० इण्डि०: खण्ड ११, पृष्ठ ४४।

स्थानोंमें जल संचित कर रखे जानेकी व्यवस्था थी। मोढ़ेराके निकट ही लोटेश्वरमें यूनानी क्रास मुद्राकी भाँति चार छोटे कुण्डोंके मध्य एक गोल कुआँ बड़ा ही विचित्र है। जूंजूबारा, मुंजपुर, स्येलामें गोल आकारमें तालाब मिलते हैं। इन तालाबोंमें अनेककी गोलाई सात-सौ गज़ थीं। इनके चतुर्दिक् छोटे-छोटे मन्दिर बने रहते थे और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इनकी संख्या लगभग एक हज़ार थी।[1] प्रायद्वीपके निकट गोमोमें अबतक एक आयताकार तालाब है जिसका ध्वंसावशेष अब वर्गाकारकी तरह है। यह सिद्धराज जयसिंहका बनवाया हुआ कहा जाता है। इसका नाम 'सोनेरिया तालाब' है। जयसिंहकी माता मीनलदेवीके संरक्षणकालमें दो प्रसिद्ध तालाब बने थे। इनमें एक धोलकामें 'मुलाब' है तथा दूसरा वीरक्यम गाँवमें 'मानसूर' है। 'मानसूर' तालाबकी रचना शंखाकारमें हुई है। समरभूमिमें भारतीयोंके रणवाद्य शंखके आकारमें ही इसका निर्माण हुआ है। इसमें जल संचयकी भी वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें चारों ओरके प्रदेशका जल पहले गहरे अष्ट-कोणाकार तालाबमें एकत्र होता था। यहाँ जलका मिश्रित पदार्थ जम जाता था। फिर पानी एक नाली-द्वारा प्रवाहित होकर तालाबमें जाता था।

देशके विभिन्न भागोंमें इस कालके जितने कुएँ मिलते हैं, वे दो प्रकार के हैं। एक तो गोलाईके आकारमें बने हैं और उनमें कई खण्ड तक आवास योग्य स्थान बने हैं। दूसरे प्रकारके कुएँ 'बावली' के रूपमें निर्मित हैं। ये बावलियाँ जिनका संस्कृत रूप 'वापिका' है, अत्यन्त भव्य बनी हुई हैं। कुएँ और तालाबोंका निर्माण-निमित्त प्यासे जीवोंकी तृषा शान्त करना था। साथ ही पारलौकिक दृष्टि भी इसमें सम्मिलित थी। पशु-पक्षियों और चौरासी लाख जीवोंके लिए इनका निर्माण हुआ था।[2] ये

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २४५।

२. वही : पृष्ठ २४७।

कुएँ और तालाब प्रायः उन्हीं स्थलोंमें मिलते हैं जहाँ जलकी कमी रहती थी। उदाहरणार्थ राणिक देवीने पट्टनवारा स्थानको ऐसा जलकी कमीवाला क्षेत्र बताया है, जहाँ पशु-पक्षी जलके अभावमें मरते थे। यातायातके केन्द्रों, नगर-द्वारों, चौराहोंपर भी कुएँ तथा वापिकाका निर्माण होता था। यह कोई असंगत बात नहीं कि आवश्यकता पड़नेपर जलके इन संग्रह स्थलोंसे सिंचाईका भी कार्य होता होगा।

कुमारपालप्रतिबोधसे विदित होता है कि कुमारपालने असहायों तथा जैन-आराधकोंके लिए भोजन-वस्त्र प्रदान करनेके लिए सत्रागारकी स्थापना की थी। इसीके निकट उसने धार्मिक व्यक्तियोंकी साधनाके लिए एक पोषधशालाका भी निर्माण कराया था। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था नेमिनागके पुत्र सेठ अभयकुमार-द्वारा होती थी।[1] इन संस्थाओंके व्यवस्थापनके निमित्त ऐसे योग्य व्यक्तिके निर्वाचन तथा नियुक्तिके कारण कवि सिद्धपालने कुमारपालकी प्रशंसा की थी।[2] इन प्रसंगों और उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि

---

१. अह करावइ राया कण कोट्ठागार धय धरोपेयं
सत्तागारं गरुयाइ भूसियं भोयण सहाए।
तस्सासने रन्ना कारविया वियइ तुंग वरसाला
जिण धम्म हत्थि साला पोसह साला अइ विसाला
तत्थ सिरिमाल कुल नह निसि नाहो नेमिणाग
अंगरुहो अभयकुमारो सेट्ठीकओ अहिट्ठायगो रन्ना।
—कुमारपालप्रतिबोध : अध्याय १३, पृ० २४७।

२. क्षिप्त्वा तोयनिधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो
रेवाऽऽवृत्य सुवर्णमात्मनि दृढं बद्ध्वा सुवर्णाचलः।
क्ष्मामध्ये च धनं निधाय धनदो बिभ्यत्परेभ्यः स्थितः
किं स्यात्तैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत्॥
—वही।

कुमारपालके शासनकालमें निर्धन, असहायोंके लिए जनहित सम्पादन करने-वाला विभाग अवश्य ही विद्यमान रहा होगा। राज्य-द्वारा निर्मित तालाब और कुएँ मानवताकी दृष्टिके साथ ही सिंचाईके निमित्त भी बनवाये जाते थे। सत्रागारोंकी स्थापनासे प्रकट होता है कि राज्यमें लोककल्याणकारी समाजवादी प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। बाढ़, अग्नि, महामारी आदिके प्रकोपों-का सामना करनेके लिए राजकीय व्यवस्था निश्चित रूपसे रही होगी, इसमें सन्देह नहीं।

सेना विभाग

सेना विभाग-द्वारा ही राजा आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करता था। सैनिक विभागकी समुचित व्यवस्थाका महत्त्व उस समय बहुत अधिक हो गया था जब मुसलिम आक्रमणका संकट उत्पन्न हो गया था। सेना प्राचीनकालकी भाँति चतुरङ्गिणी थी। इस बातके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालके शासनकालमें सैनिक संघटन पूर्णरूपेण व्यवस्थित था। उस समय पैदल, घुड़सवार, हाथियों तथा रथ-सेनाके विद्य-मान होनेके प्रमाण मिलते हैं।[1] राजप्रासादके निकट चतुर्दिक् विशाल भव-नोंमें शस्त्रागार था, वहीं हस्तिसेना रहती थी। इन्हीं भवनोंमें अश्वों तथा रथोंके रहने तथा रखनेका भी प्रबन्ध था।[2] सेनामें हाथीका विशेष महत्त्व

---

१. श्रीमान् कुमारपालोऽपि ज्ञात्वेति प्रणिधिव्रजैः। अनीकिनीं निजां दाममानाद्यैः समपूजयत्। गजानां प्रतिमानानि श्रृङ्खलान् मुकुरांस्तथा। अश्वानां कविका वल्गा दाम पल्ययनानि च। रथानां किंकणीजाल चक्राङ्ग-युगशम्बिकाः। योधानां हस्तिका बीरबलयानि च चन्द्रकान्। सुवर्ण-रत्न-माणिक्य-सूचीमुखमयान्यपि। चतुरङ्गेऽपि सैन्येऽसौ भूषणानि ददौ मुदा।

—प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३९।

था। कुमारपालने जिन सैनिक अभियानोंका नेतृत्व स्वयं किया था तथा जिनका नेतृत्व उसके आदेशपर उसके सेनापतियोंने किया था, दोनोंमें हाथी का वर्णन विशेष विवरण-सहित प्राप्त होता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि युद्धमें सफलता या विफलता अत्यधिक अंशोंमें इन्हीं हाथियोंपर निर्भर करती थी।[१] गुजरातके सभी क़िलोंमें राजाकी सेना रहती थी। सीमान्त प्रदेशके कुछ क़िलोंमें सामरिक महत्त्वके कारण सेना रखी जाती थी। इस प्रकारके सैनिक क़िले दुवोई तथा झुनझूवारामें स्थित थे। सेनामें मुख्यतः क्षत्रिय ही रहते थे। किन्तु चौलुक्योंके शासनकालमें एक विशेष एवं विचित्र स्थिति दृष्टिगत होती है। वह यह कि इस समय सेनामें वणिक् भी उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। उदयन तथा उसके पुत्र सेनापतिके पदपर थे। सैनिक विभागमें क्रमिक पद-व्यवस्था थी। सामन्त सैनिक अधिकारी होते थे। कहा जाता है कि सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको सौ घोड़ोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अर्णोके विरुद्ध युद्धमें गया था तो उसकी सेनामें बीस और तीसकी सामन्तशाहीके सैनिक भी उपस्थित थे। इन्हें महाभूत कहा जाता था। एक सहस्रकी सामन्ती रखनेवालेको 'भूतराज' कहते थे। इससे भी उच्च अधिकारी 'छत्रपति' तथा नौबत रखनेवाले कहे जाते थे। इन्हें छत्र और वाद्य व्यवहार करनेकी आज्ञा थी। यह हम देख चुके हैं कि बहुत-से उच्च सैनिक पदाधिकारी वणिक् थे। उदाहरणार्थ कुंजराज तथा सुज्जनके मित्र जाम्ब थे, इनके उत्तराधिकारी मुंजाल जयसिंह सिद्धराजके सेवक थे। कुमारपालके शासनकालमें उदयन तथा उसके पुत्र उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। ऐसे सेनापति जो नियमित सेनाके अन्तर्गत न होकर भी समय-समयपर सैनिक सेवा करते थे, मुख्यतः बाहरी प्रदेशोंके प्रधान होते थे। यथा 'कुलीयन'के

---

१. प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१ तथा प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७९।

राजा तथा राठौर समाजी। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी ऐसी चर्चा आयी है, जिससे प्रकट होता है कि राजपूत निश्चित रूपसे पैदल सेनाके प्रतीक थे।[१] प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता मेरुतुंगका कथन है कि कुमारपालने अपनी सेनाके विभिन्न विभागों तथा अधीनस्थोंको बुलवाया तथा उन्हें मल्लिकार्जुनके विरुद्ध आक्रमणके लिए भेजा।[२] यह तथ्य बताता है कि कुमारपालके शासनकालमें सेनाके सभी विभाग पूर्णतः सुसंघटित थे।

कुमारपालचरित्र,[३] प्रबन्धचिन्तामणि[४] तथा प्रभावकचरित[५] के विवरणों से युद्धभूमिकी गतिविधिका सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। किस प्रकार क़िलेपर आक्रमण किया जाता था, सैनिक-संघटनकी पद्धति क्या थी, राजधानीपर आक्रमणका ढंग, शत्रुका प्रतिरोध, भीषण युद्ध, खाद्य तथा ईंधनकी कमी आदि सभी बातोंका उल्लेख आया है। सेना दण्डाधिपति तथा दण्डनायकके अधीन रहती थी। कभी-कभी राजा, सेनाके सर्वोच्च सेनापतिकी हैसियतसे स्वयं समरभूमिमें सैनिकोंका नेतृत्व करता था।[६] चौलुक्योंके समय प्रायः युद्ध हुआ करते थे, इससे यह समझना अनुचित न होगा कि उनके पास विशाल सेना थी। शत्रु-पक्षकी शक्ति तथा उनकी गतिविधिका पता लगानेके लिए गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। मोहराजपराजयमें कुमारपालके मन्त्रीने धर्मकुञ्जरको इस निमित्त

---

१. रासमाला : अध्याय १२, पृ० २३३-२३४।

२. "तद् विज्ञप्तिसमनन्तरमेव तं नृपं प्रतिप्रयाणाय दलनायकीकृत्य पञ्चाङ्गप्रसादं दत्वा समस्तसामन्तैः समं विससर्ज।"

—प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

३. द्व्याश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ४२-९४।

४. प्रबन्धचिन्ताणि : प्रकाश ४, पृ० ७९-८०।

५. प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१।

६. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७९।

नियुक्त किया।[१]

चौलुक्य राजाओंका महान् उद्देश्य आदर्श राजा विक्रमादित्यका अनुगमन कर आन्तरिक उपद्रवों एवं बाह्य आक्रमणोंसे अपनी प्रजाका रक्षण तथा चतुर्दिक्के राज्योंको अधीनस्थ कर अपनी राज्य-सीमाका विस्तार करना था। ये सैनिक अभियान विजय-यात्राके नामसे सम्बोधित किये जाते थे। कभी-कभी तात्कालिक कारणोंसे भी युद्ध घोषित होते थे। यथा जब गृहरिपुके विरुद्ध धार्मिक युद्ध प्रचारित किया गया अथवा जब यशोवर्मन्के कार्योंसे सिद्धराज क्रोधित हुए थे। इतना होते हुए भी संघर्षका उद्देश्य वही रहता था। यदि शत्रु अपने मुखमें तृण रखकर 'कर' देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता तो विजेता इतने ही से सन्तुष्ट हो जाता था। वे विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकारका कभी प्रयत्न न करते। विजयका अर्थ होता था वार्षिक आयमें-से एक अंशकी प्राप्ति। यह कर जिस प्रकारसे किसानोंसे एकत्र किया जाता था, उसी प्रकार विदेशी राजाओंके प्रदेशोंपर आक्रमण कर प्राप्त किया जाता था। वुणराजके वंशजोंने कच्छ; सोरपेठ, उत्तरी कोंकण, मालवा, झालोर तथा अन्य प्रदेशोंपर अनेकानेक आक्रमण किये किन्तु उन राज्योंके मूल शासकोंका मूलोच्छेद कर उन्हें अपने स्थायी अधिकारमें नहीं किया। मूलराजने गृहरिपुको पराजित किया और लक्ष्यको तलवारके घाट उतार भी दिया किन्तु झारेगा तथा यदुवंशका मूलोच्छेद नहीं किया। इसी प्रकार यशोवर्माको जयसिंह सिद्धराजने युद्धमें पराजित किया था, फिर भी अनेक वर्षोंके पश्चात् मालवाके अर्जुनदेवने पुनः गुजरात पर हमला किया।

सपादलक्षमें (शाकम्भरी—साँभर प्रदेश) अनहिलवाड़ेके शासकोंकी

---

१. एष पुण्यकेतुमन्त्रिणा विपक्षं पुरुषगवेषणार्थं नियुक्तो नित्यमप्रमत्तः परिभ्रमति धर्मकुञ्जरो नाम दाण्डपाशिकः—मोहराजपराजय : अंक ४, पृष्ठ ७८।

विजय-पताका फहराती थी, किन्तु फिर भी अजमेरके नरेश वुणराजके वंशजोंके सदा विरोधी और प्रतियोगी बने रहे। इस वृत्तिका अन्त उसी समय हुआ जब चौहान तथा सोलंकी दोनों ही शक्तियाँ यवन आक्रामकोंसे समान रूपसे पराजित हुईं।[1]

परराष्ट्र नीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध

शक्तिशाली चौलुक्य राजाओंका प्रतिनिधित्व निकटस्थ राज्योंमें उनके कूटनीतिक दूत करते थे। ये दूत सान्धिविग्रहिक कहे जाते थे। इनका कार्य अपनी सरकारको विदेशमें होनेवाले घटनाचक्रोंसे परिचित रखना था। इस कार्यमें उन्हे स्थान-पुरुषों अथवा उसी देशके लोगों या गुप्तचरों से सहायता मिलती थी। वाराणसीके राजाने सिद्धराजके सान्धिविग्रहिकसे अणहिलपुरके मन्दिरों, कुओं तथा तालाबोंके आकार-प्रकारके सम्बन्धमें प्रश्नकर उपालम्भ किया था।[2] एक समय सपादलक्ष देशसे कुमारपाल के राजदरबारमें एक दूत आया। राजाने उससे साँभर-नरेशकी कुशलता और सम्पन्नताके सम्बन्धमें पूछा। इसपर उक्त राजदूतने कहा उनका नाम 'विशवल' संसारको धारण करनेवाला है। उनके सदा सम्पन्न होनेमें भला क्या सन्देह है। कुमारपालके पार्श्वमें विद्वान् कवि कपर्दी मन्त्री उपस्थित था। उसने कहा, 'शल' तथा 'श्यूल' धातुका अर्थ होता है 'शीघ्र जाना'। इस प्रकार विशवल वह है जो चिड़ियाकी भाँति शीघ्र उड़ जाये। इसके बाद जब राजदूत स्वदेश लौटा तो उसने बताया कि राजाकी उपाधिके प्रति कैसा असम्मान प्रकट किया गया। इसपर वहाँके राजाने विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूसरे वर्ष वही दूत विग्रहराजकी ओरसे कुमारपालके दरबारमें उपस्थित हुआ; इस वर्ष पुनः कपर्दीने अर्थ विश्लेषण कर समझाया कि उक्त नामका अर्थ हुआ शब्द

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २३४–२३५।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २४७।

न करनेवाले शिव और ब्रह्मा। वी अर्थात् विषा, ग्र अर्थात् शब्द, हर अर्थात् शिव और अज अर्थात् ब्रह्मा। बादमें कपर्दी-द्वारा अपने नामका हास्य न होने देनेके लिए राजाने 'कविबान्धव' नाम रखा।[1] ये कथाएँ स्पष्ट बताती हैं कि पड़ोसी राज्योंके साथ कुमारपालका कूटनीतिक दौत्य सम्बन्ध भी था। किन्तु इसका आधार साधारणतः प्रभुशक्ति तथा अधीनस्थ राज्योंके मध्य था। अपने समकालीन राजाओंसे कुमारपालका कैसा सम्बन्ध था, इसका विवरण हेमचन्द्रने द्व्याश्रय काव्यमें दिया है।[2]

इस समय मण्डल सिद्धान्तकी राज्यनीति व्यवहारमें नहीं दृष्टिगत होती। प्रत्येक राज्य एक दूसरेसे युद्ध करनेमें व्यस्त था। छोटे-छोटे राज्य उस गृहका दृश्य उपस्थित करते थे, जिन्होंने स्वयं अपने विरुद्ध विनाशक नीतिको ग्रहण कर लिया था। परराष्ट्रनीतिमें न कोई एकताकी भावना थी और न कोई साम्य ही। ये ऐसे अदूरदर्शी थे कि विदेशी आक्रमण तथा अन्तमें विनाशके संकट तकको समझ ही न पाते थे। यदा-कदा सैनिक सन्धि-द्वारा एकताका प्रयत्न होता, किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ-भावनाके कारण वह भी विफल हो जाता। सीमान्त सम्बन्धी नीतिके महत्त्वको वे ठीक-ठीक नहीं समझ सके और इसीके फलस्वरूप विदेशी आक्रामक बिना किसी प्रतिरोधके देशके भीतरी भाग तक पहुँच जाता था। चौलुक्योंकी शक्ति इतनी प्रबल थी, किन्तु फिर भी वे उपयुक्त परराष्ट्रनीति कार्यान्वित न कर सके। सीमान्तपर क़िलोंमें राज्य-सेना रहती थी। पर वह विदेशी आक्रमणोंके रोकनेमें समर्थ नहीं हो सकती थी। सम्भवतः उसकी उपयोगिता पड़ोसी राज्योंपर प्रभुत्वमात्रके लिए समझी जाती थी। शत्रु जब द्वारपर आ जाता था, तब हिन्दू राजा रक्षात्मक तैयारियाँ प्रारम्भ करते थे। इसीलिए आक्रमणात्मक होनेकी अपेक्षा वे प्रायः आक्रमणसे अपनी रक्षामात्र करते थे।

---

१. वही : अध्याय ११, पृ० १९० ।

२. द्व्याश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ७१-९४ ।

हिन्दू राजाओंकी विदेशी नीति इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि यद्यपि सपादलक्षमें अनहिलवाड़ेके राजाकी विजय-पताका फहराती थी फिर भी अजमेरके राजे वुणराजके वंशजोंसे उस समय तक खतरनाक प्रतियोगिता करते रहे जब तक चौहान और सोलंकी दोनों ही यवन आक्रमणसे पराजित तथा पददलित न हो गये। कुमारपालके समयमें चौलुक्योंकी राज्यसीमाका विस्तार अपनी पराकाष्ठाको अवश्य पहुँच गया था, किन्तु उसकी साम्राज्यविषयक नीति, आक्रमणात्मक न होकर रक्षणात्मक थी। शाकम्भरी, मालवा और सुदूर-दक्षिणमें कोंकण-नरेशोंसे उसे बाध्य होकर ही युद्ध करने पड़े; किन्तु इनका उद्देश्य साम्राज्यविस्तार न होकर सिद्धराज जयसिंह-द्वारा छोड़े गये चौलुक्य साम्राज्यकी रक्षा था।

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें सम्यक्‌रूपेण मिलता है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र, मेरुतुंग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओंमें भी इस कालके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झांकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमें विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

जातीयताकी भावना संकुचित होती जा रही थी और वंश-परम्परागत हो रही थी। समाजमें ब्राह्मणोंका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी समान रूपसे उनका आदर करते थे। चौलुक्योंके शासन-कालमें ब्राह्मणोंने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावान्वित किया था। मन्दिरोंके लिए बहुतसे दानपत्र लिखे गये थे, जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमें-से चार ब्राह्मण-परिवार कन्नौज तथा उज्जयिनीके बड़े मठसे आये थे और इन्होंने भी गुजरातमें उसी प्रकारके मठोंकी स्थापना की। इस कालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतकी केन्द्र थी अब महाकाल, पाशुपत, आमर्दक, कापाला मतके शैवोंकी आदिभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात, काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोंके मुख्य पुजारी हो गये।[2]

समाजमें दूसरा स्थान क्षत्रियोंका था जो शासक वर्गके थे और जिनका आदर ब्राह्मणोंके बाद ही दूसरे क्रममें किया जाता था। ये शस्त्र चलाना जानते थे और इनका मुख्य धन्धा युद्ध करना था। राजाके साथ रणभूमिमें राजपूत जातिके योद्धा भी उपस्थित रहते थे। फ़ोर्ब्सने इनका जो वर्णन किया है इससे इनके स्वरूपका सम्यक् बोध हो जाता है। उसने लिखा है कि भाला और तलवार उसकी विशाल भुजाओंमें सुशोभित होता था। समरभूमिमें उसके नेत्र क्रोधसे आरक्त हो जाते थे। उसके कानके लिए रणनिनादका स्वर उतना ही परिचित था जितना राजमहलके सुमधुर वाद्योंकी ध्वनिका। वह शस्त्रधारी व्यक्ति होता था और अभिषिक्त प्रधान भी।[3] राज्यके शासन तथा सैनिक दोनों विभागोंमें ये महत्त्वपूर्ण उच्च पदोंपर नियुक्त होते थे। प्रायः सभी राजपूतघरोंके प्रधान बड़ी-बड़ी

---

१. आर्कि० सर्वे० इण्डिया : वे० स०, १९०७-८, पृ० ५४-५५।

२. आर्कियॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०६।

३. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३०-२३१।

भूमिके स्वामी थे। इनमें-से कुछ सामन्त अथवा सैनिक अधिकारी थे, तो कुछ सेनामें सैनिकके रूपमें भी थे। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी इस प्रकार चर्चा की गयी है जैसे वे निश्चित रूपसे पदाति सेनाके अन्तर्गत हों।[1] इस प्रकार राजपूत भूमिके स्वामी तथा राज्यमें कुलीनतन्त्रके प्रतिनिधि थे। इनका मुख्य कार्य, सेना तथा प्रशासनमें योगदान देना था।

इस समय गुजरातमें वैश्य भी समाजके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते थे। उद्योग और व्यवसाय ही उनका मुख्य धन्धा था। राजधानी अनहिलवाड़के वणिक् बहुत ही सम्पन्न थे। नगरमें अनेकानेक लक्षाधिपति थे और कोटीश्वरोंके भव्य भवनोंपर ऊँची पताकाएँ तथा घण्टे टँगे रहते थे। उनका वैभव पूर्णतः राजकीय वैभवके समान लगता था। उनके पास हाथी, घोड़े थे और उन्होंने सत्रागारोंकी भी व्यवस्था की थी। व्यापारी पोतोंसे वे विदेशी समुद्रमें जाकर व्यापार-द्वारा विशाल धनराशि अर्जित करते थे।[2]

चौथा और अन्तिम वर्ण शूद्रोंका था। ये मुख्यतः खेतीमें लगे थे। धरती माताके इन पुत्रोंकी आवाज़ सरकारमें नहीं थी। सामाजिक ढाँचेमें वे सबसे निम्नतम जातिके माने जाते थे। इसी वर्णके अन्तर्गत उस जातिके लोग भी थे जिनका काम श्रम करना था और जिनका आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न था। एक सुदृढ़ सामाजिक ढाँचेका स्वरूप विलुप्त हो गया था। धन्धेमें परिवर्तन सम्भव था किन्तु इसके लिए जाति परिवर्तनकी आवश्यकता न थी। मुसलिम आक्रमणोंके फलस्वरूप विदेशी तत्त्वोंका आत्मीयकरण त्याग दिया गया था और जातीय भावना अत्यन्त दृढ़ हो गयी थी।

चारों वर्ण अथवा जातियोंका पारस्परिक सम्बन्ध था। ब्राह्मण शिक्षक और प्रचारक थे। क्षत्रिय शासन कार्य और देशकी रक्षा करते थे। वैश्य

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३४।

२. मोहराजपराजय : पृ० १०।

अपने उद्योग एवं व्यवसाय-द्वारा देशको सम्पन्न बनाते थे और शूद्र कृषि तथा अन्य शारीरिक श्रमका कार्य करते थे। इस प्रकार समाजकी भावना अविच्छेद्य और परस्पर सहयोगी संघटनकी भाँति थी, किन्तु इस समय समाजका उक्त आदर्शवादी स्वरूप, व्यवहारमें दृष्टिगत न होता था। अनहिलवाड़ेमें ब्राह्मणों, राजपूतों तथा वैश्योंमें राजनीतिक प्रभुत्वके लिए प्रतियोगिता होती थी। समाजके इस स्वरूपको समझनेके लिए उनके विस्तृत इतिहाससे परिचित होना आवश्यक है।

ब्राह्मणोंकी बस्तियाँ

आधुनिक गुजरातमें ब्राह्मणोंकी विभिन्न जातियोंकी प्रधानताका परिचय शिलालेखों-द्वारा मिलता है। कनौजिया, वडनागरा, तथा सिहोरिया ब्राह्मण प्राचीनकालमें कान्यकुब्ज, आनन्दपुरा तथा सिहोरसे आये थे।[1] एक राष्ट्रकूट अभिलेखसे इस प्रकारके आगमनका निश्चित रूपसे पता लगता है।[2] इसमें मोटाकाको ब्राह्मण-स्थान कहा गया है। इनथोवनका कथन है कि मोटाका ब्राह्मण इस स्थानमें पाये जाते थे। उसका यह भी अनुमान था कि चौदहवीं शताब्दीमें ये गुजरातमें आये।[3] किन्तु राष्ट्रकूटोंके अनेक विवरणोंसे विदित होता है कि 'मोटाका' ब्राह्मण नौवीं शतीमें भी गुजरातमें थे। बहुत सम्भव है कि राष्ट्रकूटोंके अधिकारके दिनोंमें ये दक्षिणसे आये हों। इनथोवनका कथन है कि ये सम्भवत: देशस्थ थे।[4]

---

१. सिहोर (सिंहपुर) ब्राह्मणोंको वल्लभी कालमें संरक्षण प्राप्त हुआ था, किन्तु सिद्धराज जयसिंहने इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें बसाया था। देखिए हेमचन्द्र कृत द्व्याश्रय: सर्ग १५, पृ० २४७।

२. भड़ौंचके ध्रुव तृतीयका दानलेख: इण्डि० एण्टी०: खण्ड १२, पृ० १७९।

३. कास्टस् एण्ड ट्राइब्स ऑव गुजरात: खण्ड १, पृ० २३४।

४. वही।

एक परमार अभिलेखसे नागर ब्राह्मणोंकी प्राचीनता दो शताब्दी पूर्व तक जाती है।[१] इसमें आनन्दपुरके ब्राह्मणोंको नागर कहा गया है। वडनगर प्रशस्तिमें बादमें उक्त स्थानको द्विजमहासना तथा विप्रपुर कहा गया है।[२] मोढ़ ब्राह्मण सर्वप्रथम विभिन्न शासन विभागोंमें काम करते हुए दिखायी पड़ते हैं, विशेषकर ये महाक्षपटलिकके पदपर थे।[३]

मूलराजने ब्राह्मणोंको श्रीस्थलपुर, गाय, स्वर्ण, रत्नादिके हारोंसे युक्त रथोंसहित प्रदान किया था। उसने सिंहपुरकी सुन्दर तथा सम्पन्न नगरी अन्यान्य भेंटों-सहित दस ब्राह्मणोंको दी थी। सिद्धपुर और सिहोरके निकट उसने बहुतसे ब्राह्मणोंको छोटे-छोटे गाँव दिये थे। उसने स्तम्भतीर्थ छह खम्भातियोंको साठ घोड़ों-सहित दिया।[४] औदीच्य ब्राह्मणोंको, उदीच्य (उत्तर) से आये थे। कहा जाता है कि मूलराजने इन्हें उत्तरसे आमन्त्रित कर काठियावाड़ तथा गुजरातमें अनेक ग्राम दिये। इस सम्बन्धमें शिलालेख, दानलेख तथा जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उनसे इसकी विशेष पुष्टि नहीं होती।[५] एक शिलालेखमें 'उदीच्य ब्राह्मण'का उल्लेख आया है।[६] बहुत सम्भव है कि कन्नौज तथा मालवासे आये ब्राह्मण ही औदीच्य

---

१. आनन्दपुरके एक नागर ब्राह्मणको मोहडवासक विषयके दो ग्राम कुम्भरोतक तथा शिहाका, सियाकट-द्वारा दिये गये थे।

—इपि० इण्डि०: खण्ड १९, पृ० २३६।

२. इपि० इण्डि० ; खण्ड १, पृ० २९३--३०५ तथा इण्डि० ऐण्टी० : खण्ड १०, पृ० १६० ।

३. इनथोवन : ओ० सी० १, पृष्ठ २३८।

४. रासमाला : अध्याय ४, पृष्ठ ६४—६५।

५. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृष्ठ २०८।

६. जर्नल ऑव बाम्बे बड़ोदा रॉयल एशियाटिक सोसायटी : १९००, अतिरिक्त अंक, ४९।

कहे जाते रहे हों। शिलालेखादिसे यह नहीं विदित होता कि चौलुक्यों के समय गुजरातमें उत्तरके ब्राह्मण आकर बसे हों।[१]

इन विवरणों तथा प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें बड़ी संख्यामें ब्राह्मणोंको राज-संरक्षण प्राप्त हुआ था। इनकी गतिविधि धार्मिक कृत्यों तक ही सीमित न थी अपितु ये शासन विभागमें भी उत्तरदायी पदोंपर कार्य कर राजाको प्रभावित करते थे।

ब्राह्मणवादका पुनरुदय

यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मणोंको इस प्रकारका राज्य-संरक्षण क्यों प्रदान किया गया था? सभी राजवंशोंके शिलालेखोंमें इस बातका उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणोंको दान देनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उन्हें दानादि देनेका दूसरा कारण था उनको 'पंचमहायज्ञ' सम्पन्न करनेमें सहायता देना। पंचमहायज्ञ दैनिक यज्ञ थे। इसके अन्तर्गत पितृयज्ञ, अग्निहोत्र, आतिथेययज्ञ, बलि और विश्वेदेवा यज्ञ किये जाते थे। त्रैकुटक अभिलेखोंमें ब्राह्मणोंके कार्योंके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है। काटकूरी, गुर्जर तथा अन्य कतिपय चौलुक्य अभिलेखोंमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मणोंको ये दान पंचमहायज्ञोंके लिए प्रदान किये गये थे। तीनके अतिरिक्त सभी राष्ट्रकूट दानलेखोंमें भी उक्त उद्देश्य ही बताये गये हैं। इन तीनोंमें दो तो ब्रह्मदेवोंको बिना किसी उद्देश्य-विशेषके दान दिया गया है। तृतीयमें, जो गोविन्द चतुर्थका है, साधारण यज्ञोंके अतिरिक्त दार्श, पौर्णमास, राजसूय, वाजपेय, अग्निस्तोम यज्ञोंके सम्पन्न करनेका भी उल्लेख मिलता है।[२] गुजरातके अभिलेखोंमें यह प्रथम अवसर है, जब इन

---

१. आर्केयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृष्ठ २०८।

२. इपि० इण्डि० : खण्ड ७, पृष्ठ २६।

वैदिक यज्ञोंका उल्लेख हुआ है।[1]

फ़ोर्ब्सने भी इन यज्ञोंका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मूलराजने पवित्र ब्राह्मण-परिवारोंका स्वागत किया। उत्तरी पर्वतों, तीर्थस्थानों, वनों आदिसे मूलराजने इन्हें आमन्त्रित किया था। ये ऋषि-सन्तान वेदोंमें पारंगत थे। इनमें-से एक-सौ पाँच गंगा-यमुनाके संगम-स्थल[2] से आये थे। च्यवनाश्रमसे सामवेदका पाठ करनेवाले सौ ब्राह्मण, दो-सौ कान्यकुब्जसे तथा सूर्यकी भाँति प्रकाशमान सौ ब्राह्मण वाराणसीसे गये थे। इनके अतिरिक्त दो-सौ ब्राह्मण गंगद्वार तथा एक-सौ नैमिषारण्यसे आये थे। कुरुक्षेत्रसे भी राजाने एक-सौ तैंतीस ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया था। ये ब्राह्मण-समूह जब यज्ञ करते थे तो आकाश यज्ञधूमसे आच्छादित हो जाता था।[3]

ये यज्ञादि प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजरातमें यदि नियमित रूपसे न होते थे तो शान्ति तथा सम्पन्नताके दिनोंमें अवश्य ही किये जाते थे। विशेषतः राजा जब इनके प्रति स्वयं उत्साही रहता था। ऐसी शान्ति तथा सम्पन्नताकी अनुकूल परिस्थिति गुजरातमें उस समय उत्पन्न हुई, जब सिद्धराजने सहस्रलिंग तालाबका निर्माण किया तथा उसके तटपर ब्राह्मण-साहित्य पढ़ने, यज्ञ करने, पुराण पाठ, ज्योतिष और कल्पसूत्रके अध्ययनार्थ मठ एवं शालाओंकी स्थापना की। इस समय निश्चय ही ब्राह्मणोंका प्रभुत्व, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता अत्यधिक थी। यही परम्परा कुमारपालके शासनकालमें भी उस समय तक विद्यमान थी, जबतक वह जैनधर्ममें दीक्षित न हो गया।[4] जैनधर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी राजा ब्राह्मणोंका

१. आर्केयॉलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृष्ठ २०९।

२. प्रयागसे जहाँ गंगा-यमुना मिलती हैं।

३. रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४।

४. वडनगर प्रशस्तिके १९से २९ तक श्लोकोंमें आनन्दपुरके नागर

आदर करता रहा। भावबृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें ब्राह्मणों और उनके यज्ञोंके सम्बन्धमें कुमारपालके भावोंका उल्लेख सम्यक्‌रूपेण हुआ है।[1]

राजनीतिके क्षेत्रमें ब्राह्मण

ब्राह्मण राजाके मन्त्री भी हुआ करते थे। मन्त्रियोंके रूपमें देशके शासनमें उनके भाग लेनेका उल्लेख वडनगर प्रशस्तिमें हुआ है। इसमें कहा गया है कि 'वे राजा तथा राष्ट्रकी रक्षा अपने परामर्श-द्वारा करते थे'।[2] दूतक, महाक्षपटलिक आदिके महत्त्वपूर्ण पदोंपर भी ब्राह्मण कार्य करते थे।[3] फ़ोर्ब्सने लिखा है कि चौलुक्योंकी राजसभामें नयी पीढ़ीके ब्राह्मण थे।[4] विक्रम संवत् १२१३के कुमारपालके नाडोल पत्रलेखमें उसके मन्त्रीका नाम वहड़देव लिखा है। यह सम्भवतः उसके प्रारम्भिक राज्यकालमें उदयनका पुत्र था जो प्रधान सेनापति अर्थात् दण्डाधिपति होनेके साथ ही प्रधान मन्त्री या महामात्य भी था।[5] किन्तु वाली शिलालेखमें महामात्यका नाम महादेव लिखा है, इससे विदित होता है कि उसने पुनः खोया प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। नागर ब्राह्मणों तथा वैश्य वणिकोंमें प्रभुत्व प्राप्तिकी जो पुरानी प्रतियोगिता चली आती रही थी, उसे मन्त्रिमण्डलके इन परिवर्तनोंसे भली प्रकार समझा जा सकता है।[6] देशके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवनको ब्राह्मण अत्यधिक प्रभा-

---

ब्राह्मणोंकी प्रशंसा की गयी है। कुमारपालने इसके चतुर्दिक् एक दीवार बनवा दी थी। इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृ० २९३—३०५।

१. वी० पी० एस० आई० : पृ० १८६, सूची संख्या १३८०।

२. इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृ० २९३।

३. इनथोवेन : ओ० सी०, पृ० २२८-२२९।

४. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

५. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४१, पृ० २०२-३।

६. आर्केयॉलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया : वेस्टर्न सरकिल।

वान्वित करते थे, इसमें सन्देह नहीं ।

वैश्योंका उदय

ब्राह्मणवादकी परम्परा और गुजरातमें इसके विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रचार-प्रसारका श्रेय यदि ब्राह्मणोंको है तो यहाँके वैश्योंकी देन भी कुछ कम नहीं। गुजरातके वैश्यों, वणिकों या वणिजोंने ही मुख्यतः जैनधर्म और संस्कृतिका प्रचार किया। इन्होंने भव्य कलापूर्ण मन्दिरोंका निर्माण कर गुजरातको उन्नत कलाओंसे अलंकृत किया तथा राजनीतिके क्षेत्रमें पदार्पण कर शासनसूत्र हस्तगत करनेमें भी सफलता प्राप्त की। इनमें प्रागवत जो पोरवाड़ तथा मोढ़के नामसे प्रसिद्ध हैं, विशेष उल्लेख्य हैं। देलवारा मन्दिरोंके निर्माणकर्ता वस्तुपाल तथा तेजपालने अपने और अपने सम्बन्धियों-विषयक अनेकानेक अभिलेख अंकित कराये थे। श्वेताम्बर जैनधर्मके स्तम्भ होनेके अतिरिक्त उनके पूर्वज राज्यके योग्य मन्त्री भी हो चुके थे।[१] इसी प्रकारकी मोढ़ोंकी भी परम्परा थो। एक शिलालेखमें कहा गया है कि ये बहुत उच्च और राजाकी प्रशंसाके योग्य माने जाते थे।[२] इनमें तथा पोरवाड़ों दोनोंमें जैन[३] तथा अन्य धर्मावलम्बी[४] होते थे। इस समय वैश्योंकी उपजाति कायस्थोंका भी उल्लेख आया है, जो अभिलेख आदि विशेषकर भूमि-सम्बन्धी दानपत्र लिखा करते थे। उनके इस कार्यसे सम्बन्धके कारण

१. आर्कियॉलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१० ।

२. वही : इसमें खम्भातके सूर्य मन्दिरका उल्लेख है जिसे एक जैनने बनवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मोढ़ और प्रागवत परस्पर सम्बन्धी थे। आबू शिलालेखमें लिखा है कि वस्तुपाल प्रागवतने…जो मोढ़ था उसके लिए बनवाया।

३. वी० पी० एस० आई० : पृ० २२७, सूची संख्या ६३९ ।

४. इपि० इण्डि० : खण्ड ८, पृ० २२९ । श्रीमाली तथा ओसवाल आबू जैन शिलालेखमें अंकित हैं।

ही 'कायस्थ नागरी'का अस्तित्व हुआ और जिसकी प्रसिद्धि डॉक्टर ब्हूलरने की।[1] यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि राज्यके उच्चतम अधिकारियोंमें प्रमुख वणिक् ही थे। यथा वुणराज तथा सुज्जनके जाम्ब, जयसिंह-सिद्धराजके समय मुंजाल और कुमारपालके समय उदयन, उसके पुत्र तथा अन्य लोग।[2]

इस राजनीतिक प्रभावके अतिरिक्त वणिक्-वर्ग ही उद्योगपतियों और व्यवसायियोंका भी वर्ग था। सम्पत्तिके अनुसार वणिकोंकी विभिन्न श्रेणियाँ थीं। इसीके अनुसार वे बनिया, वणिक्, महत्तर वणिज और महाजन कहलाते थे। सबसे अधिक सम्पन्न तथा वैभवशाली उद्योगपति नगरश्रेष्ठि होता था।[3] जैन लक्षाधिपति इस बातकी प्रतिज्ञा करते थे कि वे धन-सम्पत्तिका एक निश्चित भाग ही लेंगे और शेष धार्मिक कार्योंमें व्यय करेंगे। कुबेरने छह-करोड़ स्वर्ण मुद्रा, आठ-सौ तुला चाँदी, आठ तुला बहुमूल्य रत्न, दो-सहस्र अन्नके कुम्भ, दो-सहस्र तेलकी खारी, पचास सहस्र घोड़े, एक-सहस्र हाथी, अस्सी-सहस्र गाय, पाँच-सौ हल, घर, गाड़ी, डिब्बे आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[4] इन जैन उद्योगपतियोंकी शक्ति यहाँतक पहुँच गयी थी कि नगरसेठ तथा दण्डनायक विमल पाटन छोड़कर चले गये थे और चन्द्रावती नामक नगर बसाया था। बहुत-से सम्पन्न उद्योगपति वहाँ गये और जाकर वहीं बस गये। राजधानीकी राजनीतिसे मुक्त होकर उन्होंने पंचायतोंके माध्यमसे कार्य प्रारम्भ किया। उनपर राजधानीका प्रभाव तथा नियन्त्रण केवल नामका था।[5]

---

१. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३३।

३. मोहराजपराजय : अङ्क ३, पृ० ५९।

४. वही : पृ० १०–११।

५. के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व : पृ० ३ तथा ४३।

जैन तथा राजपूतोंमें गहरी प्रतियोगिताकी भावना थी और प्रायः यह संघर्षका रूप धारण कर लेती थी। जैन वणिक् धनी और शक्तिशाली दोनों थे। बादके चौलुक्य राजाओंके सम्मुख यह समस्या रहती थी, कि किस प्रकार धनी, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली जैन श्रावकोंको अनुकूल एवं नियन्त्रित रखा जाये। कर्णदेवके शासनकालमें राजधानीमें जैनोंका प्रभुत्व बढ़ गया था। बहुत-से श्रावक पाटन लौट आये और कर्णदेवकी दुर्बलताका लाभ उठाकर अपनी नीति कार्यान्वित करनेमें सफल हुए। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि राजा तो नाममात्रका राजा है, वास्तविक शक्ति तो उनके हाथमें थी।[१] अभिप्राय यह कि जैन वणिकों तथा नगर-श्रेष्ठियोंका राजनीतिमें प्रभाव दिन-प्रतिदिन अधिक होता जा रहा था और वे एक नयी शक्तिके रूपमें अग्रसर हो रहे थे।

ब्राह्मणोंके पुनरुदय, वैश्योंकी शक्ति, नेतृत्व और उदार भावना, क्षत्रियोंकी सुदृढ़ रक्षात्मक तथा प्रोत्साहनपूर्ण कार्यपद्धति और सन्तुष्ट चतुर्थ वर्णके कर्त्तव्योंके फलस्वरूप मध्यकालीन गुजरात वैभव एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा था।[२]

विवाह-संस्था

विवाहकी संस्था इस समय अच्छी तरहसे संघटित और व्यवस्थित थी। ब्राह्म प्रकारके विवाह साधारणतः होते थे। सगोत्र तथा सपिण्डमें विवाह नहीं होता था। बहुविवाहके बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। आभिजात्य वर्ग अधिकतर एकसे अधिक पत्नियाँ रखता था। इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने तीन रानियोंसे विवाह किया था। प्रभावक-

---

१. के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व : पृष्ठ ३ तथा ४३।

२. आर्कियॉलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १०, पृष्ठ २११।

चरित्रमें उसकी रानीका नाम भोपालादेवी लिखा है।[1] ऐतिहासिक नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपाल और कृपासुन्दरीसे विवाहका वर्णन मिलता है, जो जिनमदनके अनुसार संवत् १२१६ में हुआ था।[2] कुमारपालने मेवाड़ घरानेकी सिसौदिया रानीसे विवाह किया था, इसका भी उल्लेख मिलता है।[3] ब्राह्मणोंके धार्मिक कथाप्रसंगमें भी उक्त विवाहकी चर्चा आयी है।[4] यह कथा इस प्रकार है: जब सिसौदिया रानीने यह सुना कि राजाने प्रतिज्ञा की है कि राजमहलमें प्रवेश करनेके पूर्व उसे हेमाचार्यके मठमें जाकर जैनधर्मकी दीक्षा लेनी होगी, तो रानीने पाटन जाना अस्वीकार कर दिया जबतक उसे इस बातका आश्वासन न दे दिया जाये कि उसे हेमाचार्यके मठमें न जाना होगा। इसपर जब कुमारपालके चारण जयदेवने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया तब रानी पाटन आयी। उसके आगमनके कई दिन बाद हेमाचार्यने राजासे बातें कीं कि सिसौदिया रानी मेरे मठमें नहीं आयीं। इसपर राजाने रानीसे कहा कि उसे अवश्य जाना चाहिए। इधर रानी अस्वस्थ हो गयी। उसकी बीमारीका हाल सुनकर चारणकी पत्नी उसे देखने गयी। रानीकी कहानी सुनकर चारणकी पत्नी उसका वेश परिवर्तन कर चुपचाप अपने घर ले आयी। रातमें चारणोंने नगरकी एक दीवार खोदकर एक छेद बनाया और उसी मार्गसे रानीको घर पहुँचानेके लिए रवाना हुए। जब कुमारपालको इस घटनाका पता लगा तो वह दो

---

१. 'तस्य भोपालदेवीति कलत्रमनुगाऽभवत्'। प्रभावकचरित्र : अध्याय २२, पृष्ठ १९६।

२. कृपासुन्दर्याः संवत् १२१६ मार्गसुदि द्वितीयादिने पाणिं जग्राह श्री कुमारपालमहीपालः श्रीमदर्हद्देवतासमक्षम्। जिनमदन : कुमारपाल प्रबन्ध।

३. रासमाला : अध्याय ११, पृष्ठ १९२–१९३।

४. वही।

हजार घुड़सवारोंके साथ उसकी खोजमें निकला। चारणने रानीसे कहा कि मेरे साथ दो-सौ घुड़सवार हैं। हममें-से कोई भी जबतक जीवित रहेगा, घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं। रानीसे इतना कहकर वह पीछा करनेवालों की ओर मुड़ा, पर रानीका साहस जाता रहा और उसने गाड़ीमें ही आत्महत्या कर ली। उधर युद्ध चल रहा था और पीछा करनेवाले गाड़ीकी ओर आगे बढ़ ही रहे थे कि दासियोंने चिल्लाकर कहा—'लड़ाई बन्द करो। रानी अब नहीं रहीं।' कुमारपाल तथा उसके सैनिक राजधानी लौट गये।

ब्राह्मण तथा जैनधर्मकी इस संघर्षमयी कहानीसे कुमारपालके उस विवाहका पता चलता है जो मेवाड़के घरानेमें हुआ था। इस प्रकार कुमार-पालकी तीन रानियोंका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके जीवनवृत्त-सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थों तथा समसामयिक साहित्यमें उसके इस विवाहका उल्लेख नहीं मिलता और न इस घटनाकी चर्चा ही आयी है। इससे इसकी सत्यता सन्दिग्ध है। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि राज्यारोहणके समय कुमारपालने अपनी रानी भोपालादेवीको पट्टरानी बनाया।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इस कालमें अन्तर्जातीय विवाहके भी उदाहरण मिलते हैं। भीमदेवकी तीन रानियाँ थीं। जिनमें एक वणिक् कन्या वकुलादेवी भी थी।[1] देवप्रसाद और नगरसेठ मुंजालकी बहन हंसाका विवाह जो वणिक् थी, इस प्रकारके विवाहका दूसरा उदाहरण है।[2] इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धपर प्रतिबन्ध न था। स्वयंवरकी कोटिके विवाह भी इस समय होते थे। संयुक्ताके स्वयंवरकी घटना पृथ्वीराज रासोमें अङ्कित है। फ़ोर्ब्स् ने भी 'स्वयंवर

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि: अध्याय ९, पृ० ७७ तथा के० एम० मुन्शी: पाटनका प्रभुत्त्व : पृ० ४२।

२. पाटनका प्रभुत्व : पृ० ४५।

मण्डप'का उल्लेख किया है जिसमें राजकुमारी अपने इच्छित योद्धाको वरमाला पहनाती थी। उसने उक्त सभामण्डपको विवाहका 'प्रकाशमय स्थल' कहा है, जहाँ प्रेमकी देवी अपने देवके पार्श्वमें विराजमान रहती थी।[१]

सामाजिक रीति और रिवाज

यह काल राजपूतोंकी वीरता तथा गौरवके युगका था। समाजका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। चरित्र तथा सम्मानके अभावमें लोग पापके पश्चात्तापपूर्ण जीवनके बदले मृत्युको उत्तम समझते थे। जयदेव चारणका उदाहरण हम देख चुके हैं, जिसने सिसौदिया रानीको ले जाने तथा अपने वचनके पालनमें जान तक दे दी। चारण जयदेवने देखा कि अब उसका वचन भंग हो रहा है और उसका नैतिक पतन हो गया है, इसलिए उसने मृत्यु वरणका निश्चय किया। वह सिद्धपुर चला गया और वहाँसे उसने अपनी जातिके लोगोंको लाल स्याहीसे पत्र लिखा। उसने पत्रमें लिखा कि 'हमारी जातिका सम्मान चला गया, इसलिए जो मेरे साथ चितामें चलनेके इच्छुक हों, वे प्रस्तुत हो जायें।' ईखकी ढेर लगायी गयी और जो सपत्नीक जलना चाहते थे उन्होंने दो और जो अकेले थे उन्होंने एक ईख उठायी। चिताएँ प्रस्तुत की गयीं। चिता और जमूर तैयार किये गये।[२] सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे प्रथम जमूर बनाया गया था। दूसरा पाटनसे थोड़ी दूर (बाणकी दूरी)पर और अन्तिम जमूर नगरके प्रवेश-द्वारपर बनाया गया था। प्रत्येक जमूरपर सोलह-सोलह भाट अपनी पत्नी-सहित जलकर भस्म हो गये। जयदेव चारणकी बहनका एक लड़का कन्नौजमें था। उसे भी एक पत्र लिखा गया था किन्तु उसकी माताने और कोई दूसरा पुत्र न होनेके कारण उसे जाने न दिया।

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

२. फ़ोर्ब्स ने लिखा है कि चिता केवल एक व्यक्तिके जलनेके लिए थी और जमूर एकसे अधिकके लिए।

जमूरपर चारणोंके भस्म हो जानेपर उनके पुरोहितोंने उन भस्मोंको गंगामें प्रवाहित करनेका निश्चय किया। भस्म बैलगाड़ीपर लादी गयी और पुरोहित उसे लेकर कन्नौजकी दिशामें गये। संयोगसे जयदेवका भतीजा कन्नौजमें चुंगी विभागमें था। उसने इस गाड़ीको व्यापारिक वस्तुओंकी गाड़ी समझकर निकासी कर माँगा। इसपर पुरोहितने सारा विवरण बताते हुए कहा कि बैलगाड़ीमें कैसी भस्म लदी है। इसपर भाट अपने परिवारको एकत्र कर पाटन आये। एक स्त्री जिसे कुछ समय पूर्व ही बालक उत्पन्न हुआ था अपना शिशु पुरोहितको सौंप अपने पतिके साथ भस्म हो गयी। अबतक पाटन ज़िलेमें भाट और चारण अपनेको उक्त शिशुका ही वंशज बताते हैं।[1] फ़ोर्ब्स्-द्वारा उल्लिखित उक्त कथाकी पुष्टिका अभाव तथा उसके समर्थनमें अन्य प्रामाणिक सूत्रोंका मौन उसकी सत्यतापर सन्देह उत्पन्न करता है। विशेषकर जब कि इस कालकी धार्मिक सहिष्णुता, भारतके इतिहासमें अभूतपूर्व रही है। इस प्रकारकी धार्मिक संकीर्णताके लिए कुमारपालके राज्यकालमें कोई सम्भावना ही न थी। अतः ऐतिहासिक घटनाके रूपमें और स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमें रानीकी आत्महत्या तथा चारणोंका चितामें भस्म होना सत्य नहीं, अपितु वर्ग-विशेषकी विद्वेष भावनाकी कल्पना मात्र ही प्रतीत होता है।

इस कथाका विश्लेषण करनेपर उस युगके चरित्र-विशेषका परिचय मिलता है। चिता और जमूरपर लोग अपना अन्तिम संस्कार करते थे। उस समय लोग अपने सम्मान तथा प्रतिष्ठाके लिए चिता अथवा जमूरपर जीवित जलकर भस्म हो जाते थे। इस समय कर्त्तव्य तथा ईमानदारीकी जैसी उच्च नैतिक भावना थी, उसका उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। प्राचीन भारतीय इतिहासमें राजपूतोंकी वीरता लोक-प्रसिद्ध थी। चितापर जलनेकी उक्त प्रथामें सती प्रथाका रूप भी देखा जा सकता

---

१. रासमाला : अध्याय ११, पृष्ठ १९३–१९४।

है। उक्त कथासे यह भी विदित होता है कि मृत शरीरकी भस्म गंगामें बारहवीं शताब्दीमें भी प्रवाहित की जाती थी।

आर्थिक अवस्था

कुमारपालचरित[1] और कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिलवाड़ाका जो वर्णन है, उससे हमें देशके तत्कालीन आर्थिक जीवनकी झाँकी प्राप्त हो जाती है। यही नहीं उनसे राज्यकी विभिन्न आर्थिक गतिविधियों तथा जनताके उद्योग-धन्धोंपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अणहिलपाटन बारह कोस लगभग २४ मीलके घेरेमें बसा था। इसमें अनेक मन्दिर तथा उच्च विद्यालय थे। इसमें चौरासी महल्ले थे। इतनी ही संख्या यहाँके बाज़ारोंकी भी थी। यहाँ स्वर्ण और रजतकी मुद्रा ढालनेवाले गृह भी थे। सभी वर्गोंका अपना पृथक्-पृथक् क्षेत्र था। व्यापारकी वस्तुओंमें हाथी दाँत, रेशम, हीरे, मोती आदि उल्लेख्य थे। मुद्रा-विनिमय करनेवालोंका अपना अलग बाज़ार था, तो सुगन्धके विक्रेताओंका क्षेत्र भी पृथक् था। चिकित्सकों, कलाकारों, स्वर्णकारों और चाँदीका काम करनेवालोंके अलग-अलग बाज़ार थे। नाविकों, चारणों तथा वंशावलियोंके विवरण रखनेवालोंके स्थान पृथक्-पृथक् थे। अट्ठारहों 'वरुण' नगरमें वास करते थे और सभी प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। राजप्रासादके चतुर्दिक् भव्य भवनों की पंक्तियाँ थीं। हाथी, घोड़े, रथ तथा शस्त्रागारके लिए भवन बने थे। राज्याधिकारियों और जन आय-व्यय निरीक्षकोंके लिए भी पृथक् स्थान थे।

प्रत्येक प्रकारके मालके लिए पृथक्-पृथक् चुंगीघर बने थे। यहाँ आयात-निर्यात तथा विक्रय-कर एकत्र किया जाता था। कर तथा चुंगी लगनेवाली वस्तुओंमें मसाला, फल, दवाइयाँ, कपूर, धातु तथा देश-विदेशकी सभी बहुमूल्य वस्तुएँ थीं। यह समस्त संसारके व्यापारका केन्द्र था। इस स्थानमें प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर रूपमें एकत्र होता

---

१. हेमचन्द्र : कुमारपालचरित : प्रथम सर्ग।

था। यहाँकी सम्पन्नताका इसी बातसे सरलतापूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि पानी माँगनेपर दूध मिलता था। यहाँ बहुत-से जैन मन्दिर थे। एक झीलके तटपर सहस्रलिंग महादेवका मन्दिर निर्मित था। यहाँकी जनसंख्या गुलाबी सेवों, चन्दन, आम्रवृक्षों तथा विभिन्न प्रकारकी लताओं-के मध्य उन फुहारोंके मध्य विचरण कर प्रसन्नताका अनुभव करती थी, जिनके जल अमृतके समान थे।[1]

उद्योग और धन्धे

उपर्युक्त विवरणमें विभिन्न जन उद्योग-धन्धोंका उल्लेख आया है। जैन व्यवसायी बड़े उद्योगपति थे, इसका भी वर्णन मिलता है। विदेशोंसे व्यापार होता था। इसका प्रमाण हमें उस प्रसंगसे मिलता है जिसमें कहा गया है कि राजधानीके कुबेर नामक कोटचधीशका निधन समुद्रयात्रामें हो गया।[2] कुबेर विदेशोंसे व्यापार करनेके लिए पाटनसे भरूच (भृगुकच्छ) गया था और वहाँसे ५०० पोतोंमें माल भरकर विदेश गया। विदेशोंमें अपना सारा माल विक्रय कर उसने चार करोड़ रुपयेका लाभ प्राप्त किया। वहाँसे स्वदेश लौटते समय, समुद्रमें भीषण आँधी आयी और उसकी सभी नावें छिन्न-विच्छिन्न हो गयीं। कुछ नावें भरूच बन्दरगाहपर आ लगीं, किन्तु कुबेरका कहीं पता न लगा। इस प्रकार समुद्रमें विशाल और बहु-संख्यक पोतों-द्वारा व्यवसायका वर्णन भी मिलता है। जलपोतों, समुद्रमें व्यापार करनेवालों तथा समुद्री डाकुओंका भी उल्लेख आया है। जवहरी (जौहरी) रत्नके पारखी, व्यापारी, अत्यधिक धनी व्यवसायी होते थे। विदेशसे समुद्रपर व्यवसाय करनेवाले संयात्रिक कहे जाते थे।

---

१. टाड : पश्चिमी भारत : पृष्ठ १५६–८।

२. 'गुर्जरनगरवणिग्मूर्धन्यः कुबेरनामा श्रेष्ठी विदितो देवस्य···· स च जलधिवर्त्मनि कथाशेषतया स्वामिपादानां सेवकतामशिश्रियत।'
—मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५१-५२।

योगराजके शासनकालमें एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़ों तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहमें प्रवाहित होकर चला आया था। सिद्धराज जयसिंहके कालमें संयात्रिक (समुद्र व्यवसायी) डाकुओंके भयसे गाँठों और बण्डलोंमें स्वर्ण छिपाकर ले जाते थे।[1] इन सभी बातोंसे विदित होता है कि चौलुक्योंके शासनकालमें बड़े पैमानेपर देशी-विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दिनोंमें पाटन भारत का वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंमें एक था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लगे दिखायी देते हैं, वैसे ही किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अङ्कुर निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक् काँटेकी झाड़ियाँ लगा देते हैं। जब अन्नके पौधे बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियोंसे उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानोंकी स्त्रियाँ जिस प्रकार लोकगीत आजकल गाती हैं, ठीक उसी प्रकार उस समय भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं आह्लादकी धारा प्रवाहित कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थीं।[2]

सुवर्णकार तथा रजतकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रथ तथा अन्य ऊँचे-ऊँचे भवनोंका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके विज्ञोंके विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्रसे व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[3] इस प्रकार निश्चय ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका-संचालनका धन्धा भी कर उदरपोषण करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानीमें इनके निवास का एक पृथक् क्षेत्र ही था। इस प्रकार अनहिलवाड़ेमें एक उन्नत तथा

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

२. वही : पृ० २३२।

३. मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५१-५२।

वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग-धन्धे तथा कार्योंकी व्यवस्था थी ।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहूँ, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसका भी व्यवहार करते थे । किराडू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होता है कि लोग मांसाहारी थे । इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका जो निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है । पशु-वधकी इस निषेधाज्ञाका उल्लंघन दण्डनीय अपराध था ।[1] किराडू शिलालेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशु-वधके अपराधके लिए राज-परिवारवालोंको आर्थिक दण्ड नियत था और साधारण लोगोंके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदण्डका विधान था । यह आज्ञा कुमारपालके राज्या-रोहणके थोड़े ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी । चौलुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फ़ोर्ब्स् लिखता है कि सन्ध्यामें दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा 'चन्द्रशाला' नामक ऊपरी भवन में चला जाता था और वहीं विशिष्ट एवं विशेष भोजन करता था । इसमें मांस तथा मदिरा भी रहती थी । सामन्तसिंहका अत्यधिक आसव पानकी दशामें ही अन्त हुआ था ।[2] चौलुक्योंके पुरोगामी चावड़े भी मद्यपान करते थे । स्वयं अणहिलपुरके संस्थापक वनराजको मद्य बहुत प्रिय था । उसके पश्चात् भी वहाँके राजमहलोंमें मदिरादेवीका ख़ूब सत्कार होता था । मन्त्री यशपालके वर्णनसे यह स्पष्ट है । प्रबन्धगत प्रमाणोंसे प्रतीत होता है कि कुमारपाल जैनधर्मानुयायी होनेके पहले मांसाहार तो करता था लेकिन मद्यपानसे उसे हमेशा घृणा थी । यहाँतक कि उसके कुलमें यह वस्तु त्याज्य थी । हेमचन्द्रके योगशास्त्रमें आये हुए एक उल्लेखसे प्रतीत होता

---

१. भावनगर इन्सक्रिप्शन : पृष्ठ २०५–२०७ ।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २३७ ।

है कि चौलुक्य कुलमें मद्यपान ब्राह्मण जातिकी तरह ही निन्द्य थी।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि भोजनके साथ मांस और मदिरा भी ग्रहण की जाती थी। हेमचन्द्रके शिष्य होनेपर कुमारपालने मांसभोजन तथा मदिरापानका त्याग कर दिया था।[२] मांसभोजन, आसवपान तथा पशुवधके पापको रोकनेकी आज्ञा कुमारपालने दी थी।[३] वनराज तथा सभी चावड़े राजा अधिक आसव पानके अभ्यस्त थे।[४] युवावस्थामें कुमारपालको भी मांस खानेका व्यसन था और पर्यटनकालमें तो उसने मुख्यतः मांसपर ही निर्वाह किया था।[५]

उस समय भी लोग शाल और उत्तरीय वस्त्र उसी प्रकार ओढ़ते थे जिस प्रकार आजकल शाल और चादर धारण करनेकी चाल है। आधुनिक कालकी भाँति ही स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं।[६] फ़ोर्ब्स् का कथन है कि जब राजा भोजन कर चुकता था तो चन्दनकी सुगन्ध उसके शरीरमें लगायी जाती थी। सुपाड़ी खाकर वह छतमें लटकाये झूलनेवाले बिछावनपर विश्रामकी मुद्रामें आसीन होता था। उसकी लाल रंगकी राजकीय

---

१. राजर्षि कुमारपाल : मुनि जिनविजय : पृष्ठ १९।

२. मोहराजपराजय तथा कुमारपालप्रतिबोध सभी इसका उल्लेख करते हैं।

३. मोहराजपराजय : अङ्क ४, पृष्ठ ८३।

४. वनराजस्याहं बहुमतोऽभूवमित्युपस्थितममुना
इय धवल हरे सुचिरं चावुक्कडराय लालिओवसियो।
—मोहराजपराजयः अङ्क ४, पृष्ठ ४७।

५. वालत्ताउ वि:तुह देव। निच्चमखंतवल्लहो अहयं
महसाहिज्जेण तया कंपाइं देसंतराइं तए। वही।

६. के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व : खण्ड २, पृष्ठ १००।

पोशाक कोच और तकियापर फैला दी जाती थी।[1] जैन आचार्योंकी लम्बी सफ़ेद पोशाकका भी वर्णन आया है।[2] पुरुष उस समय धोती, उत्तरीय वस्त्र तथा पगड़ी पहनते थे।[3] स्वर्णकारों तथा रजतकारोंका अनेक स्थलोंमें उल्लेख हुआ है। जैन तीर्थंकरोंके चित्रोंसे मोतीकी मालाओं, कंकण, कड़ा, कानकी ऐरन आदि आभूषणोंके विवरण मिलते हैं। आबू मन्दिरकी मूर्तियों तथा चित्रोंसे ज्ञात होता है कि उस समय लोग दाढ़ी-मोछ रखनेके साथ ही, कलाइयों तथा बाँहोंमें आभूषण पहनते थे और कानमें गोल अँगूठी (बाली) तथा गलेमें हार एवं मोतीकी माला भी धारण करते थे। दर्शनादिके निमित्त मन्दिर जाते समय उनका वस्त्र एक छोटी-सी धोती और उत्तरीय होता था। उत्तरीय वस्त्रको दोनों कन्धोंपर डालकर बाँहोंपर लटका लिया जाता था। स्त्रियाँ कञ्चुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थीं। इनका ऊपरी वस्त्र आधुनिक ओढ़नी-जैसा था। स्त्रियाँ कानपर बड़े कुण्डल धारण करनेके अतिरिक्त बाँहों और हाथोंमें कड़ा तथा चूड़ियाँ धारण करती थीं।[4] यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी सुन्दर वस्त्राभूषणोंका वर्णन मिलता है।[5]

चौलुक्यकालीन सिक्के

चौलुक्यराजाओंके सम्बन्धमें जब प्रभूत एवं प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है तो यह वस्तुतः आश्चर्यका विषय हो जाता है कि उस कालकी

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २३७–२३८। यह प्रथा आज भी गुजरात और महाराष्ट्रके घरोंमें व्यापकरूपसे प्रचलित है।

२. वही।

३. पाटनका प्रभुत्व : खण्ड २, पृष्ठ १०४।

४. आर्कियॉलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।

५. पौराः कुर्युर्विपणिपदवीमस्तपांशुं पयोभिर्मुक्ताहारै रुचिरवसनैर्हट्ट-शोभां विदध्युः॥ मोहराजपराजय : अङ्क ४, पृ० ९२।

मुद्राएँ क्यों दुर्लभ और अप्राप्य हैं। बारहवीं शताब्दीमें गुजरातका साम्राज्य आर्थिक सम्पन्नताके विचारसे अत्यधिक समृद्ध था। समसामयिक साहित्य, विदेशी इतिहासकारोंके विवरण तथा अन्य साधनोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुबेरके वैभवका वर्णन करते हुए लिखा है कि कुबेरके पास ६ करोड़ स्वर्णमुद्रा[१] और आठ-सौ तोला रजत, बहुमूल्य रत्न आदि-आदि थे। गुजरातकी राजधानी पाटन तत्कालीन भारतकी 'वेनिस नगरी' कही जाती थी। गुजरातके स्तम्भतीर्थ (सूरत) भृगुपुर (गुंडाया) द्वारका, देवपाटन, मोटा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहोंसे विदेशी व्यापार बड़े पैमानेपर होता था। समुद्रमें व्यापारके लिए गये कुबेरके निधनके विवरणसे स्पष्ट है कि उस समय पाटन संसारके प्रमुख व्यापारकेन्द्रोंमें था और यहाँसे व्यापारिक पोतोंका विशाल समूह विदेशोंसे व्यापार करने जाता था। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि चौलुक्यकालीन राजाओंने अपने सिक्कोंका प्रचलन न किया होगा, हास्यास्पद लगता है। उत्तरप्रदेशमें मिली सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्रासे विदित होता है कि उस समय सिक्के ढाले जाते रहे हैं और अर्थविभागके अन्तर्गत इसकी व्यवस्था अवश्य रही थी।[२] कुमारपालचरितके प्रथम सर्गमें तथा कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिलवाड़ाका जो वर्णन मिलता है, उनमें पाटनमें स्वर्ण तथा रजत मुद्राओंको ढालनेवाले गृहोंका भी उल्लेख आया है। यहाँ चौरासी बाज़ार थे जहाँ आयात-निर्यात तथा विक्रय-कर लेनेकी व्यवस्था थी। यहाँ प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर-के रूपमें एकत्र होता था।[3] अब प्रश्न है कि ऐसी समृद्धिशील आर्थिक स्थितिमें चौलुक्यकालीन सिक्कोंका अभाव

---

१. स्वर्णस्य षट्कोट्यस्तारस्याष्टतुलाशतानि च महार्णाणां मणीनां दश : —मोहराजपराजय।

२. जे० आर० ए० एस० बी० : लेटर्स ३ : १९३७ नं० २ आर्टिकिल।

३. टाड : एनल्स ऑव वेस्टर्न इण्डिया : पृष्ठ १५६।

क्यों है ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि कुमारपालके उत्तराधिकारियोंके समय और उसके बाद जितने यवन आक्रमण हुए, उनमें स्वर्णके भूखे आक्रमणकारियोंने मनमानी लूट-पाट की। बहुत-सी स्वर्ण और रजत मुद्राएँ तो इस प्रकार नष्ट हो गयी होंगी अथवा विदेश ले जायी गयी होंगी। दूसरा कारण, सिक्कोंका प्रचलन-सम्बन्धी वह साधारण नियम है, जिसके अनुसार राज्यपरिवर्तन अथवा नवीन राजाके अधिकार ग्रहणके बाद उसके पूर्वके अधिकांश सिक्कोंका नयी मुद्रा चलानेके लिए गला दिया जाना है। जब सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्राका पता चला है तो कोई कारण नहीं कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपालने राज्यारोहणके उपरान्त अपनी मुद्राएँ न प्रचलित की हों। विशेषकर उस स्थितिमें जब कि उसीके शासनकालमें गुजरातका साम्राज्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर था। यह केवल अनुमान ही नहीं, अपितु अन्य सूत्रोंसे भी विदित होता है। एक सूत्रसे पता चलता है कि अलाउद्दीनके मुद्रा-अधिकारी लोगोंसे प्राचीन सिक्के लेते थे और द्रव्यपरीक्षा कर उसका मूल्यांकन नये सिक्केमें करते थे। ऐसे ही एक प्रसंगमें 'कुमारपालीय मुद्रा'का उल्लेख आया है।[1] इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियोंकी लूट-पाटसे अवशिष्ट सिक्के, यवन-राज्यकी स्थापनाके कारण नये सिक्कोंके लिए गला दिये गये होंगे। इसके पश्चात् भी बचे हुए सिक्के बहुत सम्भव है कि तत्कालीन वैभवकेन्द्रोंके ध्वंसके नीचे दबे पड़े हों। हम लिख चुके हैं कि पुरातत्त्ववेत्ता श्री संकालियाने जब उक्त क्षेत्रोंमें सिक्कोंके सम्बन्धमें पूछताछ की तो उन्हें पता लगा था कि सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाके बाहर जब एक सड़कका निर्माण हो रहा था तो कुछ सिक्के सागर अप्सराके मुनि पुण्यविजयजीको मिले थे। इन स्थितियोंमें यह स्वीकार करनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि चौलुक्य राजाओं तथा उनमें सर्वप्रमुख कुमारपालने अपनी

---

१. मुनि कान्तिसागर : थक्तर खेरू और उनके ग्रन्थ।

मुद्राएँ अवश्य ही प्रचलित की होंगी। निकट भविष्यमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके उत्खननपर, इस सम्बन्धमें और अधिक प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है।

मनोरंजन और खेलकूदके साधन

ऐसे सम्पन्न और उन्नतिशील समाजमें विविध प्रकारके खेलकूद तथा मनोरंजनके साधन होने स्वाभाविक ही थे। कुमारपालप्रतिबोधमें मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा अन्य मनोरंजनोंके वर्णन मिलते हैं। द्यूत खेलनेकी प्रथा राजा और प्रजा दोनोंमें बहुत प्रचलित थी। धार्मिक समारोहोंपर तो लोग सार्वजनिक और स्वतन्त्र रूपसे जुआ खेलते थे। द्यूत-क्रीड़ाके पाँच भेदोंका वर्णन मिलता है। प्रथम भेद अन्ध्य था, जो नित्य राजा लोगों-द्वारा वस्त्रके टुकड़ेपर बने वर्गपर खेला जाता था। दूसरा प्रकार नालय था, जिसे सम्पन्न लोग सुवर्ण लेकर खेलते थे। तृतीय चतुरंग था, जो आधुनिक कालका शतरञ्ज है। द्यूतका चतुर्थ भेद अक्ष था जिसे खेलकर कौरवोंने विजय प्राप्त की थी। पाँचवाँ प्रकार वराड नामका था, जिसे कौड़ियोंकी सहायतासे खेला जाता था। जुआ खेलनेवालोंका भी वर्णन मिलता है। कुछ लोगोंके हाथ, पैर और कान काट लिये जाते थे। कुछ लोगोंके तो नेत्र भी निकाल लिये जाते थे। दण्डस्वरूप जुआ खेलनेवालोंकी नाक, जीभ तथा कुछके पैर तक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोंको इस अपराधमें नग्न कर दिया जाता था।[1]

द्यूत खेलनेवालोंमें निम्नलिखित राजवंशके सदस्योंके नाम मिलते हैं:—(१) मेवाड़के राणाका पुत्र, (२) सोरठके राजाका भाई, (३) चन्द्रावतीका राजा, (४) नाडुल्यके राजाका भतीजा, (५) गोधरा नरेशका भतीजा, (६) धारानरेशका भाँजा, (७) शाकम्भरी राजके श्वसुर, (८)

---

१. केवि कट्टिय चरण करकन्न, किवि कड्ढियनयणजुय केविनक्क अहरिहि विवज्जिय। किवि लूण सव्वावयव केवि जेव खवणय अल-ज्जिय।

कच्छ-नरेशका साला, (९) कोंकण राजाका सौतेला भाई, (१०) मारवाड़के राजाका भाँजा तथा (११) चौलुक्यराजका चाचा। द्यूत क्रीड़ामें ये इतने निमग्न रहते थे कि परिवारमें माता-पिता या पत्नीकी मृत्यु भी हो जाती तो उसपर बिना शोक प्रकट किये, ये अपने खेलमें ही व्यस्त रहते।[1] कहते हैं शूद्रकने अपना साम्राज्य द्यूत-क्रीड़ासे ही हस्तगत कर लिया था।[2] राजप्रासाद तथा नगरमें सङ्गीत तथा नृत्यका भी उल्लेख मिलता है। कुमारपालके दैनिक कार्यक्रममें हमने देखा है कि जब वह राजप्रासादके मन्दिरोंमें पूजन-अर्चन समाप्त कर लेता तो नर्तकियाँ दीप लेकर देवताओंके सम्मुख नृत्य करती थीं। आराधनके उपरान्त वह चारणों तथा अन्य लोगोंसे वाद्य-संगीत और गायन सुनता।[3] वेश्यावृत्ति कोई विशेष और बड़ा पाप नहीं समझा जाता था।[4] समारोहोंपर नागरिक सड़कोंपर छिड़काव कराते थे तथा मोतियोंके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे अपनी दुकान सुसज्जित करते थे। प्रमुख स्थानोंमें उन्हें स्वर्णघट रखने पड़ते थे और सुसज्जित रङ्गमंचपर नर्तकियाँ नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थीं।[5] समाजके शिष्टवर्गसे

---

१. मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क, श्लोक २२।

२. वही : श्लोक २९।

३. कुमारपालप्रतिबोध : पृष्ठ ३८।

४. मोहराजपराजय : पृष्ठ ११—'वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयं न तेन किञ्चिद्‌गतेन स्थितेन वा।'

५. भो भोः पौराः! महाराजो श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति—यज्जिनरथयात्रामहोत्सवो भविष्यति। ततः

> पौराः कुर्युर्विपणिपदवीमस्तपांशुं पयोभि-
> र्मुक्ताहारै रुचिरवसनैर्हट्टशोभां विदध्युः।
> स्थाने स्थाने कनककलशान् स्थापयेयुर्भवन्तः
> पण्यस्त्रीभिः सुरगृहसखान् मञ्चकान् भूषयेयुः॥

—वही : चतुर्थ अङ्क, श्लोक १९।

वेश्याओंका घनिष्ठ सम्पर्क रहता था। वेश्याओंकी स्थिति भी आजकी भाँति हल्की और व्यभिचारपोषक न थी। वेश्याओंका स्थान समाजमें एक प्रकारसे उच्च समझा जाता था। राजदरबारमें हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी। देवमन्दिरोंमें भी नृत्यसंगीत आदिके लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। व्यक्तिगत और सार्वजनिक महोत्सवोंमें भी उनका स्थान प्रमुख रहता था। कला और कुशलताकी वे शिक्षिका मानी जाती थीं। नाटकों तथा अन्य मनोरंजक कार्यक्रमोंके आयोजनोंके भी वर्णन मिलते हैं। हेमचन्द्रने लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह वेश परिवर्तन कर इन स्थानोंमें जाया करते थे। धनाढ्य उद्योगपतियोंके भव्य-भवनोंके उज्ज्वल प्रकाश या अन्य समारोहके स्थल उसके आकर्षणके विषय थे। अज्ञात रूपमें भी वह जहाँ जाता तो उसका आदर होता था। कभी वह शिव-मन्दिरोंके प्रांगणमें होनेवाले संगीत अथवा हास्यसे आकर्षित होकर जाता, जहाँ अभिनेता अपनी बुद्धि एवं अभिनय कलासे जन-समूहको आह्लादित करते थे। एक समय जयसिंह सिद्धराज वेश बदलकर कर्ण मेरुप्रासादमें अभिनीत होनेवाले एक नाटकमें उपस्थित थे। ऐसे प्रदर्शनोंमें पर्याप्त धनराशिका व्यय होता था और धनाढ्य ही इसका आयोजन करनेमें समर्थ हो सकते थे। इस प्रकार एक सम्पन्न एवं पूर्ण उन्नत समाजमें प्राप्य समस्त प्रकारके खेल-कूद, प्रदर्शन, सांस्कृतिक आयोजन, कलात्मक अभिनय तथा मनोरंजनके विविध साधन इस समय उपलब्ध थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था

सोलंकीराज कुमारपालका शासनकाल भारतके धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। जैन इतिहासोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है कि जैसे-जैसे कुमारपाल प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त हो रहा था, उसी प्रकार क्रमशः उसपर हेमचन्द्रका अधिकाधिक प्रभाव होता जाता था और अन्तमें वह जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। कुमारपालके बीससे अधिक शिलालेखोंमें

उसे 'उमापतिवरलब्ध'—शंकरका भक्त कहा गया है[1] तथा अनेक शिलालेखोंमें उसके सम्बन्धमें परम अर्हत सूचक विरुदका उल्लेख आता है। गुजरातके बहुत-से प्रतिष्ठित परिवारोंमें जैन और शैव दोनों धर्मोंका पालन किया जाता था। किसी घरमें पिता शैव था तो पुत्र जैन, किसी घरमें सास जैन थी तो वधू शैव। किसी गृहस्थका पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव। किसीका मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। इस प्रकार गुजरातमें वैश्य जातिके कुलोंमें प्रायः दोनों धर्मोंके अनुयायी थे। निष्कर्ष यह कि शैव और जैन दोनों मुख्यरूपसे गुजरातके प्रजाधर्म थे।[2] दोनों धर्मोंमें सद्भावकी स्थिति थी तो भी सामान्यरूपसे राजधर्म शैव ही माना जाता था और गुजरातके राजाओंके उपास्य शिव थे।[3] दसवीं शताब्दीमें जब मूलराजने अनहिलवाड़ामें चौलुक्य राजवंशकी स्थापना की तो उस समय भी सोमनाथ का पवित्र मन्दिर सर्वप्रसिद्ध था।[4] सिद्धपुरमें रुद्रमहालयका निर्माण कर मूलराजने उत्तरी गुजरातमें भी शैवमतका बीजारोपण किया। सिद्धराज जयसिंहके समयमें शैव मतकी अत्यधिक उन्नति हुई। उसने सहस्रलिङ्ग तालाबका निर्माण करा उसके चतुर्दिक् मन्दिरोंमें एक सहस्र शिवलिङ्गोंकी स्थापना करायी। इतना ही नहीं, झीलके चारों ओर अन्य देवी-देवताओंके

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १८, पृ० ३४१-४३ तथा इपि० इण्डि० : ४१२, सूची संख्या २७६।

२. मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल : पृ० ५।

३. हेमचन्द्रके द्व्याश्रय काव्यमें जो चौलुक्यकालीन गुजरातकी प्रामाणिक रचना है, मूलराजसे जयसिंह सिद्धराज तकके वर्णनमें जैन-धर्मका कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

४. द्व्याश्रयमें मूलराजकी सोमनाथ यात्राका उल्लेख है। भिल्लरी शिलालेखके अनुसार लक्ष्मण राजा ई० सन् ९६० में सोमेश्वरकी आराधना करने गया था। इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृ० २६८।

मन्दिरोंका भी उसने निर्माण कराया।[1] निश्चय ही कुमारपालने जयसिंह सिद्धराजकी भाँति शैवधर्मको राजसंरक्षण नहीं प्रदान किया और उसका झुकाव जैनधर्मकी ओर ही अधिक था। फिर भी हेमचन्द्रने लिखा है कि कुमारपालने अनहिलवाड़ामें कुमारपालेश्वर नामक शिवमन्दिरकी स्थापना की।[2] इसके अतिरिक्त उसने सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया तथा केदार मन्दिरको बनवानेका आदेश भागवतको दिया।[3] उसके उत्तराधिकारी अजयपालने शैवधर्मका प्रचार-प्रसार बड़े उत्साहसे किया। इस समयसे लेकर चौलुक्यवंशके अन्त तक शैवधर्मको राज्यका समर्थन एवं संरक्षण प्राप्त रहा।

शैवमतका प्राधान्य

इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके पश्चात् इस निर्णयपर पहुँचना उचित होगा कि कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेके पूर्व शैवधर्म ही राज्यधर्म था। कुमारपाल अपने उत्तरार्ध जीवनमें जैनधर्मको मुख्य मानने लगा था। सिद्धराजके इष्टदेव अन्त तक शिव ही थे किन्तु कुमारपालके इष्टदेव पिछले जीवनमें जिन थे।[4] कुमारपालके शासनकालमें भी शैव सम्प्रदायकी अवनति नहीं हुई। इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि शैव और जैनधर्म दोनों साथ-साथ फल-फूल रहे थे। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार हेमाचार्यके गुरु देवसूरिसे जब कुमारपालने पूछा कि उसका नाम किस प्रकार चिर-स्मरणीय हो सकता है तो देवसूरिने उत्तर दिया—'समुद्रकी लहरोंसे ध्वस्त सोमनाथके काष्ठ मन्दिरका ऐसा नवीन निर्माण कराओ जो एक युग

१. द्व्याश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११४, १२२ तथा अप्रकाशित 'सरस्वती पुराण'।

२. वही : सर्ग २०, श्लोक १०१।

३. द्व्याश्रय महाकाव्य : सर्ग २०, श्लोक ९५।

४. राजर्षि कुमारपाल : पृ० ६।

तक ठीक रहे।' कुमारपालने मन्दिर निर्माण कराना स्वीकार किया तथा सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी गण्ड भावबृहस्पतिकी अध्यक्षतामें एक पञ्चकुल अथवा मन्दिर निर्माण समितिका संघटन किया।[1]

गण्डभावबृहस्पतिकी प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि 'कामके शत्रु सोमनाथके मन्दिरको ध्वस्त देखकर उसने (कुमारपालने) देवमन्दिरके पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी।' कुमारपालने जब मन्दिरके शिलान्यासका समाचार सुना तो हेमचन्द्रके आदेशके अनुसार यह प्रतिज्ञा की कि जबतक मन्दिरका पूर्ण निर्माण न हो जायेगा तबतक वह व्यसनादिका त्याग रखेगा। अपनी इस प्रतिज्ञाकी साक्षीके लिए उसने हाथमें जल लेकर नीलकण्ठ महादेवपर छोड़ा, जो सम्भवतः उसके इष्टदेव थे। दो वर्षोंमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया और उसपर पताका फहराने लगी। हेमाचार्यने राजासे उस समय तक अपनी प्रतिज्ञा न तोड़नेका परामर्श दिया जबतक नवीन मन्दिरमें वह देवका दर्शन नहीं कर आता। राजाने यह स्वीकार किया और सोमनाथ गया। हेमाचार्य भी पहले ही पैदल रवाना हुए और शत्रुञ्जय तथा गिरनार हो आनेके बाद सोमनाथ आनेका भी वचन दिया। सोमनाथ पहुँचनेपर कुमारपालका भव्य स्वागत वहाँके राज्याधिकारी गण्ड-भावबृहस्पतिने सोमनाथकी जनता तथा मन्दिरनिर्माण समितिकी ओरसे किया। कुमारपालकी राज-सवारी नगरके मुख्य मार्गोंसे होती हुई, सोमनाथ महादेवके नवनिर्मित मन्दिर तक निकाली गयो। मन्दिरकी सीढ़ियोंपर राजा ने अपना मस्तक नत किया। गण्डभावबृहस्पतिके निर्देशनके अनुसार उसने देवका पूजन कर, हाथियों और अन्य बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट रखी। उसने सिक्कों-द्वारा अपना तुलादान भी किया और वह समस्त धनराशि मन्दिरमें अर्पित कर दी। इसके पश्चात् कुमारपाल अणहिलपुर वापस लौटा।[2]

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

फोर्ब्स् लिखता है कि वुणराज तथा उसके उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह और उसके बाद कुमारपाल (उस समय तक जब कि कुमारपालने हेमचन्द्राचार्यसे अर्हतके सिद्धान्तोंको ग्रहण न किया था) शैव मतावलम्बी थे।[1] कुमारपालने, केवल सोमनाथका नवीन मन्दिर निर्माण ही न कराया अपितु शैवधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा, चित्तौड़ तथा उदयपुर (ग्वालियर) स्थित समिद्धेश्वर और उदयलीश्वरके शिवमन्दिरोंको दानमें ग्राम देकर भी प्रकट की थी। कुमारपाल जीवनके उत्तरकालमें जैनधर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी शैवमतका संरक्षक था, इसका प्रमाण चित्तौड़गढ़ उत्कीर्ण लेख-द्वारा मिलता है। इस शिलालेखका प्रारम्भ जैनदर्शनके 'ओम् नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिव प्रार्थनासे होता है। इसमें इस घटनाका भी उल्लेख है कि शाकम्भरी भूपालसे जब वह युद्ध करने जा रहा था तब उसने चित्रकूट पर्वतपर स्थित समिद्धेश्वर महादेवका पूजन किया था और भेंटके अतिरिक्त एक ग्राम दान भी किया था।[2] इसी प्रकार उदयपुर प्रस्तर लेखमें उदयपुर नगरके उदयलीश्वर मन्दिरमें महाराजपुत्र वसन्तपाल-द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है। यह शिलालेख शाकम्भरी तथा अवन्तिराज-को पराजित करनेवाले अनहिलपाटनके राजा कुमारपालके शासनकालका है।[3] कुमारपाल जीवनके प्रारम्भमें शिवका अनन्य भक्त था, इस तथ्यकी पुष्टि उसके बहुसंख्यक शिलालेखों-द्वारा होती है, जिनमें उसे उमापति शिवका प्यारा 'उमापतिवरलब्ध' कहा गया है।[4] इस प्रकार अपने

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

२. इपि० इण्डि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

३. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १८, पृष्ठ ३४१–४३।

४. आर्केयॅलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया वेस्टर्न सरकिल : १९०८, पृष्ठ ५१, ५२। वही : ४४, ४५, पूना ओरयण्टलिस्ट : खण्ड १, उपखण्ड २, पृष्ठ ४०, इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृष्ठ ४४ आदि।

पूर्वजोंकी भाँति कुमारपाल, शासनकालके प्रारम्भमें शिवका पक्का भक्त था और राज्यकी जनसंख्याका बहुत बड़ा दल भी इसी धर्ममार्गका अनुयायी था।

जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष

जैनसूत्र तथा साहित्यका दावा है कि यहाँ अतीत प्राचीनकालसे जैन-धर्मका प्रसार था।[१] सम्भव है कि गुजरात तथा काठियावाड़में जैनधर्मकी प्रथम लहर ईसापूर्व चौथी शताब्दीमें उस समय फैली जब भद्रबाहु दक्षिण की ओर गये थे।[२] चालुक्योंके अधीन गुजरातमें जैनधर्मके प्रसारका पता किसी प्राचीन ऐतिहासिक भवन या लेखादिसे नहीं प्राप्त होता। अवश्य ही कर्नाटकमें प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार था।[3] चौलुक्य-कालमें गुजरात श्वेताम्बर जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र बना। हरिभद्रने आठवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी प्रमुखता और प्रसिद्धि करायी।[४] राज-पूताना और उत्तरी गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका पता उन जैनमन्दिरोंसे भी लगता है जो दसवीं शतीमें हस्तिकुण्डी वंशके राष्ट्रकूट राजा विदग्धराज-द्वारा बनवाया गया था। चावड़ा वंशके संस्थापक वनराजका पालन-पोषण एक जैनसूरिने किया था, इससे भी जैनधर्मके प्राचीन प्रचलनकी स्थिति विदित होती है।

जो हो, महर्षि हेमचन्द्रके कालमें गुजरातमें जैनधर्मकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ ही न हुई अपितु कुछ समयके लिए यह राज्यधर्म भी बन गया। यह किस प्रकार हुआ, इसका विवरण जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य-द्वारा ही विदित होता है। वह अपने द्वयाश्रय काव्यमें लिखते हैं कि वास्तवमें पहलेके

---

१. संकालिया : दि ग्रेट रिननशियेसन ऑव नेमिनाथ, इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली : जून १९४० ।

२. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ११, पृष्ठ २३३ ।

३. विण्टरनित्स : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर : भाग २, पृष्ठ ४३१ ।

४. आर्कैयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ११, पृष्ठ २३५ ।

राजाओंमें जैनधर्मके प्रति विशेष उत्साह नहीं था। समय-समयपर भले ही उनकी सदिच्छा इस धर्मके प्रति जागृत हुई हो और उन्होंने जैनमन्दिरोंके निर्माण भी कराये हों, किन्तु इससे यह अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता था कि वे राजे जैन थे। इन राजाओंके शैव होनेपर भी जैनधर्मपर उनकी आदरदृष्टि थी। विद्वान् जैन आचार्य, राजाओंके पास निरन्तर आते रहते थे और राजा लोग भी अपने गुरुओंके समान ही उन्हें आदर करते थे। शैवधर्मके आदर्श प्रतिनिधि सिद्धराज भी जैनोंसे काफ़ी सम्बन्धित थे। सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके साथ-साथ उसने 'रायविहार' नामक आदिनाथका जैनमन्दिर भी बनवाया था। गिरनार पर्वतपर नेमिनाथका जो मुख्य जैन-मन्दिर आज विद्यमान है, वह भी सिद्धराजकी उदारताका ही फल है। शत्रुञ्जय तीर्थका खर्च चलानेके लिए उसने बारह गाँव उसके साथ लगा देनेके लिए अपने महामात्य अश्वाकको आज्ञा दी थी।[1] हाँ यह अवश्य है कि हेमचन्द्रने इसका उल्लेख किया है कि जयसिंह सिद्धराज, जब सोमनाथसे यात्रा कर लौट रहे थे तो उन्होंने नेमिनाथका पूजन-वन्दन किया था।[2] जयसिंह सिद्धराजने सिद्धपुरमें महावीरका एक चैत्य भी बनवाया था।[3] किन्तु इससे यही पता चलता है कि गुजरातमें जैनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके लिए उपयुक्त वातावरण बन चुका था। कुमारपालके राजत्वकालमें जैनधर्मको राज्य-संरक्षण तो मिला ही साथ ही सम्पूर्ण गुजरातमें इसका व्यापक प्रसार भी हुआ। कुमारपालने जैनधर्म स्वीकार कर ऐसी अहिंसा नीतिका राज्य-भरमें प्रवर्तन किया, जिसने देशके भावी इतिहासको प्रभावित किया और जिसकी स्पष्ट छाप आय भी भारतीय जीवन और संस्कृतिपर दृष्टिगोचर होती है।

---

१. मुनि जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल : पृ० ६।

२. द्व्याश्रय काव्य : सर्ग १५ : श्लोक ६९,७५।

३. वही : श्लोक १६।

आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल

कुमारपालप्रतिबोधके लेखकका कथन है कि जैनधर्मके इतिहासमें महर्षि हेमचन्द्रका व्यक्तित्व महान् है। जैनधर्मावलम्बियों तथा आचार्योंमें उनका बहुत उच्च स्थान है। हेमचन्द्रने जैनधर्मके उत्कर्षके लिए महान् आचार्यका कार्य किया। वह अपने समयके महापण्डित भी थे। इसी पाण्डित्यपर विमुग्ध होकर राजा जयसिंह सिद्धराज उनसे सभी शास्त्रीय प्रश्नोंपर परामर्श लेकर पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते थे। यह हेमचन्द्रकी शिक्षा तथा उपदेशका ही प्रभाव था कि सिद्धराज जैनधर्मके प्रति आकृष्ट हुए और उन्होंने एक जैनमन्दिरका निर्माण कराया। हेमचन्द्रके प्रति राजाका ऐसा भाव हो गया था कि जब तक वह उनके अमृत समान उपदेशका श्रवण न कर लेते थे, उन्हें प्रसन्नताका अनुभव ही न होता था।[1] कहते हैं कि मन्त्री वहडने कुमारपालको सलाह दी कि यदि वह सच्चे धर्मकी सम्प्राप्ति करना चाहता हो तो उसे श्रद्धायुक्त होकर आचार्य हेमचन्द्रके पास जाना चाहिए। अपने मन्त्रीके परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण करने लगा।[2] पहले हेमचन्द्रने पशुहिंसा, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटकी बुराइयोंको दिखानेवाली कथाओं-द्वारा कुमारपालको उपदेश दिया। उसने कुमारपालको राजाज्ञा निकालकर

---

१. बुहयणचूड़ामणिणो भुवनपसिद्धस्य सिद्धरायस्स।
संसयपएसु सव्वेसु पुच्छणिज्जो इयो जाओ॥
जयसिंह देव-वयणा निम्मियं सिद्धहेमवागरणं
नीसेस-सद्द-लक्खण निहाणमिमिणा मुणिंदेण।
—कुमारपालप्रतिबोध: पृ० २२।

२. इय सम्मं धम्म-सरूप-साहगो साहियो अमच्चेणं
तो हेमचन्द सूरिं कुमर-नरिंदो न मइ निच्चं।
—कुमारपालप्रतिबोध।

राज्यमें इनका निषेध करनेकी भी प्रेरणा की। तब उसने जैनधर्मके अनुसार सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्यधर्मका उपदेश करते हुए असत्देव, असत्गुरु तथा असत्धर्मकी बुराइयोंको दिखाया।[१] इस प्रकार कुमारपाल शनैःशनैः जैनधर्मका भक्त हो गया और इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया। पहले उसने पाटनमें मन्त्री वहड और वहड वंशके गर्गसेठके सर्वदेव तथा सावसेठ नामक दो पुत्रोंके निरीक्षणमें कुमारपाल विहार नामक भव्य मन्दिर बनवाया।[२] इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी विशाल पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की और साथके अन्य चौबीस मन्दिरोंमें चौबीस तीर्थङ्करोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित कीं। इसके पश्चात् कुमारपालने इससे भी विशाल एवं भव्य त्रिभुवन विहार नामक मन्दिरका निर्माण कराया। इसके साथके बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थङ्करोंकी मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। इस मन्दिरका शिखर भाग स्वर्णमण्डित था। केन्द्रीय मन्दिरमें तीर्थङ्कर नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विभिन्न बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें अन्य तीर्थङ्करोंकी पीतल धातुकी बहत्तर मूर्तियाँ स्थापित थीं। इनके अतिरिक्त केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबीस तीर्थंकरोंके चौबीस मन्दिर बनवाये। इनमें त्रिविहार मन्दिर प्रमुख था। पाटनके बाहर अपने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें भी कुमारपालने इतनी अधिक संख्यामें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया, जिनकी ठीक-ठीक संख्या निश्चित करना भी कठिन है। इनमें तारंगा पहाड़ीपर सूबेदार अभयके पुत्र जसदेवके निरीक्षणमें निर्मित अजितनाथका विशाल कलामण्डित मन्दिर विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।[३]

---

१. वही : पृ० ४०, ११४।
२. दाऊण य आएसं 'कुमर विहारो' करावियोएत्थ।
अट्ठावओ व्व रम्मो चउवीस-जिणालयो तुंगो। वही: पृ० ११३।
३. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १४३, १७४।

शिलालेखोंकी साक्षी

कुमारपालने अपने आध्यात्मिक गुरु हेमचन्द्रसे विक्रम संवत् १२१६ में सकल जन समक्ष जैनधर्मकी दीक्षा ली थी और कुमार विहारका निर्माण कराया था, इसका उल्लेख केवल विभिन्न जैनग्रन्थोंमें ही नहीं, शिलालेख तथा अभिलेखोंमें भी मिलता है। विक्रम संवत् १२४२ के जालोर शिलालेखमें लिखा है कि 'कुमार विहार'में पार्श्वनाथका मूलबिम्ब प्रतिष्ठित था। इसकी स्थापना परमअर्हत, गुर्जरधराधीश महाराजाधिराज चौलुक्य कुमारपालने जावालीपुर (आधुनिक जालोर) के कंचनगिरि क़िलेमें प्रभु हेमसूरिसे दीक्षा लेनेके उपरान्त की थी। चालुक्य राजा कुमारपालने इसका निर्माण कराया था और इसीलिए उसके नामपर इसका नामकरण 'कुमार विहार' रखा गया।[1]

जैन समारोहोंका आयोजन

कुमारपालने इन मन्दिरोंका निर्माण कर जैनधर्मके प्रति अपने कर्त्तव्यकी इतिश्रीका अनुभव कर लिया हो, ऐसी बात नहीं। जैनधर्मके सच्चे अनुयायी और साधककी भाँति वह जैनमन्दिरोंमें जाकर मूर्तियोंके समक्ष आराधन भी करता था। धर्मकी महत्ताका प्रभाव जनतापर डालनेके लिए वह बड़े समारोहपूर्वक अष्टाह्निका महोत्सवका आयोजन कराता था। प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन शुक्लपक्षके अन्तिम सप्ताहमें पाटनके प्रसिद्ध 'कुमार विहार' में यह समारोह मनाया जाता था। उत्सवके अन्तिम दिन सन्ध्या समय

१.····संवत १२२१ श्रीजावालिपुरीय कांचनर्गा (ग) रि गढ़स्योपरि प्रभु श्रीहेमसूरि प्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महारा (ज)ा-धिराज श्री (कु) मारपाल देव कारिते श्रीपा (र्श्व) नाथ सत्कमू (ल) विंव सहित श्रीकुवर विहाराभिधाने जैन चैत्ये (।) सद्विधि प्रव (र्त्तं) नाय···· इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ५४, ५५।

हाथियों-द्वारा चलनेवाले विशाल रथमें पार्श्वनाथकी सवारी नगरसे होती हुई राजप्रासाद जाती थी। इसमें राजाके उच्च अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक भी सम्मिलित रहते थे। चारों ओर जनसमूह नृत्य और गायन करता रहता था और इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरणके मध्य राजा स्वयं जाकर मूर्तिकी पूजा करता था। रात्रिमें रथ, राजप्रासादमें ही रहता था और प्रातः राजप्रासादके द्वारपर निर्मित विशाल मैदानमें चला जाता था। यहाँ भी राजा उपस्थित रहता था। राजा-द्वारा पूजन-अर्चनके पश्चात् रथ नगरके प्रमुख मार्गोंसे होकर जाता था। मार्गमें बनाये गये मैदानोंमें ठहरता हुआ यह रथ अपने मूलस्थानको लौट जाता था।[१] राजा स्वयं तो यह समारोह मनाता ही था साथ ही अपने अधीनस्थोंको भी इसका समारोहपूर्वक आयोजन करनेका आदेश देता था। अधीनस्थ राजाओंने भी अपने-अपने नगरोंमें विहारोंका निर्माण कराया।

इस समारोहका विस्तृत विवरण सोमप्रभाचार्यने ही केवल नहीं किया है अपितु अन्य ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख आया है। नाटककार यशपालने रथके इस महोत्सवको, अपने नाटकमें—जिसका नायक कुमारपाल है, रथयात्रा महोत्सव कहा है। इसमें नागरिकोंको सूचना दी जाती है कि महाराज कुमारपालदेवने रथयात्रा महोत्सव मनानेकी आज्ञा की है, इसलिए समारोहकी समस्त तैयारी होनी चाहिए।[२] हेमचन्द्रके महावीरचरित्रमें भी

---

१. प्रेङ्खन्मण्डपकुल्लसद्ध्वजपटं नृत्यद्वधूमण्डलं
चञ्चन्मञ्चमुदञ्चदुच्चकदलीस्तम्भं स्फुरत्तोरणम्।
विष्वग्जैनरथोत्सवे पुरमिदं व्यालोकितुं कौतुका-
ल्लोका नेत्रसहस्रनिर्मितकृते चक्रुर्विधेः प्रार्थनाम्।
—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १७५।

२. भो भोः पौराः महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति यज्जिनरथयात्रामहोत्सवो भविष्यति। ततः—

इस रथयात्रा महोत्सवका विवरण मिलता है।[1]

कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ-यात्रा

एक समय जैनयात्रियोंका एक दल सौराष्ट्र(काठियावाड़)के मन्दिरों-की तीर्थयात्राके लिए जाता हुआ पाटनमें ठहरा। यह देख कुमारपालके मनमें भी ऐसी ही तीर्थयात्राकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक बड़ी सेनाके साथ आचार्य हेमचन्द्र एवं जैन समाजके सहित कुमारपालने सौराष्ट्रकी यात्रा की। इस तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें वह गिरनार (जूनागढ़) ठहरा, किन्तु शारी-रिक निर्बलताके कारण वह पर्वतके ऊपर न जा सका। इसलिए उसने अपने मन्त्रियोंको पूजनके लिए भेजा। यहाँसे सारा दल शत्रुञ्जय पहाड़ीपर स्थित ऋषभदेवके मन्दिरकी ओर अग्रसर हुआ। कुमारपालके आगमनके पूर्व राजाकी आज्ञासे मन्त्री वहड-द्वारा इस मन्दिरकी आवश्यक मरम्मत हुई थी। इस तीर्थयात्राके पश्चात् कुमारपाल राजधानी वापस आया। जब वह लौटा तो उसे गिरनार पर्वतपर न चढ़ सकनेका अत्यन्त खेद रहा। उसने इस आशयका आदेश जारी किया कि उक्त पहाड़ीपर सीढ़ियाँ बनायी जायें। कवि सिद्धपालके सुझावपर उसने अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार

पौराः ! कुर्युर्विपणिपदवीमस्तपांशुं पयोभि-
र्मुक्ताहारैरुचिरवसनैर्हट्टशोभां विदध्युः ।
स्थाने स्थाने कनककलशान् स्थापयेयुर्भवन्तः
पण्यस्त्रीभिः सुरगृहसखान् मञ्चकान् भूषयेयुः ॥
—मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क, श्लोक १९ ।

१. प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले ।
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति ॥
—महावीरचरित्र : सर्ग १२, श्लोक ७६ ।

नियुक्त कर यह कार्य सौंपा। प्रबन्धचिन्तामणि[1] तथा पुरातन प्रबन्धसंग्रह[2]-में भी कुमारपालकी इस तीर्थयात्राका विस्तृत विवरण मिलता है।

कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा

आचार्य हेमचन्द्रने कुमारपालके समक्ष जैनधर्मकी द्वादश प्रतिज्ञाएँ रखते हुए प्राचीनकालके महान् जैनसन्तों, आनन्द तथा कामदेवके साथ ही तत्कालीन पाटनके सबसे धनी जैनछड्डुआका उदाहरण दिया। राजाने अगाध श्रद्धाके साथ सभी प्रतिज्ञाएँ कीं और इस प्रकार पूर्णतया जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। राजा सर्वदा असीम भक्तिके सहित प्रसिद्ध जैन नमस्कार मन्त्रका पाठ करता था और कहा करता था कि जो वस्तु वह अपनी शक्तिशाली सेनासे नहीं प्राप्त कर सकता था, वह केवल इस मन्त्रके उच्चारणसे सुलभ हो जाती थी। इस मन्त्रकी शक्तिमें उसकी ऐसी अगाध श्रद्धा थी कि इससे उसके शत्रुओंका दमन होता था। गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणका संकट दूर होता और उसके राज्यमें कभी अकाल नहीं पड़ता था।[3]

जयसिंह रचित कुमारपालचरितके पाँचसे लेकर दस सर्गोंमें उन परिस्थितियोंका वर्णन किया गया है, जिनके कारण वह जैनधर्ममें दीक्षित और जैनधर्मके प्रसार-प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इसमें कहा गया है कि आचार्य हेमचन्द्रके कथनपर उसने सर्वप्रथम मांस तथा मदिराका त्याग किया।[4] इसके पश्चात् हेमचन्द्रके आदेशानुसार राजा कुमारपाल उसके साथ सोमनाथ गया। हेमचन्द्रने शिवका आह्वान किया और शिवने प्रकट होकर

---

१. चलियो कुमारवालो सत्रुंजय तित्थ नमणत्थ

—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १७९।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश : पृ० ९३।

३. पुरातनप्रबन्धसंग्रह : पृष्ठ ४२, ४३।

४. कुमारपालप्रतिबोध : पृष्ठ ३१६–४१५।

जैनधर्मकी प्रशंसा की। फलस्वरूप कुमारपालने अभक्ष नियमको स्वीकार किया तथा जैनधर्मके गूढ़ सिद्धान्तोंपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दीक्षा धारण करते समय उसने मुख्यरूपसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ की थीं—राजरक्षा निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावत्जीवन किसी प्राणीकी हिंसा और आखेट न करना। मद्य-मांसका सेवन त्याज्य समझना। नित्य जिन-प्रतिमाका पूजन-अर्चन करना। अष्टमी और चतुर्दशीके सामयिक और प्रोषध आदि विशेष व्रतोंका पालन करना तथा रात्रिको भोजन न करना आदि-आदि।

जयसिंहने आगामी अध्यायमें हेमचन्द्र तथा कुमारपालके मध्य एक धार्मिक वाद-विवाद कराया है। सातवें सर्गमें हमें विदित होता है कि उसने हेमचन्द्रसे श्रद्धाधर्म स्वीकार कर राज्यमें पशु-हत्यापर प्रतिबन्ध लगाया था।[१] इस ग्रन्थके रचयिताका कथन है कि वह आज्ञा सौराष्ट्र, लाट, मालवा, ओभीकमेदापाट, मारी तथा सपादलक्ष देशमें लागू हो गयी थी।[२] इस आज्ञाका इतनी कठोरतासे पालन होता था कि सपादलक्षके एक व्यापारीने राक्षसके समान रक्त चूसनेवाले एक कीड़ेकी हत्या कर दी तो उसे चोरकी भाँति पकड़ लिया गया और उसे यूक विहारके शिलान्यासके लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देनेके लिए बाध्य होना पड़ा।[३]

किराडू शिलालेखमें जो कुमारपालके समयका है, यह लिखा है कि शिवरात्रि, चतुर्दशी तथा कतिपय अन्य निश्चित दिनोंमें कुमारपालने राजाज्ञा निकालकर पशुवधका निषेध कर दिया था। राजपरिवारका सदस्य आर्थिक दण्ड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राणदण्डके लिए प्रस्तुत होकर ही उप-

१. जयसिंह : कुमारपालचरित : ७ वाँ अध्याय, ५७७।

२. वही : ५८१–८२।

३. वही : ५८८।

युक्त दिन किसी पशुकी हत्या कर सकता था।[१] इसी आशयका आदेश रतनपुर नगरके एक शिलालेखमें भी प्राप्त हुआ है।[२] इस शिलालेखमें गिरिजादेवीकी उस निषेधाज्ञाका उल्लेख है, जिसमें विशेष तिथियोंको पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा था। इस आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवालोंके लिए अर्थदण्डकी व्यवस्था थी। नवरात्रमें बकरियोंका वध रोक दिया गया था और कुमारपालने अपने मन्त्रियोंको पशुहिंसा रोकनेके लिए काशी भेजा। जयसिंहकृत कुमारपालचरितके आठवें और नवें सर्गमें विभिन्न जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा चैत्यों और मन्दिरोंके निर्माणके वर्णन हैं। दसवें सर्गमें राजा कुमारपाल अपने गुरुको 'कलिकाल सर्वज्ञ'की उपाधि प्रदान करता है।[३]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें भी कुमारपालके जैन-धर्ममें दीक्षित होनेकी चर्चा आयी है। इस नाटकमें कुमारपालने चार व्यसनोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया था, उसपर विशेष प्रकाश डाला गया है। राज्य-द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका जो प्राचीन और परम्परागत नियम चला आ रहा था उसका कुमारपालने निषेध कर दिया था, इसका भी इस नाटकमें उल्लेख हुआ है।[४] नाटकमें राजा अपने दण्डपाशिकको द्यूत, मांसाहार, मदिरापान, हत्या-लूट तथा खाद्यपदार्थोंमें मिलावटकी अवैध पद्धतिके दमन और उन्मूलनका आदेश देता है।[५] यह आश्चर्यकी बात है कि वेश्या व्यसन तत्कालीन गुजरातमें

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृष्ठ ४४।

२. वी० पी० एस० आई० : २०५-७, सूची संख्या १५२३।

३. कुमारपालचरित : सर्ग १०, १०६। उसने परमार्हतकी उपाधि भी प्रदान की थी।

४. मोहराजपराजय : अङ्क ४ तथा ५।

५. वही : अङ्क ४।

कोई गम्भीर पाप न समझा जाता था।[1]

जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा

समस्त जैनग्रन्थकार कुमारपालके जैनधर्मकी दीक्षा लेनेके विवरण-पर एकमत हैं। शिलालेखादिके उल्लेखोंके आधारपर यह स्वीकार करना होगा कि उक्त वर्णन, सत्य और ऐतिहासिक घटनाके ही बोधक हैं। किराडू[2] तथा रतनपुर[3] शिलालेख विशेष तिथियोंपर पशुवधका प्रतिषेध करते हैं तो जालोर शिलालेखमें कुमारपालको परमार्हत कहा गया है।[4] इतना होते हुए भी इस तथ्यके प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालने अपने परम्परागत शैवधर्मका कभी तिरस्कार नहीं किया न उसके प्रति अपनी आदर श्रद्धाकी भावनाका ही परित्याग किया। जैन ग्रन्थकारोंने भी लिखा है कि कुमारपाल सोमेश्वरकी आराधना करता था और उसने सोमनाथका मन्दिर निर्मित कराया था।[5]

वेरावल शिलालेखमें कुमारपालको 'महेश्वर नृप' कहा गया है। यह शिलालेख सन् ११६९का है और इसीके कुछ वर्ष बाद ही सन् ११७४ में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके अधिकांश शिलालेखोंमें शिवकी प्रार्थना

---

१. वही।

२. इपि० इण्डि : खण्ड ११, पृ० ४४।

३. वी० पी० एस० आई० : २०५-७।

४. इपि० इण्डि : खण्ड ११, पृ० ५४-५५। 'हेमसूरिप्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महाराजाधिराज श्रीकुमारपालदेवा'।

५. द्व्याश्रयकाव्यमें अनहिलवाड़ामें कुमारपालेश्वर महादेवके मन्दिर के निर्माणका उल्लेख है। केदारेश्वर मन्दिरका पुनर्निर्माण भी कराया गया था।—वही। मन्दिरोंकी मरम्मतके सम्बन्धमें देखिए वसन्तविलास : ३,२६।

अङ्कित है, तो अनेकमें जैनदेवताओंकी प्रार्थना भी मिलती हैं। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें उसे 'परमअर्हत' कहा गया है। चित्तौड़-गढ़ उत्कीर्ण लेखके प्रारम्भमें ही 'ओम नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिवकी प्रार्थना भी मिलती है।[1] जैन इतिहासोंमें हेमचन्द्रके प्रभावके प्रति ब्राह्मणोंके द्वेषकी भी चर्चा आयी है। इस संघर्षमें ब्राह्मण सदा पीछे पड़ जाते थे और राजाके कोपभाजन ब्राह्मणोंकी रक्षा दयालु हेमचन्द्र द्वारा ही होती थी। किन्तु जैनोंके साथ राजाके पक्षपातकी बात सन्देहास्पद है। वह समानभावसे शैवों और जैनोंका आदर करता था। कुमारपाल जैन सिद्धान्तोंको हार्दिकतासे स्वीकार करता था और उसके अनुसार व्यावहारिक जीवनमें आचरण भी करता था। उसने जैनधर्ममें प्रतिपादित उपासक अर्थात् गृहस्थ-श्रावक धर्मका दृढ़ताके साथ पालन किया। ऐतिहासिककालमें कुमारपालके सदृश्य जैनधर्मका अनुयायी राजा शायद ही कोई हुआ हो।[2] इस प्रकार जैनधर्ममें कुमारपालका दीक्षित होना मुख्यतः उसकी आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास भावनाका ही परिणाम था। यों तो अणहिलपुरके संस्थापक वनराज चावड़ासे लेकर सिद्धराज जयसिंहके राज्य-काल तक प्रजावर्गमें जैनोंकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा, समाज तथा राजनीति दोनोंको प्रभावित कर रही थी, किन्तु कुमारपालके शासनकालमें उनका प्रामुख्य और प्राधान्य हुआ। महर्षि हेमचन्द्राचार्य मोढ़ बनिया थे और महामात्य उदयन भी श्रीमाली जातिके सम्पन्न उद्योगपति थे।[3] बारहवीं शताब्दीके गुजरातमें शैव और जैनधर्मोंमें जैसी परम्परागत सहिष्णुता चली आ रही थी, उसे ध्यानमें रखकर यह कभी नहीं स्वीकार किया जा सकता

---

१. इपि० इण्डि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

२. मुनि जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १२।

३. प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० ८२। इसी ग्रन्थमें जैनदल-द्वारा कुमारपालको सिंहासनारूढ़ करनेमें योग देनेका प्रसंग वर्णित है।

कि जैन कुबेर और लक्षाधिपतियोंके किसी प्रभाव-विशेष अथवा दबावके कारण उसने जैनधर्म स्वीकार कर, उसे राजधर्म घोषित किया था। हेम-चन्द्राचार्य-द्वारा जैनधर्ममें कुमारपालकी दीक्षाके मूलमें उसकी अपनी श्रद्धा और जैनधर्मके सिद्धान्तोंके प्रति उसके हार्दिक विश्वास ही प्रधान कारण थे।

अन्य धार्मिक सम्प्रदाय

इन दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायोंके अतिरिक्त देशमें अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंका भी अस्तित्व था। चौलुक्यकालमें सूर्यपूजा भी प्रचलित थी, यद्यपि इस समयके राजा सूर्यके प्रति भक्ति व्यक्त करनेवाला विरुद धारण नहीं करते थे। द्वयाश्रयमें जयसिंह-द्वारा अनेक देवी-देवताओंके मन्दिर बनवानेका उल्लेख है किन्तु इनमें सूर्यका मन्दिर नहीं है। अप्रकाशित सरस्वतीपुराणमें सूर्य मन्दिरका उल्लेख है, जो भायाल स्वामीके नामसे प्रसिद्ध था। कहते हैं कि सहस्रलिंग तालाबपर जब यह स्थित था तो जयसिंह सिद्धराज इसकी आराधना करते थे।[1] प्रसिद्ध जैनमन्त्री वस्तुपालने सूर्य, रत्नादेवी तथा राजादेवीकी मूर्तियोंका प्रतिष्ठापन किया था।[2] कुमारपाल-कालीन प्रभास पाटन शिलालेखमें काठियावाड़में पाशुपत सम्प्रदायके भी प्रचलित होनेका उल्लेख मिलता है।[3] शिलालेखका विश्लेषण तथा उसका अभिप्राय अर्थ स्पष्ट करनेपर यह विदित होता है, कि गण्डभावबृहस्पतिने पाशुपत सम्प्रदायके प्रचारके लिए प्रयत्न किया था। उसकी दूसरी व्याख्या करनेपर यह भी अर्थ किया जा सकता है कि सोमनाथका मन्दिर गण्डभावबृहस्पतिके आगमनके पूर्व पाशुपत मतका केन्द्र था किन्तु इस मन्दिर तथा यहाँ प्रवर्तित पाशुपत मत दोनोंका ही पतन हो चुका था, इसलिए गण्डभावबृहस्पति

---

१. दवे : महाराजाधिराज : पृ० २९१।

२. गणेश्वर शिलालेख : डब्लू० एम० आर०, राजकोट १९,२३, २४,१८।

३. वी० पी० एस० आई० : पृ० १८६।

उसकी रक्षा करने आया।[1] भाव बृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें भवानीपति (शिव), गणेश तथा सोमकी प्रार्थना है। गणेश्वर शिलालेखमें वस्तुपाल-द्वारा गणेश्वर मन्दिरमें एक मार्ग बनानेका उल्लेख मिलता है।[2] यद्यपि उक्त स्थानका पता नहीं चला है फिर भी इसमें जो तथ्य व्यक्त किया गया है उसके अनुसार १२वीं शतीमें काठियावाड़में गणेश-पूजन भी प्रचलित था। मध्यकालीन गुजरातमें वैष्णव सम्प्रदायका भी अस्तित्व था। हेमचन्द्रने लिखा है कि जयसिंहने सहस्रलिंग तालाबके तटपर एक ऐसा मन्दिर बनवाया जिसमें दशावतारकी झाँकी थी।[3] जयसिंह तथा कुमारपालके समयके दोहाद शिलालेखमें यह अंकित है कि जयसिंहने गोगनारायणका मन्दिर निर्माण करानेके लिए दधिपद्रमें एक मन्त्री नियुक्त किया था।[4] इसी मन्दिरमें कुमारपालके समय और भी दान दिये जानेके उल्लेख मिलते हैं।

विभिन्न मन्दिरों तथा देवालयोंकी व्यवस्था दान दिये हुए ग्रामोंसे होती थी। व्यक्तिगत मन्दिरोंका आर्थिक संचालन जनतापर लगे विशेष 'कर'से होता था और कभी-कभी राजकीय चुंगी-गृहको भी अपनी आयका एक हिस्सा मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिए देना पड़ता था। मंगरोल उत्कीर्ण लेखमें उन करोंके विवरण दिये गये हैं जो चुंगी, द्यूतगृह, आदि विभिन्न पेशोंसे वसूल किये जाते थे। दूकानदारों तथा व्यापारियों-द्वारा दिये जानेवाली ऐच्छिक रक़मकी भी इसमें चर्चा है। वटुकों और पुजारियोंके वेतन तथा मन्दिरकी व्यवस्था-सम्बन्धी अन्य बातोंका भी इसमें उल्लेख है।

---

१. शिलालेखमें अङ्कित है कि "गण्ड पाशुपत केन्द्रकी रक्षा करना चाहता था और उसने कुमारपालसे ध्वस्त सोमनाथके मन्दिरके निर्माणके लिए प्रार्थना की थी।"

२. द्वयाश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११९।

३. इण्डि० एण्टी० : खण्ड १०, पृ० १५९-६०।

४. वी० पी० एस० आई० : पृ० १५८।

धार्मिक सहिष्णुताकी भावना

सभी धर्मोंके मूल तत्त्व एक हैं और सभी विभिन्न मार्गोंसे होते हुए एक ही लक्ष्य-स्थानपर पहुँचते हैं। फिर भी धर्मके क्षेत्रमें लोगोंमें सहिष्णुताके साथ संकीर्णता भी पायी जाती रही है। फ़ोर्ब्स् ने लिखा है कि इस समय दो प्रमुख धर्मों—जैन तथा ब्राह्मण—में परस्पर विरोध था।[1] किन्तु तत्कालीन शिलालेख और प्रभूत जैन-साहित्यसे इस तथ्यकी पुष्टि नहीं होती। फ़ोर्ब्स्-की 'रासमाला'में ब्राह्मण और जैन आचार्योंमें संघर्ष और कटुभावनाको व्यक्त करनेवाली अनेक कहानियोंके उल्लेख मिलते हैं। इनमें-से प्रमुख निम्नलिखित हैं—ब्राह्मण परम्पराके अनुसार कुमारपालने मेवाड़के सिसौ-दिया वंशकी राजकुमारीसे विवाह किया था। जब रानीने राजाकी वह प्रतिज्ञा सुनी कि राजमहलमें प्रवेशके पूर्व उसे हेमचन्द्रके मठमें जाना होगा, तो उसने अनहिलवाड़ा जाना अस्वीकार किया। कुमारपालके चारण जय-देवने रानीको विश्वास दिलाया और इसपर रानी अनहिलवाड़ा गयी। उसके आनेके कई दिन बाद हेमाचार्यने सिसौदिया रानीके अपने मठमें न आनेकी बात कही। कुमारपालने रानीसे वहाँ जानेके लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रानी बीमार पड़ी और चारणोंकी स्त्रियाँ उसे अपने घर ले आयीं। चारण उसे घर पहुँचाने ले जाने लगा। जब कुमारपालने यह सुना तो उसने दो हज़ार घुड़सवारोंके साथ पीछा किया। रानीने जब यह सुना तो उसका साहस जाता रहा और उसने आत्महत्या कर ली।[2] पहले ही कहा जा चुका है कि उक्त ब्राह्मणों और चारणोंकी परम्परा, तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्योंकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती और न इस धार्मिक द्वेषकी भावनाका इतिहास-सम्मत सामान्य आधार ही मिलता है।

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

२. वही : अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

ब्राह्मणों और जैनोंमें पारस्परिक संघर्षका परिचय करानेवाली एक दूसरी कहानी भी है। एक दिन कुमारपाल जब मार्गसे जा रहा था तो उसने हेमाचार्यके एक शिष्यसे पूछा कि आज मासकी कौन तिथि है। वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी, किन्तु जैन साधुने भ्रमवश पूर्णिमा कह दिया। कुछ ब्राह्मणोंने जब यह सुना तो जैन साधुकी हँसी उड़ाते हुए कहा—"ये सिर घुटाये हुए साधु क्या जानें कि आज अमावस्या है!" कुमारपालने यह सब सुन लिया था। राजप्रासाद पहुँचते ही उसने हेमाचार्य तथा ब्राह्मणोंके प्रधानको बुला भेजा। इसी बीच हेमचन्द्रका शिष्य अत्यन्त दुःखी और लज्जित हो मठमें पहुँचा। हेमचन्द्रने उससे सारा विवरण पूछा और दुःखित न होनेकी बात कही। तबतक कुमारपालका सन्देशवाहक वहाँ पहुँच चुका था। संवाद पाकर हेमाचार्यने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया। कुमारपालने उनसे पूछा कि आज कौनसी तिथि है? ब्राह्मण आचार्यने कहा कि आज अमावस्या है किन्तु हेमचन्द्रने कहा कि आज पूर्णिमा है। ब्राह्मणोंने कहा कि सन्ध्याका चन्द्रमा ही वास्तविक स्थिति बता देगा। यदि पूर्णिमाका चन्द्र निकला तो सभी ब्राह्मण इस राज्यसे निकल जायेंगे। यदि चन्द्रमा न निकले तो जैन-साधुओंका निष्कासन हो। हेमाचार्यने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मठ वापस पहुँचे। उनकी एक सिद्धदेवी थीं, उन्हींकी सहायतासे पूर्व दिशामें ऐसी कृत्रिमता उत्पन्न की गयी, जिससे सभीको विश्वास हो गया कि आज पूर्णिमा है। इसके पश्चात् घोषित किया गया कि ब्राह्मण हार गये और सभीको राज्य छोड़कर चले जाना चाहिए। दूसरे दिन प्रातः कुमारपालने ब्राह्मणोंको बुला राज्य छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय शंकर स्वामीका पाटनमें आगमन होता है। शंकर स्वामीने आगे बढ़कर कहा राज्यसे किसीको निष्कासित करनेकी क्या आवश्यकता है। "नौ बजे समुद्र अपनी मर्यादा-सीमा तोड़कर सम्पूर्ण देशको उदरस्थ कर लेगा।" राजाने हेमचन्द्रको बुला भेजा और पूछा कि क्या यह सत्य

है ? हेमचन्द्रने जैन सिद्धान्तोंके अनुसार कहा कि यह संसार न कभी निर्मित हुआ और न कभी नष्ट होगा। शंकर स्वामीने एक जलघड़ी मँगवायी और कहा देखना चाहिए क्या होता है। तीनों वहीं बैठ गये। जब नौ बजा तो वे प्रासादके ऊपरी भवनमें पहुँचे जहाँसे उन्होंने देखा कि समुद्रकी लहरें उमड़ती हुई चली आ रही हैं। लहरें बढ़ती गयीं और सारा नगर जलमग्न हो गया। राजा तथा दोनों आचार्य ऊपरी मंज़िलोंमें चढ़ते रहे किन्तु जलका वेग ऊपरकी ओर निरन्तर बढ़ता ही गया। अन्तमें वे सातवीं और अन्तिम मंज़िलपर पहुँचे। सबसे ऊँचे वृक्ष तथा मन्दिरके शिखर जलमें समाधिस्थ थे। उमड़ती हुई समुद्रकी भयंकर लहरोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था। कुमारपालने भयभीत होकर शंकर स्वामीसे बचनेका उपाय पूछा। शंकर स्वामीने कहा कि पश्चिम दिशासे एक नाव आवेगी जो इस वातायनके निकटसे ही जायेगी। जैसे ही वह हमारे निकट आवे हम उछल-कर उसपर बैठ जायें। तीनोंने अपने वस्त्र सँभाले और नावमें तत्परतासे बैठ जानेका उपक्रम किया। तत्काल बाद ही एक नौका दिखायी दी। शंकर स्वामीने राजाका हाथ पकड़कर कहा कि हम दोनों नावमें बैठनेमें एक दूसरेकी सहायता करेंगे। इतनेमें नौका वातायनके निकट आयी और राजाने उसमें कूदनेका प्रयत्न किया किन्तु शंकर स्वामीने उन्हें पीछे खींच लिया। हेमचन्द्र खिड़कीसे कूद गये थे। समुद्र और नौका वस्तुतः और कुछ नहीं, मायाकी रचना थी। इसके पश्चात् जैन साधुओंपर उत्पीड़न होने लगा और कुमारपाल शंकर स्वामीका शिष्य हो गया।

धार्मिक संघर्षकी इन कथाओंमें उस समय वर्ग-विशेषकी धार्मिक संकी-र्णताकी स्थितिका परिचय मिलता है। जैनधर्मका अभ्युदय और उत्कर्ष न देख सकनेवाले संकीर्ण लोगोंकी कल्पना ही इन कथाओंका आधार है। न तो इस प्रकारकी घटनाओंका तत्कालीन साहित्यमें उल्लेख मिलता है और न कोई प्रामाणिक एवं मान्य आधार। इन्हें ऐतिहासिक तथ्य न मानकर कपोल-कल्पनाकी ही कोटिमें रखना उचित होगा।

नवीन युगका समारम्भ

ब्राह्मण और जैनधर्मकी पारस्परिक सद्भावनापूर्ण स्थिति इस युगकी ऐतिहासिक विशेषता थी। यदि सामाजिक अभ्युत्थानका विचार किया जाये तो विदित होगा कि जैनधर्मके अभ्युदयके साथ देशमें एक नवीन जागरण और संस्कृतिके युगका समारम्भ हुआ था। कुमारपालप्रतिबोध तथा मोहराजपराजयके रचयिताओंने समाजमें प्रचलित उन बुराइयोंका उल्लेख किया है जिनसे सामाजिक स्तर निम्नतर होता जा रहा था। पशु-हिंसा, द्यूतक्रीड़ा, मांस, मदिरा-सेवन, वेश्या-व्यसन, शोषण आदिसे जनता का धन-धर्म विलुप्त और मानसिक पतन होता जा रहा था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालने किस प्रकार विशेष तिथियोंको पशुवध का प्रतिषेध कर दिया था। यह तथ्य विभिन्न जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नहीं, किराडू[1] तथा रतनपुर[2] शिलालेखोंमें भी उत्कीर्ण है। यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपालको अपने दंडपाशिकको यह आदेश देते हुए चित्रित किया है कि जुआ, मांसाहार, मदिरापान तथा पशुहत्याके पापका दमन किया जाये। चोरी और खाद्यपदार्थोंमें मिलावटको नगरसे निष्कासित कर दिया गया था। दण्डपाशिक इनकी खोजमें जाता है और सबको पकड़कर लाता है। सभी राजाके समक्ष उपस्थित किये जाते हैं। ये अपने पक्ष समर्थनका तर्क देते हुए क्षमाकी याचना करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उन्हींके द्वारा राज्यको बहुत भारी आय होती है, किन्तु राजा उनकी एक भी नहीं सुनता और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[3]

इस समयकी एक क्रूर-राजनीतिक परम्परा और प्रथा यह थी कि यदि कोई राज्यमें निःसन्तान मर जाता तो उसकी समस्त सम्पत्ति राज्य

---

१. एपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४।

२. वी० पी० एस० आई० : २०५–७, सूची संख्या १५२३।

३. मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, पृ० ८३-११०।

अपने अधिकारमें कर लेता था। ऐसे व्यक्तिकी मृत्यु होते ही, राज्याधिकारी उसके घर तथा उसकी सारी सम्पत्तिपर जब अधिकार कर लेते और जब पंचकुलकी नियुक्ति हो जाती, तभी शव अन्तिम संस्कारके लिए सम्बन्धियोंको दिया जाता था। इससे जनताको घोर कष्ट और व्यथा होती थी। जैनधर्मकी शिक्षाका राजापर सबसे बड़ा जो प्रभाव दृष्टिगत हुआ, वह यह कि उसने निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका राजनियम (मृतधनापहरण) वापस ले लिया।[1] निर्वंशकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारके प्रजापीड़क नियमकी कुमारपालपर कैसी घोर प्रतिक्रिया हुई और उसका कैसा प्रभाव पड़ा था, इस सम्बन्धमें द्वयाश्रय और मोहराजपराजयमें विशद विवरण मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्यने द्वयाश्रयमें ऐसे एक प्रकरणका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन जब रात्रिके समय कुमारपाल प्रगाढ़ निद्रामें सो रहा था तो निस्तब्धतामें उसे एक स्त्रीका रुदन सुनायी पड़ा। वेश बदलकर जब वह राजमहलसे उक्त स्थानपर पहुँचा तो उसने देखा कि वृक्षके नीचे एक स्त्री गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्याकी तैयारी कर रही है। राजाने उससे इसका कारण पूछा। तब उस स्त्रीने अपने पति और पुत्रकी मृत्युका घटना-प्रकरण बताते हुए कहा कि अब मेरी समस्त सम्पत्तिपर राजाका अधिकार हो जायेगा और मेरा कोई आधार न रह जायेगा, इससे अच्छा है कि मैं आत्मघात कर लूँ। इसपर राजाने उसे ऐसा करनेसे मना किया और आश्वासन दिया कि उसकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारी अधिकार न करेंगे। प्रातःकाल राजाने मन्त्रियोंको बुलाकर 'मृतधनापहरण'को समाप्त करते हुए उसके निषेधकी आज्ञा निकाली। कहते हैं कि इस प्रकार प्रतिवर्ष राजकोषमें एक करोड़ रुपये आते थे, किन्तु कुमारपालने इसकी तनिक परवाह न की और उक्त प्रथाका निषेध कर दिया। इसी प्रकारकी एक दूसरी घटनाका वर्णन

---

१. मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७०।

यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें मिलता है। कुबेर नामक करोड़पति नगरसेठकी मृत्यु हो जाती है। वह निःसन्तान था पर उसकी माता जीवित थी। वह शोकमें विह्वल थी। पुत्रशोक और धनशोकके कारण उसके दुःखका पारावार न था। राजाको इसकी सूचना मिलती है। वह बहुत उद्विग्न होता है। राज्यकी क्रूर नीतिका वीभत्स तथा शोकसन्तप्त परिवारका करुण दृश्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। वह कुबेर-की माताके यहाँ जाता है। कुबेरके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित होता है। कुबेरके मित्रसे वह सारा विवरण पूछता है। कुमारपाल कुबेर-की माताको सान्त्वना देता है और कहता हैं कि मैं भी तुम्हारा ही पुत्र हूँ। उधर राज्यके अधिकारी कुबेरकी समस्त सम्पत्तिको एकत्र कर ढेर लगा देते हैं। कुमारपाल नगरसेठों और महाजनोंके सम्मुख घोषणा करता है कि आजसे निःसन्तान मृतकोंके धनको राज्यकोषमें लेनेके नियमका मैं निषेध करता हूँ। राजा अपने राजप्रासादमें लौटता है और मन्त्रियोंसे परामर्श कर निषेधाज्ञा घोषित करता है—

निःशूकैः शकितं न यन्नृपतिभिस्त्यक्तुं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याः क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
आपाथोधिकुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धनं
बिभ्राणः सदयं प्रजासु हृदयं मुञ्चत्ययं तत् स्वयम्॥

कुमारपालके इस महान् सामाजिक और राजनीतिक सुधारकी प्रशंसा करते हुए जैन आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं—

न यन्मुक्तं पूर्वैं रघु-नहुष-नाभाक-भरत-
प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
विमुञ्चन् सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
कुमार! क्ष्मापाल! त्वमसि महतां मस्तकमणिः॥

निःसन्तान मृतजनकी सम्पत्तिको राज्यकोषमें न लेनेकी घोषणा ऐति-हासिक और युगप्रवर्तक थी। सत्ययुगके महान् राजा रघु, नहुष, नाभाक

और भरत आदि परम धार्मिक नरेशोंने भी जैसी कीर्तिका अर्जन न किया था वैसी धवलकीर्ति कुमारपालने अपने इस कार्यसे अर्जित की। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने लिखा है—"बारहवीं शतीमें गुजरातके राजा कुमारपालने बड़ी तत्परतासे पशुओंके वधका निषेध किया और इस नियमका उल्लंघन करनेवालोंपर कठोर दण्डकी व्यवस्था की। एक अभागे व्यापारीको एक विषैले कीड़ेकी हत्याके अपराधमें अनहिलवाड़ाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया गया और उसकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी। उक्त सम्पत्तिसे एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। कुमारपाल-द्वारा निर्मित इस विशेष न्यायालयकी कार्यसीमा और निर्णय अशोकके धर्ममहामात्रोंके कार्यों एवं निर्णयोंकी भाँति थी।[1]"

जैनधर्मकी शिक्षासे प्रभावित होकर कुमारपालने एक सत्रागारकी स्थापना की जहाँ अपंग जैन साधकोंको भोजन-वस्त्र दिया जाता था। इसीके निकट एक मठ (पोषधशाला) का भी निर्माण किया गया जहाँ धार्मिक प्रवृत्तिके लोग एकान्त साधना कर सकते थे। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्थाका भार सेठ अभयकुमारको सौंपा गया था।[2] इस प्रकार धर्मके प्रभावसे राजनीति और समाजके स्तर दोनोंमें परिवर्तन हुए थे। निर्धन और असहायकी सहायताके लिए मानवीय हितके कार्य प्रारम्भ किये गये। इन धार्मिक तथा सामाजिक नव-व्यवस्थाओंके नियोजनने भारतीय इतिहास और समाजको अत्यधिक प्रभावान्वित किया था और उसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कुमारपालकी इस अहिंसाप्रवर्तक रीतिका यह फल है कि वर्तमानकालमें भी सबसे अधिक अहिंसक प्रजा गुजराती प्रजा है और सबसे अधिक परिमाणमें अहिंसा धर्मका पालन गुजरातमें ही होता है। गुजरातमें हिंसक यज्ञ-याग प्रायः

---

१. विन्सेण्ट स्मिथ : भारतका इतिहास पृष्ठ : १६१–२।

२. कुमारपालप्रतिबोध।

उसी समयसे बन्द हो गये हैं और देवी-देवताओंके निमित्त होनेवाला पशुवध भी दूसरे प्रान्तोंकी तुलनामें बहुत कम है। गुजरातका प्रधान किसान-वर्ग भी मांसत्यागी है। भले ही अतिशयोक्ति हो और उसका उपहास भी हो, किन्तु तथ्य यह है कि इसी पुण्यमय परम्पराके प्रतापसे जगत्‌की सबसे श्रेष्ठ अहिंसामूर्ति महात्माको जन्म देनेका अद्वितीय गौरव भी गुजरातको प्राप्त हुआ है।[1]

---

१. मुनि जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल : पृष्ठ १८।

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानक-सा प्रतीत होता है, वास्तवमें बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमार-पालके संरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनाका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पड़ा और फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नयी लहर और बाढ़-सी आ गयी।

इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन-भण्डारोंमें भरे पड़े हैं। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भण्डारोंमें रखे ताड़पत्रकी पाण्डुलिपियोंकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उस कालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पड़ता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनाएँ मिलती हैं। विण्टरनिट्ज़को उस समय तक जितनी रचनाएँ प्राप्त हुई थीं, उनका विभाजन उसने प्रबन्धकथा, काव्य, कोश तथा उपदेशात्मक साहित्यके अन्तर्गत किया है।[2] श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीने भी प्राप्य सामग्रीका विश्लेषण और उसपर विचार किया है।[3]

जयसिंह और कुमारपाल साहित्यके महान् संरक्षक थे। वडनगर प्रशस्ति (३०वीं पंक्ति)में कहा गया है कि जयसिंह सिद्धराजने श्रीपालको अपना भाई माना था और वह कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। प्रबन्धोंमें इस बातका उल्लेख है कि कविचक्रवर्ती श्रीपाल जयसिंहदेवका राजकवि था। वीरोचन-पराजय उसकी प्रमुख कृति थी। वह दुर्लभराज मेरु तथा श्रीस्थल सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके लिए प्रशस्ति लिखता था, इसका वर्णन प्रभावकचरितमें मिलता है।[4] पाटन अनहिलवाड़ाके निकट जयसिंह-द्वारा निर्मित सहस्रलिंग तालाबकी प्रशंसामें श्रीपालने जो प्रशस्ति लिखी थी उसका उल्लेख मेरुतुंगने भी किया है।[5] इस प्रशस्तिमें लिखा है कि कुमारपालके

---

१. डेस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव मैन्युस्क्रिप्ट इन जैन-भण्डारस् ऐट पाटन : जी० ओ० एस०, ७५, बड़ौदा १९३७।

२. हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर : खण्ड २, पृ० ५०३–१४।

३. गुजरात ऐण्ड इट्स लिटरेचर : पृ० ३६–४७।

४. प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०६–८।

५. प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५५–६।

समय भी वह अपने पदपर बना रहा। सोमप्रभाचार्यने इसका उल्लेख किया है कि कवि सिद्धपाल कुमारपालके राजदरबारमें था।[1] कुमारपालकी दिन-चर्य्याका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी सभामें उपस्थित हो धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार-विमर्श करता था।[2] इनमें कवि सिद्धपाल मुख्य थे और ये सदा राजाको कहानियाँ तथा कथाप्रसंग सुनाकर प्रसन्न करते थे।[3] फ़ोर्ब्स् ने भी लिखा है कि कार्य समाप्त हो जानेपर पण्डित और विद्वान् आते थे और अमूल्य साहित्य तथा व्याकरणपर विचार एवं विवेचन होता था।[4] इतनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि कुमारपाल महान् साहित्यप्रेमी था।

चौलुक्यकालीन साहित्य-साधना

प्राचीन भारतीय इतिहासमें जितने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुए, उनमें चौलुक्यकालीन (९६१ ई०–१२४२ ई०) साहित्य-साधना और सांस्कृतिक पुनर्जागरणका अपना विशेष एवं विशिष्ट महत्त्व है। पाटलीपुत्र, उज्जयिनी, कान्यकुब्ज-जैसी उच्च सांस्कृतिक परम्पराके केन्द्र सौराष्ट्रके वल्लभीपुर, धवलका तथा अनहिलवाड़-पाटनमें भी थे। दसवीं शताब्दीके उत्तरार्धसे तेरहवीं शतीके पूर्वार्ध तक, चौलुक्य शासनकालमें गुजरातमें महान् साहित्यिक अनुष्ठान हुआ जिसके फलस्वरूप राष्ट्र भारतीका भण्डार अत्यधिक समृद्ध एवं अलंकृत हुआ। तीन-सौ वर्षोंकी इस अखण्ड साहित्य-साधनामें, दो युग-निर्माता साहित्य-स्रष्टा हुए और इनकी साहित्यिक मण्डलीमें शताधिक साधकोंने साहित्यके सभी अंगोंकी रचनाएँ कीं। भारतके इतिहासमें ऐसे राजवंश इने-गिने ही होंगे, जिनके उत्तराधि-

---

१. कुमारपालप्रतिबोध।

२. वही : पृ० ४२३।

३. वही : पृ० ४२८।

४. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

कारियोंने अपने पूर्वपुरुषोंके साहित्य एवं संस्कृति-प्रेमको इस प्रकार एकनिष्ठ तथा क्रमबद्ध बनाये रखा हो।

चौलुक्योंके पूर्व वल्लभीके मैत्रकोंके शासनकालमें सौराष्ट्रका वल्लभीपुर ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मका महान् केन्द्र था। चीनी यात्री ह्वेनच्यांगने इस नगरीके वैभवका जैसा वर्णन लिखा है, उससे उक्त बात स्पष्ट हो जाती है। ह्वेन-च्यांग लिखता है कि "इस सांस्कृतिक नगरीमें सैकड़ों संघाराम थे जिनमें लगभग छह हज़ार बौद्ध भिक्षु हीनयान शाखाका अध्ययन-मनन करते थे।"[1] ह्वेन-च्यांगके समसामयिक इत्सिंगने भी इस तथ्यकी पुष्टि यह लिखते हुए की है: "दक्षिण विहारमें नालन्दा तथा सौराष्ट्रमें वल्लभी, भारतमें ऐसे दो स्थल हैं जिनकी तुलना चीनके अत्यन्त सुप्रसिद्ध विद्यापीठोंसे की जा सकती है और जहाँ बौद्ध-दर्शनके अध्ययन निमित्त दो-तीन वर्षोंके लिए जिज्ञासु विद्यार्थी-समूह आते थे।"[2]

पाँचवीं-छठी शताब्दीमें वल्लभीपुरके बाद सातवीं शताब्दीमें गुर्जरोंकी प्रथम राजधानी श्रीमाल भी ब्राह्मण तथा जैन विद्याका महान् केन्द्र रहा। जब यह स्थान राजधानी न रहा, तो यहाँके प्रतिभा-सम्पन्न विद्वानोंने गुजरातके अन्यान्य सांस्कृतिक केन्द्रोंमें जाकर साहित्य निर्माण तथा संस्कृतिके उन्नयनका कार्य सम्पन्न किया। श्रीमालके पतनके पूर्व ही अनहिलवाड़ पाटनकी स्थापना, सरस्वती नदीके तटपर चावड़ा जातिके प्रधान वनराजने ७४६ ईस्वीमें की। चौलुक्यवंशके प्रतिष्ठाता मूलराजने ९४२ ईस्वीमें यहीं चौलुक्य राज्यकी स्थापना की। मूलराजके शासनकालसे ही गुजरात सर्वप्रथम प्रान्तके अर्थमें गृहीत होने लगा। गुर्जर-साम्राज्यकी स्थापनाके बाद अनहिलवाड़ पाटन ब्राह्मण जैन विद्वानों तथा कवियोंकी महान् साहित्य-

---

१. बील: बुद्धिस्ट रेकर्ड्ज़ ऑव् द वेस्टर्न वर्ल्ड: बी० के० ११, पृ०-२०८

२. स्मिथ: अर्ली हिस्ट्री ऑव् इण्डिया: पृ० ३१४।

साधनाका, देश-विश्रुत केन्द्र बन गया। तीन-सौ वर्षोंके अखण्ड साहित्य-निर्माण यज्ञमें युगनिर्माता आचार्य हेमचद्र तथा महामात्य वस्तुपालने स्वयं तथा उनकी साहित्य-मण्डलीने महाकाव्य, नाटक, व्याकरण, छन्द, न्याय, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, स्तोत्र, प्रशस्ति, प्रबन्ध, कविता, जैन ग्रन्थोंकी टीकाएँ, अपभ्रंश रास, कोश, इतिहास आदि ग्रन्थोंका प्रचुर परिमाणमें प्रणयन किया।

साहित्यिक सांस्कृतिक परम्परा

चौलुक्यकालीन साहित्य-निर्माणकी तीन शताब्दियोंकी परम्परा तथा पृष्ठभूमिपर विचार किया जाये तो पूर्ववर्ती साढ़े तीन-सौ वर्ष और परवर्ती साढ़े तीन शताब्दियोंके सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं उनके केन्द्रोंकी ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार पूरे सहस्र वर्षकी साहित्य-साधनाके अन्योन्याश्रित सम्बन्धों एवं विकास-दर्शन-द्वारा ही चौलुक्यकालीन साहित्य-निर्माणका महत्त्व एवं मूल्यमापन सम्भव है। इस युगमें गुजरातमें जो नवीन साहित्यिक चेतना तथा जागर्तिके दर्शन होते हैं, उसमें एक ओर तो चौलुक्य नरेशोंका साहित्य-प्रेम और उनकी संरक्षण-वृत्ति है और दूसरी ओर है इस कालके आचार्यों, विद्वानों तथा जैन साधकोंका एकान्त मनन एवं एकनिष्ठ साधना। फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक एवं साहित्यिक रचनाओंकी बाढ़-सी आ गयी। इस युगमें जितना प्रभूत साहित्य-निर्माण हुआ, उसका अधिकांश अब भी गुजरातके जैन भण्डारोंमें भरा पड़ा है और अप्रकाशित है।

इस युगके महान् साहित्य-सर्जकोंके व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्वपर प्रकाश डालनेसे पूर्व, गुजरातके प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों तथा विद्यापीठोंकी संक्षेपमें यहाँ चर्चा अप्रासंगिक न होगी। वस्तुतः अनहिलवाड़के सांस्कृतिक पुनरुत्थानमें, गुजरातके इन साहित्यिक तीर्थोंका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। छठी शताब्दीसे तेरहवीं शती तकके सुदीर्घ कालमें गुजरातमें चार स्थान

देश-विदेश प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र रहे। इनके नाम क्रमशः हैं—(१) सौराष्ट्रका वल्लभी या वल्लभीपुर, (२) गुर्जरोंकी प्रथम राजधानी श्रीमाल या भिन्नमाल, (३) चौलुक्योंकी राजधानी अनहिलवाड़ पाटन ८ तथा (४) तेरहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें धवलकूट (अहमदाबाद)। इनमें प्रथम छठी तथा सातवीं शताब्दीमें, द्वितीय सातवीं शताब्दीमें, तृतीय आठवींसे लेकर बारहवीं शताब्दी और चौथी तेरहवीं शताब्दीमें सांस्कृतिक उत्थानके लिए प्रख्यात है। इनकी महत्ता इसीसे विदित होती है कि मध्यकालीन संस्कृत साहित्यके निर्माणमें इन्हीं केन्द्रोंके विद्वानोंने अपना महान् योगदान किया है। यही नहीं, इन विद्यापीठोंमें समस्त शास्त्रों तथा विद्याओंका अध्ययन-अध्यापन होता था और दूर-दूरसे अध्ययनार्थी यहाँ आकर निवास करते थे। इन चारों सांस्कृतिक तीर्थों में सैकड़ों संघाराम, सहस्रों ब्रह्मशालाएँ, सहस्रों मठ तथा विहार और प्रख्यात पुस्तकालय स्थापित थे।

गुजरातके इन चारों सांस्कृतिक केन्द्रोंकी साहित्यिक देन, भारतीय साहित्यमें अमर तथा उसकी स्थायी सम्पत्ति है। इस बातका उल्लेख पहले किया जा चुका है कि वल्लभीपुर, ब्राह्मण तथा जैन संस्कृतिका सुप्रसिद्ध केन्द्र रहा है। कथासरित्सागरकी ३२वीं तरंगमें वह प्रकरण मिलता है, जिसमें विष्णुदत्तके अन्तरवेदीसे विद्याध्ययन करने वल्लभी जानेका उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि ग्यारहवीं शताब्दीमें रचित उक्त ग्रन्थमें जिस घटनाकी चर्चा की गयी है वह सुदूर अतीतकालकी है और ईसाकी प्रथम शताब्दीमें विद्यमान गुणाढ्यकी (अब लुप्त) बृहत्कथाका एक प्रसंग है। संस्कृत-साहित्यके सर्वप्रथम व्याकरण 'भट्टिकाव्य' अथवा 'रावणवध'की रचना वल्लभीमें ही हुई। विद्वानोंका मत है कि इस रचनाको आचार्य हेमचन्द्र के द्वयाश्रय महाकाव्यकी पूर्ववर्ती कृति माना जा सकता है, जिससे उन्हें कालान्तरमें व्याकरण रचनाकी प्रेरणा प्राप्त हुई थी। वल्लभीके उत्कीर्ण लेखोंमें संस्कृतके गद्य-काव्यकी शैलीका प्रारम्भिक स्वरूप देखनेको मिलता है। वल्लभी जैनधर्मका कितना महत्त्वपूर्ण केन्द्र था उसका आभास इसी

बातसे हो जाता है कि, महावीरके निर्वाणके बाद नौवीं शताब्दीमें आर्य नागार्जुनने यहाँ अखिल भारतवर्षीय जैन-परिषद् आयोजित की थी। इसी सांस्कृतिक नगरीमें मल्लवादिन नामक महान् विद्वान् हुए, जिनका प्रभाव गुजरातके साहित्यिक पुनरुत्थानमें दृष्टिगत होता है। आचार्य मल्लवादिन, जैन तर्कशास्त्र द्वादश न्यायचक्रके महान् प्रणेता हो गये हैं। आचार्य हेमचन्द्रके सिद्धहेम व्याकरणमें, प्रभाचन्द्र सूरिके प्रभावक-चरित्रमें, मेरुतुंगकी प्रबन्धचिन्तामणिमें, राजशेखरके प्रबन्धकोश तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंमें आचार्य मल्लवादिनका अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उल्लेख करते हुए उन्हें अपने युगके प्रकाण्ड पण्डितके रूपमें स्मरण किया गया है। अरबोंके आक्रमण (७८९ ईस्वी)से वल्लभी नगरीका सांस्कृतिक वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो गया। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेण्ट स्मिथने लिखा है कि वल्लभीके बाद, पश्चिमी भारतका प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र अनहिलवाड़ हो गया, जहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी तक वैभव बना रहा।[१]

वल्लभीके पश्चात् क्रम आता है, गुर्जरोंकी प्रथम राजधानी श्रीमाल या भिन्नमालका। 'श्रीमाल पुराण' से इस नगरीके प्राचीन वैभव और विद्या-केन्द्रोंका परिचय प्राप्त होता है। यह ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध विद्या का महान् केन्द्र था। यहाँ एक-सहस्र ब्रह्मशालाएँ तथा चार-सहस्र मठ थे, जिनमें विभिन्न विद्याओंकी शिक्षा प्रदान की जाती थी।[२] ह्वेनसांगने इसकी भौगोलिक अवस्थितिका उल्लेख करते हुए यहाँके उत्कीर्ण प्राचीन लेखोंकी भी चर्चा की है। संस्कृत-साहित्यके प्रख्यात साहित्य-निर्माता महाकवि माघ के प्रपितामह श्रीपाल नरेशके महामन्त्री थे। माघके शिशुपालवधमें राजा वर्मलाटका उल्लेख आया है। संस्कृतके महान् कथाकार सिद्धर्षि, जैन दार्शनिक हरिभद्र, ज्योतिषशास्त्रके प्रणेता ब्रह्मगुप्त और महान् साहित्य-

---

१. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया : पृ० ३१४–१५।

२. श्रीमाल पुराण : अध्याय १२, श्लोक २२।

प्रेमी महामान्य वस्तुपाल श्रीमालके ही थे। जब श्रीमालका वैभव ११४७ ईस्वीमें समाप्त हो गया तो भारी संख्यामें विद्वान्, ब्राह्मण, कलाकार आदि यहाँसे अनहिलवाड़पाटन चले गये और गुजरातके इतिहासमें गौरवपूर्ण योगदान दिया। अनहिलवाड़ पाटनका सांस्कृतिक वैभव, दसवीं शताब्दीके उत्तरार्धसे प्रारम्भ होता है, जब चौलुक्य वंशके संस्थापक मूलराजने उत्तरापथके विद्वान् उदीच्य अथवा औदीच्य ब्राह्मणोंको आमन्त्रित कर राज्यमें बसाया। यह सांस्कृतिक विकास सिद्धराज जयसिंह तथा उसके उत्तराधिकारी कुमारपालके शासनकालमें अपनी चरम सीमापर पहुँच गया, जिसे हम चौलुक्यशासनका स्वर्णयुग कह सकते हैं। इस युगमें साहित्यका सर्वतोमुखी निर्माण और विकास हुआ। भीमदेव प्रथमके शासनकालमें महमूद ग़ज़नीके आक्रमणके बावजूद यह अखण्ड-साधनाकी भाँति चलता रहा। आचार्य हेमचन्द्र, उनके सम-सामयिक साहित्यकारों तथा उनकी साहित्य मण्डलीने, राज्यके संरक्षण तथा अपनी एकान्त साधनासे महान् साहित्यका सर्जन किया। चौथा सांस्कृतिक केन्द्र जो चौलुक्य-राजधानीके साथ ही विकसित हो रहा था, धवलक्कामें था, जहाँ चौलुक्योंकी एक शाखा वाघेलाका शासन था। चौलुक्योंसे इनकी मैत्री और सहयोग घनिष्ठ था और ये अनेक संकटकालमें चौलुक्योंके परम सहायक सिद्ध हुए। इसी धवलक्काके वीरधवलने, चौलुक्य भीमदेव द्वितीयसे वस्तुपालकी सेवाएँ अभ्यर्थना-द्वारा प्राप्त की थीं। वीरधवल और वस्तुपालके संस्कृति एवं साहित्य-प्रेम तथा संरक्षणकी बात देशमें प्रसिद्ध हो गयी थी। नैषधकार श्रीहर्षके वंशधर हरिहर, गौड़देशसे धवलक्का, उसके नरेश तथा उसके महामात्यकी, इसी सुकीर्तिको श्रवण कर यहाँ आये और प्रथमबार गुजरात-में नैषध महाकाव्यका प्रचार किया तथा स्वयं अत्यन्त उच्चकोटिकी साहित्य-रचना की। वीरधवलके पुत्र और उत्तराधिकारी वीसलदेवके समय भी धवलक्कामें साहित्यिक सांस्कृतिक अभ्युत्थानका क्रम जारी रहा। वीरधवल तथा महामात्य वस्तुपालके संरक्षणमें धवलक्कामें जैसी साहित्यिक

चेतना जागृत हुई और जैसा बहुमुखी विकास हुआ, वह भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें चिरस्मरणीय है। देशके कोने-कोनेसे महान् साहित्यकार, गुजरातके इन सांस्कृतिक केन्द्रोंमें आते थे और अपनी प्रतिभा तथा कलाका परिचय देकर पुरस्कृत और प्रसिद्ध होते थे। नैषधकार श्रीहर्षके वंशज हरिहरके अतिरिक्त, सिद्धराजके पिता कर्णके शासनकालमें कश्मीरी कवि विल्हण सुदूर कश्मीरसे अनहिलवाड़ा आये थे और यहाँ रहकर उन्होंने कर्णसुन्दरी नाटिकाकी रचना की थी। गुजरातकी इस गौरवपूर्ण साहित्यिक सांस्कृतिक परम्पराने, मध्यकालीन भारतीय लोक-साहित्यको अत्यधिक प्रभावित किया है और दिया है उसके पुनरुत्थानमें अभूतपूर्व योगदान !

आचार्य हेमचन्द्र और उनका युग

गुर्जर साम्राज्यकी स्थापनाके पश्चात् अनहिलवाड़ पाटन केवल गुजरातकी राजधानी ही नहीं बना रहा अपितु सम्पूर्ण राष्ट्रका महान् सांस्कृतिक केन्द्र बन गया। चौलुक्य नरेशोंने सारस्वत मण्डलमें अपने संरक्षण और प्रोत्साहनमें सरस्वतीकी जैसी साधना-आराधना की वह अभूतपूर्व है। यह क्रम, यद्यपि चौलुक्य वंशके संस्थापक मूलराजके समयसे ही चल पड़ा था पर सिद्धराज जयसिंह और उसके उत्तराधिकारी कुमारपालके शासनकालमें यह अपनी चरम सीमापर पहुँच गया। इस मध्यकालीन साहित्यिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थानको दो प्रमुख युगोंमें विभाजित किया जा सकता है। एकका नामकरण, आचार्य हेमचन्द्र युग और दूसरेका महामात्य वस्तुपाल युग—इस साहित्यिक जागरणकी अभिव्यक्तिके निमित्त उपयुक्त होगा। आचार्य हेमचन्द्रके पूर्ववर्ती साहित्य-साधकोंमें ग्यारहवीं शतीमें हुए श्री शान्तिसूरि तथा श्री नेमिचन्द्रके नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं। इन दोनों विद्वानोंने उत्तराध्ययन सूत्रपर जो टीकाएँ लिखी हैं, वे अध्येताओंके लिए अत्यन्त उपादेय हैं। सन् १०६४ ई० में श्री अभयदेव सूरिने जैन दर्शनके नौ अंगोंपर विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी हैं, जिनका संशोधित स्वरूप श्री द्रोणा-

चार्यने प्रस्तुत किया। ग्यारहवीं शतीके पूर्वार्धमें श्री जिनेश्वर तथा श्री बुद्धि-सागरने धार्मिक एवं विविध विषयोंपर जो साहित्य-रचना की, उसका भी विशेष उल्लेख आवश्यक है।[1]

जिस युगमें आचार्य हेमचन्द्रका उदय हो रहा था, उस समय गुजरात और मालवामें साहित्यिक प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। इस स्वस्थ परम्पराने वास्तवमें साहित्यके विकासमें बहुत सहायता पहुँचायी। एक प्रदेशके विद्वान् दूसरे राज्यमें जाकर अपने प्रदेशके गौरववर्द्धनके निमित्त शास्त्रार्थ किया करते थे। अनहिलवाड़ पाटनके शक्तिशाली नरेश, इस प्रतियोगितामें अपने राज्यका पलड़ा भारी रखना चाहते थे। सिद्धराज जयसिंह गुजरातके सर्व-प्रमुख नरेशोंमें अग्रगण्य थे। उसकी महत्त्वाकांक्षा केवल राज्यविस्तार-द्वारा गुजरात साम्राज्यको शक्तिशाली बनानेकी ही न थी अपितु उज्जयिनीके विक्रमा-दित्यके समान ही सर्वाङ्गीण प्रगति उसे इष्ट थी। सारे देशके विद्वान् उसकी राज्य सभामें आते थे। विद्वानोंके शास्त्रार्थ तथा विचार-विमर्शकी सभाओंकी अध्यक्षता स्वयं सिद्धराज किया करते थे। दिगम्बर कुमुदचन्द और श्वेताम्बर वादी देवसूरिका अत्यन्त प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण विवाद, सिद्धराजकी ही राज्य-सभामें हुआ था। यही कारण है कि गुजरातके लोक-साहित्य तथा नाटयमें सिद्धराज जयसिंह (सन् १०९४-११४३ ई०) विक्रम तथा भोजकी भाँति सुप्रसिद्ध हैं। गुजरातके इसी गौरवशाली सिद्धराज जयसिंहकी राज्य-सभाके सबसे बड़े विद्वान् और युगनिर्माता साहित्यसाधक आचार्य हेमचन्द्र थे। न केवल सिद्धराजके समय, अपितु उसके उत्तराधिकारी तथा सर्व-प्रसिद्ध चौलुक्यराज कुमारपालके समय भी, आचार्य हेमचन्द्र अपनी सर्व-तोमुखी प्रतिभा तथा असाधारण पाण्डित्यसे, बहुमुखी साहित्य-अनुष्ठानके अधिष्ठाता बने रहे। हेमाचार्यके सम-सामयिक विद्वानों तथा उनकी विद्वान्

---

१. **एम० डी० देसाई : 'जैन-साहित्य नो इतिहास'में विस्तृत विवरण देखिए।**

शिष्य मण्डलीने जितना प्रभूत साहित्य-निर्माण किया, वह आज भी विस्मय-विमुग्ध करनेवाला है। भारतीय साहित्यमें उनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

समग्र और सर्वयुगीन साहित्य-साधनाको दृष्टिमें रखकर विचार किया जाये तो आचार्य हेमचन्द्र और उनके साहित्यका महत्त्व विशेष उल्लेखनीय है, इसमें सन्देह नहीं। मध्यकालीन भारतके वे महान् कवि तथा प्रकाण्ड पण्डित थे। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दीमें जैन-साहित्यके अभूतपूर्व निर्माण तथा अन्यान्य साहित्य-प्रवृत्तियोंका प्रवर्तन उन्हींके नेतृत्वमें हुआ। जैसा पहले लिखा जा चुका है, सिद्धराज जयसिंहको उज्जयिनीकी साहित्यिक गौरव-परम्पराओंसे होड़ लेनेकी कामना रहती थी। इसी भावनासे प्रेरित होकर उसने हेमचन्द्रसे एक व्याकरणकी रचना करनेको कहा। इस निमित्त देशके सभी व्याकरण खरीदकर हेमाचार्यके सम्मुख उपस्थित किये गये। सुदीर्घ अध्ययन और मननके बाद जब हेमचन्द्राचार्यने व्याकरणकी रचना की तो इसके प्रेरक तथा कर्त्ता दोनोंके नामपर इसका नामकरण 'सिद्ध हेम व्याकरण' किया गया। सिद्धराजने इसकी प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करायीं और देशके विभिन्न भागोंके विद्या-केन्द्रोंमें इसे भिजवाया। तत्कालीन विद्या-केन्द्र कश्मीरमें भी इस महाग्रन्थकी बीस प्रतिलिपियाँ भेजी गयी थीं।

इसी महान् ज्योतिपुंज तथा मूर्त-प्रतिभा आचार्य हेमचन्द्रको 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनकी गुरुपरम्परा और प्रारम्भिक जीवनवृत्त इस प्रकार है—श्री दत्तसूरिके शिष्य यशोभद्र हुए। श्री यशोभद्र सूरिने कठोर साधना एवं तपस्या की। अन्तमें उन्होंने उर्जयन्त तीर्थ (गिरिनार) में उपवास-व्रत कर देहत्याग किया। इन्हींके शिष्य प्रद्युम्न सूरि थे, जिन्होंने गुणसेन सूरिको दीक्षा दी। श्री गुणसेन सूरिके शिष्य देवचन्द्र सूरि हुए, जो हेमचन्द्राचार्यके गुरु थे। श्री देवचन्द्र सूरिसे हेमचन्द्रको किस प्रकार दीक्षा मिली, इसकी कथा भी अत्यन्त रोचक है। जब श्री हेमचन्द्र यात्राके प्रसंगमें धन्धूक (अहमदाबादके निकट) नामक स्थानमें आये तो यहाँ नित्य छांगदेव नामक मोढ़ वणिक् बालक उनके उपदेश बड़ी संलग्नतासे

सुना करता था। बालककी मुखाकृति और चेष्टाएँ, उसकी महान् प्रतिभाका परिचय देती थीं। यह बालक आचार्य देवचन्द्रके उपदेशोंसे इतना प्रभावित हुआ कि दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया। दीक्षा देते हुए आचार्यने उसका नाम सोमचन्द्र रखा। बालक सोमचन्द्र, अपने आचार्यके सान्निध्यमें रहता और उन्हींके साथ यात्रा एवं भ्रमण करता। इस बाल योगीकी प्रतिभा अलौकिक और असाधारण थी। फलस्वरूप अल्पकालमें ही वह समस्त शास्त्रोंमें पारंगत हो गया। गुरुने प्रसन्न होकर इनका नाम हेमचन्द्र रखा और आचार्यत्व प्रदान किया। इनका जन्म धन्धूकमें ईस्वी सन् १०८९ में एक व्यापारीके यहाँ हुआ था। पिता श्रद्धालु जैन थे और बालकपर जन्मसे ही उनके संस्कार पड़े थे। हेमचन्द्राचार्यके असाधारण पाण्डित्यकी कथा सुनकर चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंह इनके भक्त बन गये और नियमपूर्वक उनके उपदेश सुना करते। यही नहीं, सिद्धराज उनसे प्रत्येक शास्त्रीय विषयमें परामर्श लेते और पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते थे। मालवा विजयके बाद जब सिद्धराज, अनहिलवाड़ा लौटे तो उनका अभिनन्दन करने विद्वानोंकी जो मण्डली गयी थी, उसमें आचार्य हेमचन्द्र भी थे।

हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियाँ

आचार्य हेमचन्द्रकी महान् साहित्यिक प्रतिभाका वर्णन करते हुए सोमप्रभाचार्यने निम्नलिखित भाव व्यक्त किये हैं—

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्व्याश्रया-
लङ्कारौ प्रथितौ नयौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः सञ्जनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥

हेमचन्द्रचार्यने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा-द्वारा किन नवीन कृतियोंको प्रसूत किया, इसका संकेत इस श्लोकमें दिया गया है। सिद्धहेम व्याकरण, सिद्धहेम लिंगानुशासन तथा धातुपारायण उनके व्याकरणके ग्रन्थ हैं।

शब्दकोषोंमें उनके अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थ संग्रह, निघण्टुकोष, देशी नाममाला, उल्लेख्य हैं। अलंकार ग्रन्थोंमें काव्यानुशासन और छन्द ग्रन्थोंमें छन्दोनुशासन प्रसिद्ध हैं। काव्य-ग्रन्थोंमें आपका संस्कृत-प्राकृत द्वयाश्रय-काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र-जैसा नामसे प्रकट है जीवन चरित्र है और प्रमाण मीमांसा एवं योगशास्त्र—दर्शन तथा योगके ग्रन्थ हैं।

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने समयका महापण्डित तथा महान् प्रतिभा-सम्पन्न ग्रन्थकार हुआ है। कहा जाता है कि उसने साढ़े तीन करोड़ श्लोकोंकी रचना की थी।[1] उसकी प्रथम रचना सिद्ध हेमशब्दानुशासन है। यह आठ अध्यायोंकी रचना है जो सिद्धराजकी प्रार्थनापर उसके स्मारक रूपमें प्रस्तुत की गयी थी। हेमचन्द्रने स्वयं इस रचनापर बृहत् टीका लिखी जो अष्टदश सहस्रीके नामसे विख्यात है। इसीके साथ एक न्यास भी लिखा गया जो चौरासी हज़ार ग्रन्थोंके बराबर था। अपने नवीन व्याकरणके नियमोंका उदाहरण प्रस्तुत करने तथा चौलुक्य राजाओंके

---

१. व्याकरणं पञ्चाङ्गं प्रमाणशास्त्रं प्रमाणमीमांसा।
छन्दोलंकृतिचूड़ामणी च शास्त्रे विभुर्व्याहृत॥
एकार्थानेकार्थादेश्या निघण्टु इति च चत्वारः।
विहिताश्च नामकोशाः भुवि कवितानस्युपाध्यायाः॥
त्र्युत्तरषष्टिशलाका नरेशव्रतगृहिव्रतविचारे।
अध्यात्मयोगशास्त्रं विदधे जगदुपकृतिं विधित्सुः॥
लक्षणसाहित्यगुणं विदधे च द्व्याश्रयं महाकाव्यम्।
चक्रे विंशतिमुच्चैः स वीतरागस्तवानां च॥
इति तद्विहितग्रन्थसंख्यैव हि न विद्यते।
नामापि न विदन्त्येषां मादृशा मन्दमेधसः॥
—प्रभावकचरित।

गौरवगानके निमित्त उसने द्वयाश्रय महाकाव्यकी रचना की। इसका, कुमारपालके राजत्वकालका प्राकृत अंश, कुमारपालके शासनकालमें ही जोड़ा गया। उसके व्याकरणकी अन्य टीकाओंकी भी इसी समय रचना हुई थी। अनेकार्थ संग्रहके साथ अभिधान चिन्तामणि, देशी नाममाला तथा निघण्टु, काव्यानुशासन विवेक, छन्दोनुशासन तथा प्रमाणमीमांसाकी रचना सिद्धराजके शासनकालमें ही हुई थी। इस प्रकार सिद्धराजके राज्यकालमें ही हेमचन्द्राचार्य अपनी अधिकांश साहित्य-साधना कर चुके थे। कुमारपालके शासनकालमें उन्होंने जो रचनाएँ कीं वे अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ थे। योगशास्त्र तथा वीतरागस्तुति, कुमारपालके उपदेशार्थ प्रणीत हुए। तीर्थङ्करोंके जीवनदर्शनके ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' की रचना उसने कुमारपालकी प्रार्थनापर की थी। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम संवत् ११४५में हुआ था और विक्रम संवत् १२२९में चौरासी वर्षकी प्रौढ़ावस्थामें उसका निधन हुआ। विविध साहित्य और व्याकरणके क्षेत्रमें उसकी महान् देन आज भी इतिहासके सुनहरे पृष्ठोंपर अंकित है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि सिद्धराज तथा कुमारपालके शासन कालमें गुजरातमें अभूतपूर्व साहित्यिक-सांस्कृतिक उत्थान हुआ। हेमचन्द्र, उनके सम-सामयिकों, उनकी शिष्य मण्डली तथा महामात्य वस्तुपाल एवं साहित्यिक मण्डलीने महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना की।[1]

हेमचन्द्राचार्यकी शिष्य मण्डली

आचार्य हेमचन्द्रने जितना युगान्तरकारी साहित्य स्वयं रचा, उतना ही अधिक उनके सम-सामयिकों तथा शिष्य मण्डलीने भी इस सांस्कृतिक अभ्युत्थानमें योग दिया। आपकी शिष्य मण्डलीने संस्कृत साहित्यके विभिन्न अंगोंकी रचना की है। इनमें मुख्य हैं श्री रामचन्द्र, जिन्होंने

---

१. डॉ० साण्डेसरा : लिटरेरी सर्किल ऑफ़ महामात्य वस्तुपाल : पृ० ३९।

प्रख्यात नाट्यदर्पणकी रचना की है। श्री गुणचन्द्र आपके दूसरे शिष्य थे जिन्होंने अपने गुरुभ्राताको 'नाट्यदर्पण'की रचनामें सहयोग दिया था। इसी ग्रन्थमें विशाखदत्तके अप्राप्य नाटक 'देवी चन्द्रगुप्तम्'के वे उद्धरण मिलते हैं, जिनसे गुप्तकालकी अनेक अन्धकारपूर्ण एवं अज्ञात घटनाओं पर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ा है। इस नाट्यशास्त्रमें अनेक प्राचीन और अब अप्राप्य संस्कृत नाटकोंके उल्लेख आये हैं। 'नाट्यदर्पण'की रचना मौलिक पद्धतिसे हुई है। इसमें भरतके नाट्यशास्त्रसे पृथक्रूपेण विभिन्न नाटकों तथा रसोंके श्रेणी विभाजनकी परम्पराको जीवित रखनेका प्रयत्न किया गया है। गुजरातमें लिखे गये दो दर्जन संस्कृत नाटकोंमें ग्यारह नाटक तो स्वयं रामचन्द्रने लिखे। संस्कृत नाट्यके जिन विभिन्न प्रकारोंमें आपके नाटक आते हैं, उनके नाम हैं—(१) नाटक (२) प्रकरण (३) नाटिका तथा (४) व्यायोग।

आपके अन्य शिष्योंमें श्री महेन्द्र सूरिने अनेकार्थ कोशपर टीका लिखी। श्री देवचन्द्रने चन्द्रालेखा विजय प्रकरण नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा, जिसमें कुमारपालकी सपादलक्षके अरुणोराजापर विजय तथा उसकी बहनसे विवाहका प्रकरण है। श्री वर्धमानगणीने श्री रामचन्द्रके कुमार विहार प्रशस्ति काव्यपर टीका लिखी और श्री उदयचन्द्रने, हेमचन्द्रके योगशास्त्रकी व्याकरणकी अशुद्धियाँ ठीक कीं। श्री यशचन्द्रने प्रभाकरचरित तथा कुमारपालप्रबन्धकी रचना की। श्री बालचन्द्र भी, हेमचन्द्राचार्यकी शिष्य मण्डलीमें थे। इनके अतिरिक्त भी आपकी शिष्य-मण्डलीमें बहुतसे लोग रहे होंगे, इसमें सन्देह नहीं।[1]

हेमचन्द्रके सम-सामयिक

आचार्य हेमचन्द्रके सम-सामयिकोंमें सिद्धराज जयसिंहके अन्धकवि

---

१. व्हुलर : लाइफ ऑफ़ जैन मौंक हेमचन्द्र : पृ० ६०।

श्रीपाल सर्वप्रमुख हैं। आपने प्रसिद्ध सहस्रलिंग तालाबके निर्माणकी प्रशस्ति लिखी है। अब इसका केवल एक अंश ही पाटनके एक मन्दिरमें प्रस्तर खण्डपर मिलता है।[1] रुद्रमहालयकी प्रशस्ति भी आपने ही रची थी, ऐसा प्रसिद्ध है। बड़नगर प्रशस्तिके अन्तमें कवि श्रीपालने अपने विषयमें जो उल्लेख किया है उसमें महाप्रबन्ध 'वीरोचन विजय' की चर्चा आयी है। श्रीपाल, सिद्धराजके मित्र थे और उनकी राज्यसभाके मुख्य कवि भी थे। प्रबन्धोंसे विदित होता है कि भागवत सम्प्रदायके देवबोध जब अनहिलवाड़ आये थे तो श्रीपालसे उनका विचार-विमर्श हुआ था। यही नहीं, उनके निकट अनेक समकालीन कवि अपनी रचनाओंके संशोधनार्थ आया करते थे। कवि श्रीपालके पुत्र सिद्धपाल भी अच्छे कवि हो गये हैं। सिद्धपालके पुत्र विजयपाल हुए, जिन्होंने 'द्रौपदी-स्वयंवर' नामक नाटकका प्रणयन किया था। इस नाटकका अभिनय, भीमदेव द्वितीयके आदेशसे, चौलुक्यवंशके प्रतिष्ठापक मूलराज-द्वारा अनहिलवाड़में निर्मित त्रिपुरुष प्रासादमें हुआ था। इससे स्पष्ट है कि इस कालके नाटक केवल पाठ्य ही नहीं अपितु अभिनेय होते थे और उनकी रंगमञ्चपर अवतारणा होती थी।

सोमप्रभाचार्य और उसकी रचनाएँ

कुमारपालप्रतिबोधका रचयिता सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध जैन विद्वान् था। कुमारपालकी मृत्युके ग्यारह वर्ष बाद विक्रम संवत् १२४१में उसने उक्त रचना की। इससे स्पष्ट है कि वह कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समसामयिक था। राजकवि श्री श्रीपालके पुत्र सिद्धपालके निवास स्थानपर रहकर उसने इस ग्रन्थकी रचना की। यहीं रहकर उसने अपनी दूसरी महान् कृति 'सुमतिनाथचरित'का भी प्रणयन किया। कुमार-पालप्रतिबोधके अतिरिक्त उसके तीन ग्रन्थोंमें सुमतिनाथचरित उल्लेख्य

१. आर० सी० मोदी : सातवें अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन, बड़ौदाका विवरण।

है। इसमें पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथकी जीवन-गाथा वर्णित है। कुमारपाल-प्रतिबोधके समान ही इसका अधिकांश भाग प्राकृत भाषामें लिखा गया है और उसीकी भाँति इसमें जैनधर्मकी शिक्षाको समझानेवाली कहानियाँ भी हैं। इसमें साढ़े नौ हज़ार श्लोक हैं। सूक्तिमुक्तावली, सोमप्रभाचार्य की उल्लेखनीय रचना है, जिसमें मिश्रित प्रकारके सौ श्लोक हैं। इसका एक नाम सिन्दूरप्रकर भी है क्योंकि इसके प्रथम श्लोकका प्रथम शब्द सिन्दूरप्रकर ही है। जैनोंमें इस ग्रन्थकी बहुत प्रसिद्धि है और बहुतसे स्त्री-पुरुष इसे कण्ठस्थ करते हैं। इनकी रचनाशैली भर्तृहरिके नीति-शतकके समान है। इसमें हिंसाके विरुद्ध सत्य, आस्तेय, पवित्रता तथा सत्के सम्बन्धमें छोटे किन्तु गम्भीर अर्थवाले श्लोक हैं। इसकी रचनाशैली अत्यन्त हृदयग्राही, सरल और बोधगम्य है।

सोमप्रभाचार्यकी तीसरी रचनाका नाम है शतार्थकाव्य। संस्कृत भाषा-पर उसके आश्चर्यजनक अधिकारका पता उसकी इस रचनासे लगता है। इस रचनामें वसन्ततिलका छन्दमें केवल एक ही श्लोक है और इसे सौ प्रकारसे समझाया गया है। इसी कृतिसे उसका नाम 'शतार्थिक' पड़ा और इसी नामसे बहुतसे बादके ग्रन्थकारोंने उसका नामोल्लेख किया है।[1] सोमप्रभाचार्यने इस ग्रन्थमें अपने समसामयिक लोगोंका उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक रूपमें किया है। इनमें देवसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य-जैसे जैन-धर्मके आचार्योंका वर्णन है, तो क्रमसे हुए गुजरातके चार राजा जयसिंह-देव, कुमारपाल, अजयदेव तथा मूलराजका भी विवरण है। इनके अति-रिक्त इसमें अपने समयके सर्वश्रेष्ठ नागरिक कवि सिद्धपाल और उसके दो गुरुओं अनितदेव तथा विजयसिंहकी भी चर्चा आयी है। सोमप्रभाचार्य

---

१. 'सोमप्रभो मुनिपतिर्विदितः शतार्थी'—मुनिसुन्दर सूरि कृत-गुर्वावलि ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट्।

—गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्न समुच्चय।

की चार रचनाओंमें 'सुमतिनाथचरित'की रचना कुमारपालके शासन-कालमें हुई थी।

राजसभामें विद्वान् मण्डली

कुमारपालके महामात्य तथा सचिव विद्वान् थे। उसने अपनी राजसभामें विद्वान्, विशेषतः संस्कृत भाषाके कवियोंको रखनेकी परम्परा बनाये रखी। उस समय दो प्रमुख विद्वान् रामचन्द्र और उदयचन्द्र थे। ये दोनों ही जैन थे। रामचन्द्रका उल्लेख गुजराती साहित्यमें बारम्बार आया है। वह अपने समयका श्रेष्ठ विद्वान् था। उसने 'प्रबन्धशत'की रचना की है। उदयनकी मृत्युके पश्चात् कपर्दी कुमारपालका महामात्य नियुक्त हुआ। कपर्दी विविध शास्त्रोंका ज्ञाता होनेके अतिरिक्त संस्कृत भाषाका कवि भी था। कुमारपालके शासनकालमें उस युगका सबसे महान् जैन पण्डित हेमचन्द्र उसका प्रधान परामर्शदाता था। कपर्दीकी विद्वत्ताकी एक अत्यन्त मनोरञ्जक कहानी है। इसके अनुसार कुमारपालके दरबारमें सपादलक्षके राजाके दूतके आनेपर राजाने उससे साँभर प्रदेशके राजाकी कुशलता पूछी। जब दूतने उत्तर दिया कि 'उनका नाम विश्वबल' (संसारकी शक्ति) है फिर भला उनकी सदा कुशलतामें क्या सन्देह है? इसपर राजाके पास खड़े कपर्दी मन्त्रीने, जो कुमारपालका प्रियपात्र विद्वान् कवि था, 'शुल' और 'शुवल' धातुका अर्थ शीघ्र जाना बताते हुए कहा—वह हैं विश्वबल, जो (वी) चिड़ियाके समान शीघ्र उड़ जाता है। दूत जब स्वदेश लौटा तो उसने इसकी चर्चा की। इसपर सपादलक्षके राजाने विद्वानोंसे परामर्श कर विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूत कपर्दीने इस नामका भी ऐसा हास्यास्पद अर्थ किया कि इसके बाद राजाने कपर्दीके भयसे अपना नाम कवि बान्धव रख लिया।[1]

---

१. रासमाला : अध्याय ११, पृ० १९०।

विविध साहित्य और शास्त्रोंकी रचना

इस समय हेमचन्द्र व्याकरणशास्त्रका सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रणेता हुआ। संस्कृतमें लिखे नौ-व्याकरणोंकी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, इनमें विक्रम संवत् १०८०का 'बुद्धिसागर'[1] नामक ग्रन्थ जो जाबालीपुर आधुनिक जालोरमें लिखा गया था, मिला है। हेमचन्द्रने प्राकृत तथा संस्कृत दोनोंमें रचनाएँ की हैं। प्राकृत भाषामें उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति शब्दानुशासन है। इसमें ११वीं-१२वीं शतीके अपभ्रंश तथा आधुनिक प्राचीन गुजराती भाषाके पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्धका अध्ययन किया जा सकता है। हेमचन्द्रका द्वयाश्रय काव्य, व्याकरणशास्त्र होनेके साथ-साथ कुमारपाल तक चौलुक्यकालीन राजाओंका इतिहास भी है।

इस समयके प्रसिद्ध नाटकोंके रचनाकार श्री प्रहल्दानदेव श्री जयसिंह तथा श्री यशपाल रहे हैं। प्रहल्दानदेव (११७० ई०) चन्द्रावती नरेश तथा कुमारपालके अधीनस्थ धारावर्षके भाई थे। 'पार्थ-पराक्रमव्यायोग' आपकी प्रसिद्ध रचना है जिसका अभिनय अचलेश्वरकी स्थापनाके अवसरपर हुआ था। इसकी कथाका आधार महाभारतका विराट पर्व है, जिसमें अर्जुन-द्वारा विराटकी गौओंका पता लगानेका विवरण है। आपने अन्य रचनाएँ भी कीं। आपके सम्बन्धमें सबसे उल्लेख्य एक बात यह है कि श्री रामचन्द्रके बाद, गुजरातमें व्यायोग नाट्य रचना केवल आपने ही की।

नाटककार श्री जयसिंहकी कृतिका नाम है हम्मीर मदमर्दन। इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।

श्री यशपाल (११७४–७७ ई०) का 'मोहराजपराजय' नाटक, ग्यारहवीं शताब्दीके 'प्रबोध-चन्द्रोदय'के समान रूपक है। इसकी रचना सरल संस्कृत भाषामें की गयी है, जिसमें कृत्रिमता नहीं है। यशपाल कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालका मन्त्री था। यह नाटक इसी काल

---

१. आर्केयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५०।

में लिखा गया और कुमार विहारमें महावीर-मूर्तिकी प्रतिष्ठापनाके समय यात्रा-महोत्सव के अवसरपर इसका अभिनय भी हुआ था। इस नाटकसे तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओंके अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवनका बड़ा सजीव चित्र सम्मुख आ उपस्थित होता है। यह पाँच अंकों का नाटक है। मध्यकालीन युरोपीय ईसाई नाटकोंसे इसका रचना-विधान अत्यधिक साम्य रखता है।

काव्यशास्त्र, दर्शन तथा कथासाहित्य

इस युगमें नागभट्ट नामके साहित्यकार हुए जिन्होंने 'वाग्भट्टालंकार' नामक काव्यशास्त्रकी रचना की। इनके पिताका नाम सोम था। इसमें कुमारपालका उल्लेख नहीं। इससे अनुमान किया जाता है कि सिद्धराज जयसिंहकी मालवा-विजयके बाद तथा निधनके पूर्व किसी समय इसकी रचना हुई।

इस समय जैन सिद्धान्तोंके संस्कृत व्याख्याकारोंमें आचार्य मलयगिरिका नाम विशेष उल्लेख्य है। आपने अनेक जैन आगमोंकी संस्कृत टीकाएँ लिखीं। मुष्टि व्याकरण नामक आपका संस्कृत व्याकरण, थोड़ेमें सम्पूर्ण विषयको बड़ी सुन्दरतासे प्रतिपादित करता है। आपकी कृतियोंसे स्पष्ट है कि ये कुमारपालके समय विद्यमान थे। आपकी व्याख्याएँ अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण हैं और शैली भी सरस एवं सुन्दर। आगमके चार व्याख्या-कारोंमें अन्तिम आप ही थे। मगधमें आगमके जिन सिद्धान्तोंका निरूपण हुआ उसका अन्तिम सम्पादन तथा उसकी व्याख्याएँ गुर्जर देशमें ही की गयीं। कुमारपालके उत्तराधिकारियोंके पश्चात् बारहवीं शतीके अन्तमें जैन मुनि पूर्णचन्द्रकी 'पंचाख्यान' रचना मिलती हे, जिसका कथा-साहित्यमें विशेष महत्त्व है। यह पश्चिमी भारतीय पंचतन्त्रका ही परिमार्जित, परिवर्द्धित एवं संपादित स्वरूप है और इसपर तन्त्राख्यायिकाका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

नाटककार यशपालने अपनेको कुमारपालके उत्तराधिकारी चक्रवर्ती अजयपालके चरणकमलमें विचरण करनेवाला हंस कहा है। अजयदेवने सन्-१२२९ से १२३२ तक शासन किया। इसलिए नाटकके प्रणयनकी तिथि इसीके मध्यमें निश्चित की जा सकती है। मोहराजपराजय पांच अंकोंका एक रूपक है। इसमें कुमारपालके द्वारा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेका विशद चित्रांकन किया गया है। हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराजपराजय दोनों नाटकोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समयके नाटकोंकी जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं उसमें कालिंजरके परमार्धिदेव (सन् ११६५-१२०३) के मन्त्री वत्सराजके छह नाटक हैं।[१] इनसे गुजरातके अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक सम्पर्कका परिचय होता है।

कविताके क्षेत्रमें इस समयकी सर्वाधिक महत्त्वकी रचना संस्कृत भाषामें रचित उदयसुन्दरी कथा है।[२] इसका रचयिता लाटदेशका निवासी सोढ्ढल है। इसमें तत्कालीन इतिहास तथा साहित्य-सम्बन्धी उपयोगी जानकारी है।

तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा वेदान्त-सम्बन्धी पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इनमें-से हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी पाण्डुलिपि शान्तारक्षितकी तत्त्वसंग्रह[3] रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पंजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरातपर प्रभाव ही नहीं परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवीं शताब्दीमें सांस्कृतिक एकताने, देशके दिगंत छोरोंको किस प्रकार

---

१. आर्केयॅलॉजी ऑव् गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५० ।

२. गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज : संख्या ११ ।

३. आर्केयॅलॉजी ऑव् गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१ ।

एकसूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थकारोंमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक हैं। वसन्तविलास, सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती हैं। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि, विचारश्रेणि, थेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एवं संस्कृत साहित्यमें प्रभूत रचनाएँ होती हैं। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर' से जोड़ते हैं। नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अंगोंकी समुन्नतिका श्रेय इस कालमें राज्यसंरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

साहित्य-साधक महामात्य वस्तुपाल

आचार्य हेमचन्द्र और उनकी साहित्य-मण्डली-द्वारा गुजरातमें जो अभूतपूर्व साहित्य निर्माणकी ज्योति आलोकित की गयी, उसे उनके परवर्ती कालमें अखण्ड बनाये रखनेका गौरव महान् साहित्यप्रेमी महामात्य वस्तुपाल तथा उनकी साहित्य-मण्डलीको प्राप्त है। महामात्य वस्तुपालने न केवल साहित्य-भण्डारको मूल्यवान् कृतियोंसे अलंकृत किया अपितु आबूके विश्वप्रसिद्ध कला-मन्दिरोंका निर्माण कराकर अपने कला प्रेमका ऐसा निदर्शन उपस्थित किया जो अलौकिक और अप्रतिम है। हिन्दू गुजरातके अन्तिम सांस्कृतिक पुनरुत्थानमें महामात्य वस्तुपाल तथा उनकी साहित्यिक मण्डलीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।[1]

महामात्य वस्तुपालने अनहिलवाड़, स्तम्भतीर्थ तथा भृगुकच्छमें तीन सार्वजनिक पुस्तकालयोंकी स्थापना की थी। उनका निजी पुस्तकालय भी

---

१. डॉ० भोगीलाल सांडेसरा कृत 'महामात्य वस्तुपाल और उनकी साहित्यिक मण्डली' देखिए।

भारतीय साहित्यके मूल्यवान् तथा अलभ्य ग्रन्थोंसे युक्त था। वह स्वयं प्रतिभाशाली साहित्यकार था और एक श्लोककी रचनाके लिए सहस्रों रुपयोंके पुरस्कार देता था। इसीलिए उसकी प्रसिद्धि लघु भोजराजके नाम से है। प्रबन्धकोश, वस्तुपालचरित, पुरातनप्रबन्धसंग्रह आदिमें उनके साहित्य-संरक्षण तथा संवर्धनकी अनेकानेक कथाएँ मिलती हैं। महामात्य वस्तुपालके इन्हीं गुणोंका वर्णन, सोमेश्वरने इन शब्दोंमें किया है—

सूत्रे वृत्तिः कृता पूर्वं दुर्गसिंहेन धीमता।
विसूत्रे तु कृता तेषां वस्तुपालेन मन्त्रिणा ॥[1]

समस्त गुजरात तथा देशके अनेक मूर्धन्य साहित्यकार, महामात्य वस्तुपालके सम्पर्कमें आये। बहुत बड़ी संख्यामें साहित्यिकोंने उसके संरक्षण में तथा बहुतोंने उनके प्रोत्साहनसे साहित्यकी रचना की। वह कविता और कलाका सूक्ष्म सौन्दर्य अन्वेषणकर्त्ता तथा उसका विदग्ध मर्मज्ञ था। राज-काजकी अत्यन्त व्यस्ततामें भी वह अपनी नियमित साहित्यसेवामें किसी प्रकारकी बाधा न आने देता था। मूल्यवान् ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि वह स्वयं किया करता था। उदयप्रभाकृत 'धर्माभ्युदय' महाकाव्यकी प्रतिलिपि जो उसके द्वारा सात-सौ वर्ष पूर्व लिखी गयी थी, अब भी खम्भातके जैन भण्डारमें सुरक्षित है। महामात्य वस्तुपाल-द्वारा प्रतिलिपि किया गया उक्त महाकाव्य आज भी विद्यमान है, यह वस्तुतः प्रसन्नताकी बात है।

काव्य-रचना और असाधारण कला-साधनाको प्रोत्साहित करनेके फलस्वरूप ही महामात्य वस्तुपालको कविकुंजर, कविचक्रवर्तिन्, सरस्वती के वरदपुत्र, सरस्वतीकण्ठाभरण आदिकी उपाधियोंसे विभूषित किया गया था।[2] वस्तुपालको श्री नरचन्द्रसे न्याय, व्याकरण, साहित्य तथा जैन-दर्शनकी शिक्षा प्राप्त हुई थी। तत्कालीन महापण्डितोंने उसका साहित्यिक

---

१. प्रभावकचरित्र : पृष्ठ संख्या ११२।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : पृष्ठ संख्या १००।

नाम 'वसन्तपाल' रखा था। अल्पकालमें ही महामात्य वस्तुपालकी काव्य एवं कला-प्रतिभा तथा प्रेमका प्रकाश चारों ओर फैल गया था।

महामात्य वस्तुपालका नर-नारायण महाकाव्य उसकी साहित्यिक प्रतिभा एवं रचना-कौशलकी अद्भुत झाँकी कराता है। इस महाकाव्यकी रचना महाभारतके वनपर्वकी कथाके आधारपर हुई है। इसमें नर-नारायण अथवा अर्जुन-कृष्णकी मैत्री, रैवतक वनमें उनके विहार तथा अर्जुन-द्वारा कृष्णकी बहन सुभद्राके हरणका वर्णन है। इस महाकाव्यकी लेखन-शैली तथा प्रबन्धरचनामें महाकवि माघ और भारविकी स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। इसमें नगरों, नृपतियों, राज्यसभाओं, सूर्य, चन्द्र एवं पुष्पोंके मनोहारी वर्णन हैं। युद्धका वर्णन चित्र-काव्योंके माध्यम से हुआ है, जिनमें-से अनेक संस्कृत साहित्यमें विशिष्ट माने जाते हैं। इस महाकाव्यमें सोलह सर्ग हैं तथा ७९४ श्लोक। कुमारसम्भव, किराता-र्जुनीय, शिशुपाल वध एवं नैषध महाकाव्यकी प्रणालीके अनुसार इसका भी प्रारम्भ बिना किसी देवस्तुतिके ही हुआ है। महामात्य वस्तुपालकी यह रचना अल्पकालमें ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। जल्हणने अपनी सूक्ति-मुक्तावलीमें इसके छन्दोंके उद्धरण दिये हैं। इस महाकाव्यके सोलहवें सर्गके अन्तमें अपनी विनम्रता प्रकट करते हुए महामात्य वस्तुपाल लिखते हैं—

> **उद्भास्वद्भिश्वविद्यालयमथ मनसः कोविदेन्द्रा वितन्द्रा**
> **मन्त्री बद्धाञ्जलिर्वो विनयनतशिरा याचते वस्तुपालः।**
> **स्वल्पप्रज्ञाप्रबोधादपि सपदि मया कल्पितेऽस्मिन् प्रबन्धे**
> **भूयो भूयोऽपि यूयं जनयत नयनक्षेपतो देषमोषम्॥**

इसके अतिरिक्त महामात्य वस्तुपालने नेमिनाथ, अम्बिका, आदिनाथ आदि स्तोत्रोंकी भी रचना की थी। वस्तुपालकी प्रसिद्धि सूक्ति-रचनाके लिए भी है। सोमेश्वर तथा उदयप्रभाने उनका उल्लेख करते हुए उनके काव्य सौन्दर्यकी प्रशंसा की है। आपके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि महामात्य

वस्तुपालने अपनी मृत्यु-शय्यासे दश श्लोकोंकी एक आराधना लिखी थी और यह व्यक्त किया था कि—'न कृतं सुकृतं किञ्चित् ।' आबू प्रशस्ति में महाकवि सोमेश्वरने काव्य एवं राजनीति दोनों क्षेत्रोंमें उनकी विशेषता का उल्लेख इस प्रकार किया है—

> विरचयति वस्तुपालश्चुलुक्यसचिवेषु कविषु च प्रवरः ।
> न कदाचिदर्थहरणं श्रीकरणे काव्यकरणे वा ॥

सोमेश्वर और उनकी रचनाएँ

महाकवि सोमेश्वर, महामात्य वस्तुपालके मित्र तथा उनकी मण्डलीके कवियोंमें प्रमुख थे। आप चौलुक्य राजाओंके पुरोहित वंशके थे। आपने अपनी वंश-परम्पराके विषयमें 'सुरथोत्सव महाकाव्य' के अन्तिम सर्ग 'कवि प्रशस्तिवर्णन' में परिचय दिया है। समकालीन कवि श्री हरिहर तथा सुभट्टाने आपकी रचनाओंकी प्रशंसा की है। आपके पिताका नाम कुमार तथा माताका लक्ष्मी था। आपका जन्म गुजरातके एक प्रकाण्ड पण्डित तथा सम्पन्न परिवारमें हुआ था। आपका मूल स्थान वडनगर था। आपके पूर्वज चौलुक्य राजाओंके न केवल प्रधान राज-पुरोहित थे बल्कि युद्धमें सेनापतिका कार्य भी करते थे। महाकवि सोमेश्वरने दो महाकाव्योंकी रचना की है जिनके नाम हैं—(१) सुरथोत्सव और (२) कीर्तिकौमुदी महाकाव्य। रामायणकी कथाके आधारपर उल्लास राघव नाटककी रचना-का अभिनय भी हुआ था। आपने आध घण्टेके साहित्यिक-सांस्कृतिक नाटकोंकी रचना कर भीमदेवकी राजसभाके सदस्योंका परितोष किया था। कर्णामृतप्रपा आपकी स्फुट कविताओंकी रचना है और रामशतकमें राम-वन्दनाके सौ श्लोक हैं। नेमिनाथकी मूर्तिकी स्थापनाके अवसरपर आपने आबू प्रशस्तिकी रचना की थी। विद्यानाथ मन्दिरके पुनः निर्माणके अवसर पर १२५५ ई० में रचित विद्यानाथ प्रशस्ति उनकी अन्तिम रचना कही

जाती है। महाकवि सोमेश्वर परम शैव एवं शाक्त थे और वैदिक शास्त्रोंमें उनकी अच्छी गति थी। आपने रामकी अभ्यर्थना काव्य-नाटकोंमें ही की है। आपमें समस्यापूर्ति तथा आशु कवित्वकी महान् प्रतिभा थी। महाकवि सोमेश्वरके इन गुणोंपर प्रसन्न होकर महामात्य वस्तुपालने उन्हें अनेक बार पुरस्कृत किया था।

'कीर्तिकौमुदी' आपका ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें गुजरातकी राजधानी अनहिलवाड़ाका कवित्वमय वर्णन तथा यथातथ्य चित्रण मिलता है। इसमें सहस्रलिंग तालाब तथा उसके तटपर बने कीर्तिस्तम्भका वर्णन है। महाकवि सोमेश्वरकी उच्चकोटिकी कविताका श्रेष्ठ निदर्शन इस प्रसंग में मिलता है। उदाहरण लीजिए :

यस्योच्चैः सरसस्तीरे राजते राजतोज्ज्वलः।
कीर्तिस्तम्भो नभोगङ्गाप्रवाहोऽवतरन्निव ॥

यह महाकाव्य यद्यपि तत्कालीन वीरके उदात्त चरित्र वर्णन तथा प्रशस्तिके सम्बन्धमें लिखा गया है पर साहित्यकी कसौटीपर भी उतना ही खरा उतरता है। आपके आदर्श कवि कालिदास हैं। विद्वानोंका मत है कि कालिदास, भारवि तथा माघके बाद सोमेश्वरकी कीर्तिकौमुदी उसी परम्परामें अत्यन्त श्रेष्ठ उतरती है। महाकाव्य 'रघुवंश' के अयोध्या वर्णन-का प्रभाव कीर्तिकौमुदीमें भी दृष्टिगत होता है। सरल, बोधगम्य और वैदर्भी शैली इस महाकाव्यमें व्यवहृत है। आपका सुरथोत्सव महाकाव्य यद्यपि धार्मिक-पौराणिक गाथाओंके आधारपर है पर इसका राजनीतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व भी है। मारकण्डेय पुराणके देवी माहात्म्यमें राजा सुरथकी कहानीके आधारपर इसकी रचना हुई है। महाकवि सोमेश्वरने इस महाकाव्यमें गौड़ी शैलीका प्रयोग किया है। इस रचनाका आदर्श कालिदासका काव्य न होकर, माघका शिशुपाल वध प्रतीत होता है। इसकी भाषा सरल, श्लेषयुक्त है और इसमें शब्दालंकारोंका बाहुल्य है।

अन्य उल्लेख्य साहित्य-साधक

महामात्य वस्तुपालकी साहित्य-मण्डलीके अन्य उल्लेख्य साहित्य-साधकोंमें सर्व श्री हरिहर, नानाकभूति, यशोवीर, सुभट, अरिसिंह, अमरसिंह, अमरचन्द्र सूरि, विनयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, जिनभद्र, नरचन्द्र, नरचन्द्रप्रभा सूरि, बालचन्द्र, जयचन्द्र सूरि और माणिक्यचन्द्र विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। इनमें नैषधकार श्री हर्षके वंशधर श्री हरिहरका यहाँ विशेष उल्लेख आवश्यक है। प्रबन्धकोंके अनुसार हरिहर अत्यन्त सम्पन्न विद्वान् थे और गौड़ देशसे ५० ऊँटों, २०० घोड़ों तथा ५०० व्यक्तियोंके साथ गुजरात आये थे। यहाँ आनेपर नरेश वीरधवल और महामात्य वस्तुपालने उनका सार्वजनिक स्वागत किया। हरिहर श्रुतधर थे। एक बार श्रवण कर लेनेपर तत्काल उसे सुना देनेकी उनमें अपूर्व क्षमता थी। श्री हरिहर ही गुजरातमें नैषध लाये। इसके पूर्व नैषधका नाम भी इस अंचलके लोगोंको विदित न था। नैषधकी सबसे प्राचीन प्रतिलिपियाँ गुजरातमें ही प्राप्य हैं। इनकी दो ताड़पत्रीय प्रतियाँ पाटन तथा जयसलमेरमें सुरक्षित हैं। श्री विद्याधर तथा चण्डू पण्डितने इसपर टीकाएँ लिखीं। कहते हैं कि कवि श्री हरिहरकी मूलप्रति वीसलदेवके राजकीय पुस्तकालयमें रखी गयी थी। इनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं। स्फुट रचनाएँ प्रबन्धमें मिलती हैं। नानाकभूति, वीसलदेवके राज्य-कवि थे। आपने प्रभासपाटनमें सरस्वती नदीके तटपर विद्या-केन्द्रकी स्थापना की थी। यह सरस्वती मन्दिर अब भी विद्यमान है। आपने ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, पुराणों एवं स्मृतियोंका गहन अध्ययन किया था। आप अच्छे कवि हो गये हैं और कवियोंके संरक्षक भी रहे हैं। नानाककी कोई रचना नहीं मिलती। प्रशस्तियोंमें उनकी काव्य-प्रतिभाका वर्णन मिलता है। जब अमरचन्द्र वीसलदेवकी राज्यसभामें आये थे तो उनकी प्रतिभाके परीक्षकोंमें नानाक भी थे। महामात्य वस्तुपालने इन्हें उत्कृष्ट काव्य-रचनाके लिए पुरस्कृत किया था।

श्री यशोवीर, महामात्य वस्तुपालके घनिष्ठ मित्र थे। महाकवि सोमेश्वरने इन्हें सरस्वतीका वरदपुत्र कहा है। वस्तुपालसे निकट सम्बन्धके कारण ही इन्हें 'कवीन्द्र बन्धु'की उपाधि प्रदान की गयी थी। वे शिल्प शास्त्रके आचार्य और संस्कृतके श्रेष्ठ कवि थे। कीर्तिकौमुदी महाकाव्यमें उसकी तुलना यद्यपि कालिदास, माघ और अभिनन्दसे की गयी है पर उसका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। चारणोंमें यशोवीरकी ख्याति भी उसकी लोकप्रियताका स्पष्ट प्रमाण है। अनेक अपभ्रंशके दोहे जो चारण उसकी प्रशंसामें गाते थे, प्रबन्धोंमें मिलते हैं। इनसे गुजरात तथा राजस्थानके लोक-साहित्यके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। श्री सुभटको सोमेश्वरने कविप्रवर कहकर सम्बोधित किया है। वह तर्कशास्त्रका भी ज्ञाता था। उसका लिखा 'दूतांगद' छाया नाटक जिसे हम संस्कृत एकांकी नाटक कह सकते हैं, मिलता है। कहते हैं कि इसका अभिनय चौलुक्य कुमारपालके सम्मानमें आयोजित समारोहमें हुआ था।

श्री अरिसिंह भी महामात्य वस्तुपालके प्रिय पात्र थे। ये प्रसिद्ध कवि तथा आलंकारिक अमरचन्द्रके कलागुरु थे। सुकृत संकीर्तन महाकाव्य आपकी प्रसिद्ध रचना है। श्री अमरचन्द्र सूरि सर्वतोमुखी प्रतिभाके साहित्यकार थे। उसकी कृति बाल-महाभारत, महाभारतका कथासार है और काव्यकल्पलता छन्द-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ। इनकी साहित्यिक ख्याति चतुर्दिक् फैल गयी थी। अलंकारप्रबोध, छन्दो-रत्नावली, सत्यादि शब्द समुच्चय, सूक्तावली और कलाकलाप इनकी अन्य रचनाएँ हैं। जिस प्रकार कालिदासका नाम दीपशिखा, हर्षका अनंगहर्ष है उसी प्रकार श्री अमरचन्द्र वेणी कृपाण छन्दके लिए प्रसिद्ध हैं, जिनकी रचना आपने बाल-महाभारतमें की है।

श्री विजयसेन सूरि न्यायके पण्डित थे। आपने बालचन्द्रकी विवेक मंजरी टीकाका संशोधन किया था। 'रेवन्तगिरि रासु' आपकी अपभ्रंश रचना है। आप बड़े प्रतिभाशाली कवि थे।

श्री उदयप्रभ सूरि, श्री विजयसेन सूरिके शिष्य थे। कहते हैं कि महामात्य वस्तुपालने इन्हें विविध शास्त्रोंमें पारंगत करनेके लिए दूर-दूरसे विद्वान् बुलवाये थे। आपकी रचनाओंके-नाम ये हैं—धर्माभ्युदय महाकाव्य, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी, वस्तुपालस्तुति, कर्णिका टीका, आरम्भ-सिद्धि और शब्दब्रह्मोल्लास। आपके शिष्य श्री जिनभद्र थे। इन्होंने गुजरात के इतिहासकी पुस्तक—जिसमें पुरानी ऐतिहासिक कथाओंकी रचना है—प्रणयन किया।

श्री नरचन्द्र जैन, ज्योतिषके सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ज्योतिषसार'के प्रणेता थे। 'कथारत्नसागर' तथा 'प्राकृतप्रबोध' आपकी उल्लेख्य रचनाएँ हैं। श्री नरचन्द्रप्रभा सूरिके अलंकारमहोदधि, श्री भालचन्द्रके वसन्तविलास महाकाव्य, श्री जयचन्द्र सूरिके हम्मीरमदमर्दन तथा श्री माणिक्यचन्दके शान्तिनाथ तथा पार्श्वनाथ चरित महाकाव्यों और मम्मटके काव्यप्रकाशकी दीपिका या जयन्ती टीका इस युगकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इस प्रकार मूलराजसे कर्णबघेल (१२९६—१३०४) अन्तिम हिन्दू राजा तक अभूतपूर्व साहित्य-रचना हुई। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश एवं अपभ्रंशोत्तर काव्यमें इस समय जितनी प्रभूत साहित्य-साधना हुई उसका बहुत बड़ा भाग अब भी जैन भण्डारोंमें अप्रकाशित पड़ा है। अनेक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ जो भारतके किसी भाग अथवा अपने मूलस्थानमें नहीं मिलते, वे यहाँ प्राप्य हैं। नैषध महाकाव्यकी प्राचीनतम प्रतिलिपि की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। ऐसे ही दुर्लभ ग्रन्थोंमें राजशेखरकी 'काव्यमीमांसा' तथा मूल संस्कृत 'तर्कसंग्रह' केवल जैन-साहित्य भण्डारों में ही प्राप्य हैं। चौलुक्यकालीन साहित्य-साधनामें महाकाव्यों, नाटकों, व्याकरण, छन्द, न्याय, ज्योतिष, समालोचना, प्रशस्ति, स्तोत्र, स्फुट कविताओं, प्रबन्ध, अपभ्रंश, रास आदिकी प्रभूत रचनाएँ हुई हैं। इनमें-से बहुत बड़ा भाग अब भी अप्रकाशित और अज्ञात-सा पड़ा हुआ है। उनके प्रकाशन, पुनर्मूल्यांकन तथा उनमें व्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक परि-

स्थितियोंके चित्रणसे ही इस साहित्यिक, सांस्कृतिक स्वर्णयुगका दीप्तिपूर्ण चित्र उपस्थित किया जा सकता है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंह सिद्धराज ललित और वास्तु-कलाके प्रेमी तथा संरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नतिक्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री वहड तथा वायड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रों सर्वदेव तथा शम्भासेठके निरीक्षणमें 'कुमारविहार' का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी पार्श्व-नाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके साथके अन्य चौबीस मन्दिरोंमें उसने चौबीस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियाँ स्थापित कीं। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य 'त्रिभुवनविहार' का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ स्थापित थीं। इन मन्दिरोंके शिखर भाग स्वर्ण-मण्डित थे। मध्यके मन्दिर में तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबीस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरों में 'त्रिविहार' नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोंमें विभा-जित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रखी काष्ठपर अंकित कलात्मक वस्तुएँ हैं। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। सम्भवतः उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकड़ोके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन

काष्ठके भवनोंके ध्वंसावशेष भी नहीं मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिनमें चावड़ा राजा रहते थे।[1] फ़ोर्ब्स् ने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा है कि राजाका भवन 'राजपाथीक' कहा जाता था, जहाँ राजप्रासादके अतिरिक्त अन्य राजकीय भवन भी थे। यह कीर्तिस्तम्भोंसे अलंकृत किया जाता था। घटिकाद्वार ही नगरद्वार था। यह नगरकी दिशामें खुलता था। मुख्य गलीमें तीन द्वारोंकी त्रिपोलिया होती थी।[2]

चौलुक्योंके कालकी सैनिक इमारतोंमें क़िलोंके ध्वंसावशेष ही अब बच गये हैं। ये और कुछ नहीं अपितु नगरके चतुर्दिक् विशाल दीवालके रूपमें हैं। उस समय जैसा एक शिलालेखमें कहा गया है इन्हें 'प्राकार' कहते थे। वडनगर प्रशस्तिमें लिखा है कि एक ऐसा 'प्राकार' कुमारपालने आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) नगरके चतुर्दिक् बनवाया था।[3] वडनगर की उक्त दीवारका अवशेष भी अब नहीं मिलता, क्योंकि वर्गेसने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। हाँ, उसने नगरके उत्तरकी बाहरी दीवारोंका उल्लेख अवश्य किया है।[4]

चौलुक्यकालीन ध्वंसावशेषोंमें धवोई तथा झिनजूवाड़ाके क़िले अध्ययन करने योग्य हैं। धवोईकी दीवारें प्रायः ध्वस्त होकर गिर गयी हैं, किन्तु मुख्यद्वारके अवशेषसे उस कालके द्वारोंकी सजावट तथा कलात्मक योजनाका सहज अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः सर्वप्रथम धवोईके चतुर्दिक् दीवार जयसिंह सिद्धराजने बनवायी। वर्गेसका कथन है कि चार मुख्य

---

१. 'इह धवलहरेसु चिरं चावुक्कडराय लालिओ वसियो।'
—मोहराजपराजय : अंक ४, पृष्ठ ४७।

२. रासमाला : अध्याय १३, पृष्ठ २३७।

३. इपि० इण्डि० : खण्ड १, पृष्ठ २९३।

४. वर्गेस, ए० एस० डब्लू० आई० : ९, ८२-८६।

द्वारोंमें बड़ौदाद्वार सबसे कम क्षतिग्रस्त है। इसमें तत्कालीन वास्तुकला का स्वरूप देखा जा सकता है। वर्गेसने झुनजूवाड़ामें एक ऐसे और द्वारका उल्लेख किया है, जो सम्भवतः उस पहाड़ी क़िलेका होगा जिसे चौलुक्योंने सौराष्ट्रसे होनेवाले आक्रमणोंके प्रतिरोध निमित्त निर्मित किया होगा।[१] इस द्वारपर अंकित कला भी धवोईसे प्रायः साम्य रखती है। हाँ, इसमें कतिपय भिन्न वस्तुएँ भी हैं जो धवोईमें नहीं मिलतीं। ये हैं अश्वपर सवार मनुष्य, शार्दूल तथा नृत्य करती हुई मूर्तियाँ।[२]

इस कालके इतिहासों तथा शिलालेखोंसे झील, तालाब, वापी, कूप आदिके निर्माणका पता लगता है। ये राजकीय संरक्षणमें भी बनते थे और जनता-द्वारा भी। भीमप्रथमकी रानी उदयमतिने अनहिलवाड़ामें रानी वाप बनवाया। कर्णने मोढ़ेरा तथा दधिपद्रके निकट रुपन नदीपर कर्णसागरका निर्माण कराया। इसी प्रकार सिद्धराज जयसिंहने सहस्रलिंग नामक विशाल तालाब बनवाया।[३] जयसिंहकी माता रानी मीनलदेवीने लगभग सन् ११००में वीरमगाँवमें मानसूर झील बनवायी।[४] इसका आकार कुछ वक्र प्रतीत होता है और यह शंखाकार प्रतीत होती है।[५] इसमें जल तक पहुँचनेके लिए सीढ़ियाँ तथा घाट भी बने हैं। घाटपर प्राचीन समयके ५२० मन्दिरोंमें-से अब केवल ३५७ ही छोटे मन्दिर रह गये हैं।[६] इन्हीं मन्दिरोंके अवलोकनसे इस बातकी कल्पना सम्भव हो सकती है कि

---

१. वर्गेस : ए० के० के० : पृ० २१७।

२. वही।

३. ए० एस० डब्लू० आई० : ९, पृ० ३९।

४. आर्कैयॉलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया वेस्ट सर्किल : अध्याय ९, पृ० ३९।

५. वही : अध्याय ८, पृ० ९१।

६. वही।

सहस्रलिंग तालाबमें एक हज़ार एक शिवलिंगकी स्थापना कैसे हुई।

शिल्पशास्त्रके अनुसार वास्तुकलाकी तीन प्रमुख शैलियाँ हैं। ये हैं नागर, द्रविड़ तथा बेसरा। हिमालय तथा विन्ध्यके मध्य उत्तर भारतमें नागर शैलीका ही प्रचलन रहा है। अपराजितपृच्छेच्छामें यह उल्लेख मिलता है कि नागरशैली मध्यदेशमें ही प्रचलित रही है और लाटमें लाटी शैलीके अनुसार भवनों तथा मन्दिरोंका निर्माण होता था।[1] हयशीर्ष-पंचरात्रम्के अनुसार लाट (लाटी) मन्दिर नागर शैलीके ही समान होते थे—केवल उनके निर्माणमें अन्तर होता था। चौलुक्य मन्दिरोंकी सबसे प्रमुख विशेषता होती थी उनके शिखर। गुजरातके शिल्पशास्त्रके अनुसार शिखर चौबीस प्रकारके होते थे।[2] मुख्य शिखर सदा मूर्तिके ठीक ऊपर रहता है। बादके मन्दिरोंमें मुख्य शिखरके साथ उरुश्रृंग, श्रृंग और अंग शिखर भी मिलते हैं। साढ़ेराके मन्दिरमें तथा सुमेरुके नीलकण्ठ महादेव मन्दिरमें ऐसी ही निर्माण-शैली मिलती है।

चौलुक्यकालीन मन्दिरोंका निचला भाग भी उत्तर भारतीय नागर मन्दिरोंके समान ही होता था। चौलुक्यकालके मन्दिरोंकी आधारभूत रूपरेखा यह होती थी—एक तो वह भाग जहाँ देवमूर्तियाँ होती थीं और दूसरा वह आगेका भाग जिसमें स्तम्भ हुआ करते थे और जिसे गूढ़-मण्डप भी कहा जाता है। कभी दोनों भाग संयुक्त और समानान्तर होते थे और कभी संयुक्त भी रहते थे। सामान्यतः छोटे मन्दिरोंमें तदनुरूप आकारके मण्डप हुआ करते थे और बड़े मन्दिरोंमें अनेक भव्यमण्डपोंका निर्माण हुआ करता था। मोढ़ेरा मन्दिरमें ऐसी ही विशाल रचना देखने को मिलती है। यहाँ न केवल गूढ़ मण्डप ही है बल्कि एक पृथक् सभा-

---

१. 'नागरी मध्यदेशे तु लाटी लाटप्रकीर्तिता'—प्राचीन हस्तलेखसे श्री एस. के. सरस्वतीका उद्धरण।

२. ए. ए. एन. जी. २७।

मण्डप, रंगशाला तथा नृत्यशाला भी है।

नवीनतम अनुसन्धानोंसे इस बातकी सम्भावना स्पष्ट है कि चौलुक्य-कालीन कुछ विशाल मन्दिरोंके मण्डप कई खण्डोंके होते थे। दुर्भाग्यकी बात है कि इन मन्दिरोंके वर्तमान अवशेष अब इस स्थितिमें नहीं रहे जिनके आधारपर उनकी रूपरेखा सुस्पष्ट हो सके। चौलुक्यकालीन मन्दिरोंमें एक अन्य प्रमुख विशेषता है उनकी दीवारोंका ऐसा वैज्ञानिक एवं कला-त्मक निर्माण जिनके द्वारा जहाँ प्रकाश तथा छायाका सुन्दर स्वरूप देखने को मिलता है वहीं मन्दिरोंकी भव्यता तथा सुदृढ़तामें भी वृद्धि होती है। चौलुक्यकालीन मन्दिरोंको हम तीन मुख्य भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—(१) पीठ अथवा आधार (२) माण्डोवरा या दीवार तथा (३) शिखर। मन्दिरके निर्माणमें पहले पक्की नींव डालकर खड़ाशिलाका निर्माण होता है और फिर इसीपर पीठका निर्माण। इसका बाह्य धरातल, भवन-का धरातल होता है। मन्दिरके इसी भागमें ग्रासपत्ती होती है जिसे कीर्तिमुख और कीर्तिवक्त्रसे अलंकृत किया जाता है। भवनोंमें अलंकरणकी यह शैली अत्यन्त प्राचीन है जो गुफामन्दिरों तथा अन्य भवनोंमें भी पायी जाती है। इसमें एक पंक्तिमें हाथी बने रहते हैं और उनका मस्तक तथा अगला पैर इस प्रकारकी मुद्रामें अंकित रहता है, मानो भवनका भार वे ही उठाये हुए हों। इसे गजपीठ कहा जाता है। अश्वथरा—ऐसी ही स्थिति में घोड़ोंकी अंकित पंक्तियाँ होती हैं। नरथारा ऐसी ही मुद्रामें मनुष्यों की पंक्तियाँ होती हैं, जिनमें पौराणिक दृश्य तथा घटना प्रसंग उत्कीर्ण रहते हैं।

विशाल छतोंको नीचेसे सँभालनेवाले शिल्पयुक्त स्तम्भ भी चौलुक्य-कालीन मन्दिरोंकी प्रमुख विशेषता है। मन्दिरोंके ये स्तम्भ विधिवत् सुनियोजित भागोंमें विभक्त रहते थे और उनका निर्माण भवनकी सुदृढ़ता तथा सुन्दरता वृद्धि—दोनों दृष्टियोंसे हुआ करता था। स्तम्भका सबसे निचला भाग 'कुम्भी' कहा जाता था। उसके ऊपर कवल तथा 'ग्रासापट्टी'

होती थी। खम्भेका ऊपरी भाग भरणी कहा जाता था। इसीपर स्तम्भ शीर्ष रहता था। खम्भेके इस भागमें ब्राइकेट हुआ करते थे। कुम्भीसे भरणी तकका भाग ही स्तम्भका मुख्य भाग होता था। स्तम्भके निचले भागके चतुर्दिक् दिक्पालोंकी आकृतियाँ होती थीं। इनके ऊपर मन्दिरके अधिष्ठाता देवके वर्गकी देवियोंका चित्रांकन रहता था। इनके ऊपरके भागमें गन्धर्वोंकी आकृतियाँ उत्कीर्ण रहती थीं। जिन मन्दिरोंका केन्द्रीय गुम्बदाकार शिखर पार्श्वकी छतसे ऊँचा रहता था और खम्भेके ब्राइकेटसे अधिक ऊँचाईपर होता था, वहाँ उच्छलाक या विरहकान्ता युक्त ऊँचे स्तम्भ-शीर्षका प्रयोग होता था। पर्सीब्राउनने इन स्तम्भोंको 'एटिक पिलर्स'के नामसे सम्बोधित किया है।

चौलुक्य-मन्दिरोंकी उल्लेख्य विशेषता है उनके गुम्बदाकार शिखर। अन्य भारतीय मन्दिर ऐसे शिखरोंसे युक्त नहीं होते। ये गोलाकार शिखर, अष्टकोण आकारके स्तम्भोंसे युक्त रहते थे। इस प्रकार इन मन्दिरोंके भीतरी भागकी बनावट भी कलात्मक और ज्यामितिक आधारपर भव्य स्तम्भों-सहित दर्शनीय रहती थी। चौलुक्य-मन्दिरोंकी दूसरी मुख्य विशिष्टता है उनके अन्तर्भागकी कलात्मकता। साधारणतः यह देखा जाता है कि मन्दिरोंका बाह्य भाग तो अत्यधिक शिल्प सौन्दर्यसे युक्त रहता है किन्तु उसका भीतरी भाग सादा होता है। चौलुक्यकालीन मन्दिरोंके बहिर्भागके समान ही उसके अन्तर्भाग भी शिल्पकलासे सज्जित एवं अलंकृत रहते थे। केवल मार्ग तथा अत्यन्त भीतरी भाग ही इसके अपवाद हुआ करते थे। इसका प्रमुख कारण यह भी प्रतीत होता है कि गुजरातमें काष्ठ-कला अत्यन्त विकसित एवं उन्नत थी और इसने तत्कालीन शिल्पकारोंको प्रभावित किया था। संगतराश उन्हींको प्रस्तरमें भी अंकित और उत्कीर्ण किया करते थे। यह तथ्य मोढ़ेरा मन्दिर तथा विश्व-प्रसिद्ध आबूके जैन-मन्दिरोंको कलात्मक छतोंके भीतरी भागोंसे स्पष्ट है।

• मन्दिरके सम्मुख तोरण और एक विशाल तालाब भी चौलुक्यकालीन

मन्दिरोंकी प्रमुख विशेषता रही है। तोरण दो खम्भोंपर अत्यन्त ही कलात्मक शिल्पसज्जासे युक्त होता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रोंके अनुसार देव-मन्दिरोंके निकट तालाबका रहना आवश्यक माना गया है।[1]

ऐतिहासिक दृष्टिसे गुजरातके सबसे महत्त्वपूर्ण मन्दिर हैं—सोमनाथ, रुद्रमहालय तथा मोढ़ेराका सूर्य मन्दिर। पवित्र जैन तीर्थ और कलात्मक निर्माण होनेके कारण शत्रुंजय मन्दिरोंका भी विशेष महत्त्व है। आबूके जैन मन्दिर भी तीर्थ और अनुपम वास्तुकलाके कारण प्रसिद्ध हैं। सुमेरु मन्दिरका ऐतिहासिक महत्त्व इस कारण विशेष है कि ये अभी तक अपने प्रकृत रूपमें विद्यमान हैं और उनपर न तो आक्रमणकारियोंकी दृष्टि पड़ी और न प्रकृतिके प्रकोपसे ही अभी तक उनमें कोई विकृति आयी है।

सोमनाथका मन्दिर

गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके समय सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है।

सोमनाथ मन्दिरका निर्माण सर्वप्रथम कब और किसने किया, इस सम्बन्धमें एक पौराणिक गाथा है। यह कथा सोमनाथकी अति प्राचीनता का जहाँ प्रतिपादन करती है, वहीं इसके राष्ट्रव्यापी महत्त्वपर भी प्रकाश डालती है। कथा इस प्रकार है—जब नारायणकी नाभिसे कमल निकला और नाभि-कमलसे हिरण्यगर्भ, तो ब्रह्मा अपने जनकके सम्बन्धमें जिज्ञासु हुए। अपनी शंकाका समाधान करनेके हेतु उन्होंने तपश्चर्या प्रारम्भ की। तपसे प्रसन्न हो विष्णुने ब्रह्माको दर्शन दिये और कहा कि मेरे द्वारा ही तुम्हारा प्राकट्य हुआ। इसपर ब्रह्माके क्रोधका पारावार न रहा। वे अपमानकी ज्वालासे जल उठे और प्रस्तुत हो गये युद्धके लिए। इसी समय दोनोंके मध्य एक अत्यन्त प्रकाशमान ज्योतिर्लिंगका आविर्भाव हुआ। विष्णुने वाराह तथा ब्रह्माने हंसका रूप धारण कर आकाश-पातालमें इस ज्योति-

---

१. बृहत्संहिता (LVI, V. 3

लिंगका रहस्य जानना चाहा। पर वे सफल न हुए। इसी ज्योतिर्लिंग पर एक स्वर्ण-मन्दिर था। बृहस्पतिकी साध्वी ताराको चन्द्रमा विमोहित कर स्वयं कर्त्तव्यच्युत हुए। कहा जाता है कि चन्द्रमाकी सत्ताईस पत्नियाँ थीं। उनमें-से रोहिणीके पीछे ही चन्द्रदेव उन्मत्त रहते थे। अन्य उपेक्षिताओंने दक्ष प्रजापतिके निकट जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनायी। दक्ष प्रजापति यह सुनकर अत्यन्त कुपित हुए और चन्द्रमाको क्षयका शाप दिया। अभिशप्त होकर चन्द्रदेव ज्योतिर्लिंगकी शरणमें आये और अनेक युग-पर्यन्त तपमें लीन रहे। प्रसन्न होकर ज्योतिर्लिंगने चन्द्रमाको शाप-मुक्त किया और पन्द्रह दिन क्षय तथा पन्द्रह दिन वृद्धिका वर दिया। इसी अवसरपर ऋषि-मुनियोंने ज्योतिर्लिंगके सम्मानमें सोमनाथके नामसे चन्द्रकुण्डकी स्थापना की। ज्योतिर्लिंगके प्रति अपनी असीम श्रद्धाकी अभिव्यक्ति चन्द्रमाने सोमनाथके सुवर्ण-मन्दिरकी स्थापना-द्वारा की।

इस प्रकार सत्ययुगमें चन्द्रमाने सोमनाथका स्वर्ण-मन्दिर निर्मित कराया। त्रेतामें रावणने सोमनाथमें तपश्चर्या की और रजतका मन्दिर बनवाया। द्वापरमें श्री कृष्णने चन्दनकाष्ठका सोमेश्वरका मन्दिर प्रतिष्ठित किया।

सोमनाथका यह ऐतिहासिक मन्दिर सौराष्ट्र काठियावाड़के वेरावल नामक स्थानमें समुद्र-तटपर अवस्थित है। द्वादश-ज्योतिर्लिंगोंमें सोमनाथ सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक महत्त्वके हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें सोमनाथका प्रथम उल्लेख ही उनके सर्वमान्य तथा अति प्राचीन स्वरूपका बोधक है। प्राचीनतम कालके इस मन्दिरका समस्त इतिहास, पौराणिक गाथाओंसे ही आवृत्त नहीं, अपितु इसका ऐतिहासिक स्वरूप भी है। पाटनके एक शिलालेख-द्वारा इसके निर्माणकी कथाके ऐतिहासिक आधार मिलते हैं।

सोमनाथके मन्दिरका वर्णन जिस शिलालेखमें मिलता है, उसे प्रभास-पाटन-शिलालेख कहते हैं। यह भद्रकाली मन्दिरके निकट एक पत्थरपर खुदा है। पाटनमें भद्रकालीका एक छोटा-सा किन्तु प्राचीन मन्दिर है।

इसी भद्रकाली मन्दिरके द्वारके निकट दीवारकी ओर एक ओरसे खण्डित शिलापर सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी कहानी उल्लिखित है। इस शिलालेखमें हमें सोमनाथके ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं जिनका अन्यत्र कहींसे पता नहीं लगता। इस शिलालेखके दाहिनी ओरके पत्थरका कोना टूटा हुआ है, इससे लेखकी कतिपय पंक्तियाँ अस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त, शिलालेख सुरक्षित तथा एकदम सुस्पष्ट है।

यह शिलालेख सन् ११६९ ई० तथा वल्लभी संवत् ८५० का है। इसमें भी सोमनाथ-मन्दिर-विषयक प्राचीन गाथाका उल्लेख है। इसमें लिखा है कि सोमेशदेवका मन्दिर सर्वप्रथम स्वर्णका था और इसे सोमने बनवाया था। इसके पश्चात् रावणने चाँदीका सोममन्दिर निर्मित कराया। श्री कृष्णने इसे लकड़ीका बनवाया। सम्राट् कुमारपालके समय सोमनाथका यह मन्दिर गण्ड-बृहस्पतिके निरीक्षणमें निर्मित हुआ।

गण्ड-बृहस्पतिके सम्बन्धमें शिलालेखमें जो विवरण मिलते हैं, उनके आधारपर कहा जा सकता है कि वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथो पाशुपत परम्पराका परम शैव था। वह मालवाके राजाओंका गुरु तथा सिद्धराज जयसिंहका मित्र था। उसने सोमनाथ स्थित अनेक मन्दिरों तथा धर्म-संस्थाओंका निर्माण एवं पुनर्निर्माण कराया। वह कितना शिवभक्त था, इस बातका सहजमें इसीसे पता लग सकता है कि जब उसे विदित हुआ कि कुमायूँका केदारेश्वर मन्दिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थितिमें है तथा वहाँका राजा उसके प्रति उपेक्षाभाव रखता है, तो स्वयं उसने केदारेश्वर मन्दिरका निर्माण कराया। भद्रकाली शिलालेखमें गण्ड-बृहस्पतिके इस कार्यका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार पौराणिक आधारकी पुष्टि प्रभास-पाटनके ऐतिहासिक शिलालेख-द्वारा भी होती है। स्पष्ट है कि परम्परासे प्राप्त सोमनाथके निर्माणकी इस कहानीमें गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके कालमें चिरस्मरणीय कड़ियाँ जुड़ती हैं। वस्तुतः चौलुक्य राजाओंके समय १२ वीं शताब्दीमें

सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिके इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है। चौलुक्य सम्राट् कुमारपालने सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी योजना किस प्रकार बनायी तथा वह किस प्रकार कार्यान्वित की गयी, इसका भी अपना इतिहास है। इसके पूर्व महमूद ग़ज़नीके सोमनाथ-आक्रमणका उल्लेख तथा विभिन्न परिस्थितियोंकी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी। महमूद ग़जनीके आक्रमणका उल्लेख करते हुए संसारके अनेकानेक इतिहासकारोंने सोमनाथ मन्दिरका वर्णन किया है। इन इतिहासकारोंके विवरण यद्यपि सोमनाथके वास्तविक स्वरूपका बोध करानेमें समर्थ नहीं, और कहीं-कहीं तो ये अत्यन्त भ्रामक भी हैं, तथापि उनकी चर्चा हमें सोमनाथ मन्दिरके स्वरूपकी रूप-रेखा समझनेमें बहुत सहायता देती है।

सोमनाथके आक्रमणका भारतीय साहित्यमें कहीं उल्लेख नहीं मिलता, यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है। भारतीय इतिहासके पाश्चात्य लेखकोंने अवश्य ही इसका विशद वर्णन किया है और इसे अत्यधिक महत्त्वका माना है। प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार विसेण्ट स्मिथ, स्टेनले लेन पूल, एलफिन्स्टन, फ़ोर्ब्स् आदिने सोमनाथके आक्रमणका विस्तृत विवरण अपने इतिहासोंमें दिया है। भारतीय साहित्यमें महमूद ग़ज़नीके इस आक्रमणकी कोई चर्चा न मिलनेका यही कारण प्रतीत होता है कि सोमनाथ भारतीय संस्कृतिका अंग था और उसके स्थूल स्वरूपका प्रतीक। भारतीय संस्कृतिकी उस अखण्डताको मन्दिर-ध्वस्त कहने मात्रसे विनष्ट नहीं किया जा सकता था। यवन आक्रमणकारी भी सोमनाथको भारतीय संस्कृतिका संगम तथा प्रधान केन्द्र समझते थे। इसके साथ ही, यहाँकी अतुलनीय धनराशि तथा विश्व-विश्रुत वैभव भी उनके लोभका कारण था। महमूद ग़ज़नीके आक्रमणमें उसकी धन-लोभकी वृत्ति स्पष्ट थी। इस सम्बन्धमें मध्यकालीन भारतके इतिहास-लेखक श्री स्टैनले लेन पूलका कथन दृष्टव्य है—"जबतक यह (सोमनाथ) मन्दिर था, महमूद

की मूर्तितोड़क भावनाको शान्ति न मिलती थी और यह विचार भी उसे चैन न लेने देता था कि उसके खज़ानेमें भारतके सुन्दरतम तथा अमूल्य रत्न नहीं आये थे। इसीलिए मुलतानसे भयंकर मरुभूमिको पार करता हुआ वह अनहिलवाड़ाकी ओर आया और समुद्रतटकी ओर मुड़ा, जहाँ सोमनाथका मन्दिर, भारतीय संस्कृतिकी उज्ज्वल कीर्तिध्वजा फहराता गौरवसे अरब समुद्रके तटपर खड़ा था।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री विंसेण्ट स्मिथने लिखा है कि महमूद ग़ज़नीके सोलहवें आक्रमणका उद्देश्य सौराष्ट्र अर्थात् काठियावाड़के समुद्र-तटपर स्थित प्रभास-पाटनके सोमनाथके प्रसिद्ध मन्दिरको लूटना था। सोमनाथका मन्दिर अपने वैभव और अनन्त धनराशिके लिए भारतमें ही नहीं, मध्यपूर्व के देशोंमें भी प्रसिद्ध था। महमूद ग़ज़नीके इस हमलेका विशेष उद्देश्य था सोमनाथकी विशाल धन-राशिको हस्तगत करना।

इतिहासकारोंमें इस प्रश्नपर मतभेद है कि महमूद ग़ज़नीने किस सन्में सोमनाथपर चढ़ाई की। महमूदको सोमनाथ-आक्रमणके लिए विशेष तैयारी करनी पड़ी थी और इन समस्त व्यवस्थाओंमें उसे गुजरातमें लगभग एक वर्ष रहना पड़ा था। महमूद सन् १०२३ ई०में ग़ज़नीसे ३० हज़ार घुड़सवार सेनाके साथ चला। इसके अतिरिक्त सहायक सैनिकोंकी भी काफ़ी संख्या थी। महमूद जिस मार्गसे सोमनाथपर चढ़ाई करने आया था, उसमें खाद्य-सामग्री तथा जल, दोनोंका अभाव था। इसलिए निश्चय ही उसे अपनी विशाल सेनाके लिए पर्याप्त रसद तथा अन्य सामग्री एकत्र करनी पड़ी होगी। अवश्य ही इस व्यवस्थामें उसे काफ़ी समय लगा होगा। फलस्वरूप महमूद १०२४ ई० के मार्च या १०२५ ई० के पूर्व सोमनाथ नहीं आया होगा। सोमनाथके आक्रमणका तिथिसमेत उल्लेख महमूदके दो-सौ वर्ष पश्चात्, अर्थात् सन् १२३० ई० में इब्न असीरकी 'कामिलुत्तवारीख' में भी मिलता है। इतिहासकार स्टैनले लेन पूल तथा विंसेण्ट स्मिथने लिखा है कि सन् १०२५-२६ ई० में सुलतान महमूद ग़ज़नीने गुजरातपर आक्रमण

कर सोमनाथपर विजय प्राप्त की। सोमनाथके लिए जो भीषण संग्राम हुआ उसमें महमूदकी अन्तमें विजय हुई और उसे अपार धनराशि हाथ लगी। इतिहासकार पूलने लिखा है कि जब सोमनाथ मन्दिरपर महमूदका आक्रमण हुआ तो विशालकाय मन्दिरमें ब्राह्मणोंकी भारी भीड़ प्रार्थना कर रही थी और उन्हें पूर्ण विश्वास था कि वे यवनोंसे त्राण पा सकेंगे। शत्रु-ओंके संहारमें भगवान् सोमनाथ अवश्य सहायक होंगे, ऐसी उनकी अटल श्रद्धा-भावना थी। किन्तु यवनोंको ये भावनाएँ न डरा सकीं। उन्होंने दीवारोंको तोड़ कर विशाल मन्दिरमें प्रवेश किया। भगवान् सोमनाथ अपने सेवकोंकी प्रार्थनापर मौन थे। इस भयंकर संग्राममें ५० हज़ार हिन्दू मारे गये तथा पवित्र मन्दिर यवनों-द्वारा लूटा गया। सोमनाथका विशाल शिव-ज्योतिर्लिंग आक्रामकने विध्वस्त किया और उसके टुकड़े अपने साथ ग़ज़नी ले गया। सोमनाथ मन्दिरका द्वार भी वह अपने साथ ग़ज़नी लेता गया। स्टैनले पूलका कथन है कि १० लाख पौण्डकी धनराशि आक्रामकके हाथ लगी थी। प्रायः सभी इतिहासकारोंने महमूद ग़ज़नीके द्वारा विशाल धन एवं रत्न-राशि ले जानेकी बात एक स्वरसे कही है।

अंग्रेज़ तथा मुसलमान इतिहासकारोंने सोमनाथ मन्दिरका अत्यन्त वैभव-सम्पन्न चित्र रखा है। कुछ इतिहासज्ञोंने तो अनुमान तथा असत्य आधार पर सोमनाथके ज्योतिर्लिंग तथा वहाँ चलनेवाली साधनाका कपोल-कल्पित चित्र अंकित किया है। स्टैनले पूलने लिखा है कि सोमनाथका मन्दिर भारत में ही नहीं विदेशोंमें भी हिन्दू संस्कृति तथा वैभवके लिए प्रसिद्ध था। यहाँ लाखोंकी संख्यामें यात्री आते थे। एक हज़ार ब्राह्मण मन्दिरमें सेवा-अर्चनामें लगे रहते तथा यहाँकी असंख्य धनराशिकी रक्षा करते थे। कई सौ नृत्य तथा संगीत प्रस्तुत करनेवाली सुन्दरियाँ मन्दिरके द्वारपर नाचती थीं। विंसेण्ट स्मिथने लिखा है कि सोमनाथका मन्दिर मुख्यतः शीशमकी लकड़ी का बना था और यहाँ पत्थरके शिवलिंगकी मूर्त्ति-पूजा होती थी। मन्दिर-के मुख्य भवनमें ५६ खम्भे थे जो राँगेसे आवृत थे।

इतिहासकार श्री पूलने लिखा है कि इस मन्दिरके भीतर पत्थरका लम्बा शिवलिंग था जो बहुमूल्य रत्नाभूषणोंसे अलंकृत रहता था। रत्नजटित झाड़-फानूसोंसे यहाँ प्रकाश फैलता था। मन्दिरमें बहुमूल्य रत्नोंके फल-फूल जटित थे जिनसे सोमनाथ मन्दिरका गर्भागार सर्वदा जगमगाता रहता था।

फ़रिस्ताने अपने इतिहासमें शिवलिंगके सम्बन्धमें एक कहानी लिखते हुए कहा है कि मन्दिरके पुजारियोंने मूर्ति न तोड़नेकी महमूदसे प्रार्थना की और इसके बदले काफ़ी धनराशि देनी चाही, किन्तु महमूद न माना और उसने मूर्त्तिपर तलवार चला कर उसके दो टुकड़े कर दिये जिससे रत्नोंका ढेर निकला। यह कहानी निश्चित रूपसे असत्य आधारपर है।

मूर्त्ति, जैसा कि सर डब्लू० डब्लू० हण्टरने कहा है, भारतके बारह ज्योतिर्लिंगोंमें एक थी। इसे तलवारसे काटा नहीं जा सकता था। यह सम्भव है कि इसके भीतर छिपनेका कोई स्थान नीचेसे रहा हो। अल-बरुनी, जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने इस मूर्त्तिको आँखों देखा था, लिखता है कि सोमनाथका शिवलिंग अन्य शिवमन्दिरोंमें मिलनेवाले शिवलिंगोंकी तरह नहीं था। महमूदके प्रशस्ति-गायकोंने कहा है कि वह मूर्त्ति पोली नहीं थी।

इस प्रसंगमें एक कथा अत्यन्त मनोरंजक है। कहा जाता है कि फ़ारसी कवि सादी (१२००-१२३०) सोमनाथ मन्दिर आया था। उसने हाथी-दाँतकी सोमनाथकी मूर्त्तिके दर्शन किये। इस मूर्त्तिकी बाँहें एक डोरीसे बँधी थीं, जिसे एक छिपा हुआ पुजारी खींचे हुए था। सादीके अनुसार, कहते हैं कि जब उसने धर्म-परिवर्तनकी बात कही तो सोमनाथ मन्दिरके पृष्ठ भागमें उसे प्रवेश करने दिया गया। उसने उस रस्सी पकड़नेवालेको देखा और उसे दीवारमें ढकेल कर भाग गया। लेकिन इतिहासकारोंका कथन है कि यह सन्देहास्पद है कि सादी कभी सोमनाथ आया था। सोमनाथमें हाथी-दाँतकी मानव-मूर्त्तिकी पूजाका कहीं कोई विवरण भी नहीं मिलता है।

कहना न होगा सोमनाथकी ज्योतिर्लिंग सम्बन्धी उपर्युक्त अधिकांश कथाएँ कल्पनाके आधारपर अंकित हैं। सोमनाथ मन्दिर शैव तथा शाक्त सम्प्रदायकी साधनाभूमि था। यहाँ पाशुपत सिद्धान्तकी प्रयोग-सिद्धिके साथ त्रिपुरसुन्दरीकी भी साधना चलती थी। इस सम्बन्धकी चमत्कारिक कथाओंके आधारपर ही इन विदेशी इतिहासलेखकोंने विश्वविश्रुत वैभवसे युक्त सोमनाथ-मन्दिर-विषयक कहानियाँ गढ़ ली थीं।

इस मन्दिरके पुनर्निर्माणके सम्बन्धमें प्रबन्धचिन्तामणिमें मेरुतुंगने स्पष्ट लिखा है कि जब कुमारपालने हेमाचार्यके गुरु श्री देवसूरिसे अपना सुयश चिरस्थायी बनाये रखनेके सम्बन्धमें पूछा तो श्री देवसूरिने कहा कि सोमनाथका एक नया मन्दिर पत्थरका बनवाओ जो युगों तक स्थायी रहे, लकड़ीका बना मन्दिर समुद्रकी लहरोंसे क्षतिग्रस्त हो गया है। कुमारपाल ने इसपर अपनी स्वीकृति दी तथा एक मन्दिर-निर्माण-समिति नियुक्त की जिसे पंचकुल कहा जाता था। इस पंचकुल अथवा समितिके अध्यक्ष सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी ब्राह्मण गण्ड भावबृहस्पति थे।

सोमनाथ मन्दिरके ऐतिहासिक निर्माणके समय चौलुक्य सम्राट् कुमारपालने हेमाचार्यके आदेशानुसार एक प्रतिज्ञा की। यह प्रतिज्ञा मन्दिरके शिलान्यासके समय की गयी थी। दो वर्ष पश्चात् जब मन्दिरका निर्माण पूर्ण हुआ तथा ध्वजारोहण हुआ तो हेमाचार्यने कुमारपालको परामर्श दिया कि वह उस समयतक अपनी पूर्व प्रतिज्ञा न भंग करे जबतक वह स्वयं मन्दिर जाकर भगवान् सोमनाथके दर्शन न कर आवे। कुमारपालने तदनुसार ही किया।

इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालने सोमनाथ मन्दिरका ऐतिहासिक निर्माण करा, भारतीय संस्कृतिकी धवल-ध्वजा फहरायी और अक्षय यश-गौरवका अर्जन किया।

सोमनाथ मन्दिरपर मुसलिम आक्रमणोंका यह क्रम कई शताब्दियों तक चलता रहता; पर होता यह था कि आक्रमणके पश्चात् तत्काल ही

पुनर्निर्माणका कार्यारम्भ भी हो जाता था। बादके आक्रमणोंमें केवल सांस्कृतिक दृष्टिसे भारतीयोंका पददलन करनेके हेतु हमला किया जाता था। सोमनाथका विदेशोंमें विश्रुत वैभव तो लुट चुका था, अतः उसका लोभ किसी बादके आक्रामकको होना सम्भव नहीं। यह भारतीय संस्कृति-पर प्रहार था। विजेताकी यह स्वाभाविक इच्छा भी रहती है कि विजित अपनी संस्कृति विस्मृत कर उसकी संस्कृति अपना ले। शस्त्रबलकी विजय स्थायी विजय नहीं हो सकती। जबतक कि विजित, विजेताकी संस्कृति भी न अपना ले, तबतक पूरी विजय नहीं। चौलुक्य कुमारपाल-द्वारा सोम-नाथ मन्दिरके निर्माणके बाद यवन शासकोंके आक्रमण इसी बातका संकेत करते हैं। पर भारतीय, सोमनाथके मन्दिर ध्वस्त किये जानेपर विचलित नहीं होते थे और आक्रमण समाप्त होते ही मन्दिरका पुनर्निर्माण प्रारम्भ हो जाता था।

कुमारपालके बनवाये सोमनाथ मन्दिरको बादके मुसलिम शासकोंने अनेकानेक बार पुनः क्षति पहुँचायी। इसके स्पष्ट विवरण मिलते हैं। १३०० ई० में अलफरखाँ-द्वारा, १३९० ई० में मुज़फ़्फ़र-द्वारा, १४९० ई० के लगभग महमूद बेगदा और मुजफ़्फ़र द्वितीय-द्वारा सन् १५३० ई०में इस मन्दिरको पुनः क्षति पहुँचायी गयी।

कुमारपालके बाद खेंगण चतुर्थ (१२७९-१३३३)-द्वारा सोमनाथका पुनर्निर्माण बहुत प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजीने जब सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किया था, उसके पश्चात् ही उक्त नामके जूनागढ़के चौदशम् राजा-ने, जिसका गिरिनारके दो शिलालेखोंमें उल्लेख मिलता है, सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। गिरिनार-शिलालेखमें जूनागढ़का उक्त राजा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें उल्लिखित है।

अहमदाबादके राजा मुज़फ़्फ़र शाह द्वितीय (१५११-१५३३)के समय सोमनाथ मन्दिरको मसजिदके रूपमें परिवर्तित करनेका प्रयत्न किया गया। इस प्रकार, स्पष्ट है कि सोमनाथ मन्दिरका अनेक बार पुनर्निर्माण हो चुका

है। तेरहवीं शताब्दीमें अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमणके बाद सोमनाथ मन्दिर बना। यह पाँचवाँ मन्दिर था। इसके पश्चात् अहिल्याबाईने सन् १७८३ ई० में प्राचीन मन्दिरके पार्श्वमें ही एक मन्दिरका निर्माण किया।

स्वतन्त्र भारतमें सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण भारतीय संस्कृतिकी अमरता तथा अखण्डताका ज्वलन्त उदाहरण है। गुजरातके इतिहासकार तथा प्रसिद्ध साहित्यिक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीने लिखा है कि, 'सोमनाथका शिवालय वास्तवमें न तो कोई घर था, न कोई शहर और न कोई स्वस्थ प्रदेश; किन्तु शताब्दियोंसे चली आ रही श्रद्धाने उसे देवभूमिके समान समृद्ध और मोक्षदायी बना रखा था।' वस्तुतः जिस स्थानमें सहस्रों ब्राह्मण अहर्निश वेद-पाठ तथा शिव-साधनामें लगे रहते थे, जहाँ उत्तर प्रदेशसे गंगाका जल अभिषेकके लिए नित्य लानेकी व्यवस्था थी; जहाँ शत-शत सुन्दरियाँ प्रातःसे अर्धरात्रि तक नृत्य, गान तथा वाद्यसे सोमनाथकी आराधनामें लीन रहती थीं, उस स्थानका विशेष सांस्कृतिक महत्त्व न हो, ऐसा कैसे हो सकता है। विदेशी आक्रामकों-द्वारा सोमनाथ-पर आक्रमणका अभिप्राय स्पष्टतः भारतीय संस्कृतिपर प्रहार ही रहा है।

सोमनाथका लकड़ीका विशालकाय द्वार महमूद अपने साथ ग़ज़नी ले गया था। यह द्वार पहले ग़ज़नी शहरके द्वारपर स्थापित किया गया था और महमूदकी मृत्युके पश्चात् उसकी क़ब्रके निकट खड़ा किया गया। अनन्त धनराशिके साथ देवदारुकी लकड़ीके द्वार ले जानेका अर्थ क्या हो सकता है? यह केवल सांस्कृतिक विजयके प्रदर्शनके ही लिए था। सोमनाथके द्वारके प्रश्नको लेकर पाकिस्तानकी सरकारने अफ़गान सरकारके विरुद्ध यह कह कर प्रचार किया था कि अफ़गानिस्तान भारतको सोमनाथका द्वार वापस कर रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि सोमनाथका यह द्वार १८४२ ई० में लार्ड एलनबरा भारत ले आये थे। यह द्वार आगरेके शस्त्रागारमें रखा है। इसपर महमूद ग़ज़नीकी प्रशस्ति अंकित है।

कुमारपालने बहुत-से जैन चैत्य और मठ भी बनवाये। स्तम्भतीर्थ या

खम्भातमें उसने सागल वसहिकके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, जहाँ हेमचन्द्रने दीक्षा ली थी। जिस महिलाने विपत्तिकालमें उसे जौका आटा तथा दही खिलाया था, उसकी स्मृतिमें उसने पाटनमें 'करम्बकविहार' नामक एक मन्दिर निर्मित कराया। इतना ही नहीं प्रारम्भिक जीवनके पर्यटन-कालमें मूषककी जो हत्या हो गयी थी, उसका प्रायश्चित्त करनेके लिए उसने 'मूषकविहार' नामक मन्दिर बनवाया। हेमचन्द्रके जन्मस्थान धन्धूकमें उसने 'झोलिकाविहार' निर्मित कराया। इन मन्दिरके अतिरिक्त कुमारपालने एक हज़ार चार-सौ चौवालीस मन्दिरोंका निर्माण कराया था।[1]

शिल्पकला

भारतीय शिल्पकला वास्तुकलासे मिश्रित है और इसमें मुख्यतः अलंकरण वास्तुका प्राधान्य होता है। चौलुक्यकालकी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन, आबूके मन्दिरोंमें जैन तीर्थंकरोंके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रसंग हैं। इनमें वस्तुपाल और तेजपालके पूर्वजों, परिवार तथा विमल मन्दिरके सामने हस्तिशालामें हाथी और घोड़ेपर सवार मनुष्योंकी आकृतियाँ, अध्ययनकी विशेष सामग्री प्रस्तुत करती है। आबू मन्दिरोंकी आकृतियोंसे हमें विदित होता है कि उस समय लोगोंका पहिनावा कैसा होता था। इन आकृतियोंके ज्ञात होता है कि लोग उस समय दाढ़ी और बड़ी-बड़ी मूँछें रखना पसन्द करते थे। कलाई और बाँहोंमें आभूषण, कानमें ऐरन तथा गलेमें हार पहननेकी उस समय प्रथा थी। मन्दिरमें दर्शनके समयका पहिनावा एक ऊँची धोती तथा उत्तरीय होता था। उत्तरीयको कन्धेके चतुर्दिक् डाल देते थे और हाथसे उसके छोर पकड़े रहते थे। स्त्रियाँ कंचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थीं। ऊपरका वस्त्र आधुनिक ओढ़नी जैसा था। स्त्रियाँ कानोंमें बड़े कुण्डल, बाँह तथा हाथमें कड़े अथवा

---

१. देखिए, प्रबन्धचिन्तामणि तथा कुमारपालचरित।

कंगन-जैसे आभूषण धारण करती थीं।[1]

आबूके विमल तथा तेजपाल मन्दिरोंमें अनेक तीर्थंकरोंके जीवनकी विशेष घटनाओंकी आकृतियाँ भी निर्मित की गयी हैं। एक बड़े पट्टमें नेमिनाथके विवाह तथा संन्यासकी घटना शिल्पमें अंकित की गयी है। पट्टमें कुल मिलाकर सात खण्ड हैं। इनमें-से चार अधोमुखी हैं और तीन ऊर्ध्वमुखी। प्रथम खण्डमें नेमिनाथके विवाहका जलूस, नृत्य एवं गायकों सहित निकल रहा है। अन्य खण्डोंमें युद्ध, सेना, वधके लिए पशुओंका बाड़ा, विवाहमण्डप तथा गानवाद्य आदिके दृश्योंके अंकन हुए हैं।[2] चौलुक्य मन्दिरोंके ऊपरी भागका निर्माण, हाथी अथवा घोड़ोंकी पंक्तिके स्वरूपको शिलामें अंकित कर होता था। अश्वोंकी पंक्तिका उत्खनन, विशाल मन्दिरोंकी विशेषता मानी जाती थी। हस्ति-आकृतिका उत्खनन इस कालके मन्दिरोंकी निर्माणकलामें विशिष्ट उत्कृष्टता मानी जाती थी। नबताख मन्दिरमें, सिंह, नान्दी, बन्दरकी भी आकृतियाँ मिलती हैं।[3] यहाँ ये आकृतियाँ मन्दिरके स्तम्भोंमें ब्राइकेटके रूपमें प्रयुक्त हुई हैं। इनमें शिल्पका सर्वोत्कृष्ट नमूना उस नान्दीका है, जो विशेष मुद्रामें अपना एक पैर फैलाकर बैठा है।[4]

चित्रकला

चौलुक्य शासकोंके राज्यकालमें चित्रकलाका पूर्ण विकास तथा उन्नयन हुआ था। चौलुक्यराजाओंके दरबारमें प्रायः चित्रकार आया करते थे। इस तथ्यका समर्थन फ़ोर्ब्स्‌के कथनसे भी होता है। उसने लिखा है कि दरबारमें चित्रकारोंकी कलाकृतियों-सहित उनका परिचय कराया जाता

---

१. आर्कयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।
२. आर्कयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।
३. वर्गेस: ए० के० के०, आकृतियाँ : क्रमशः १, ११, ८, १०, १३।
४. आर्कयॅलॉजी ऑव गुजरात : अध्याय ४, पृ० १२३।

था।[1] कर्णदेव सोलंकीके समय भी चित्रकारका उल्लेख मिलता है।[2] एक दिन जब राजाको सिंहासनस्थ हुए बहुत दिन नहीं हुए थे, सूचना दी गयी कि बहुत-से देशोंका परिभ्रमण कर आनेवाला एक चित्रकार राजदरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा चाहता है। राजाके आदेशपर चित्रकारको सभामें उपस्थित होनेकी अनुमति दी गयी। अभिवादनके बाद चित्रकारने कहा—"आपका यश बहुत-से देशोंमें फैल गया है और बहुत-से लोग आपके दर्शनाभिलाषी हैं। मैं भी बहुत दिनोंसे आपके दर्शनका इच्छुक था।" इसके पश्चात् चित्रकारने राजाके सम्मुख चित्रोंका समूह रखा। उन चित्रोंमें-से एकमें राजाके सम्मुख लक्ष्मी नृत्य करती हुई दिखायी गयी थी और राजाके पार्श्वमें उससे भी एक सुन्दरी खड़ी चित्रित की गयी थी। कर्णदेवने जब इस चित्रका परिचय पूछा तो चित्रकारने बताया—"दक्षिणमें चन्द्रपुर नगरका राजा जयकेशी है। यह उसीकी राजकुमारी मीनलदेवीका चित्र है।" यह राजकुमारी सौन्दर्यकी प्रतिमूर्ति है। बहुत-से राजकुमारोंने उससे विवाहका प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमारीने सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। बौद्ध यतियोंने भी राजकुमारीके सम्मुख बहुत-से राजाओंका चित्र रखा। कुछ समयके उपरान्त एक चित्रकार आपका चित्र लेकर वहाँ उपस्थित हुआ। राजकुमारीने जब यह चित्र देखा तो प्रसन्न होकर आपको अपना पति चुना। यह कहानी चित्रकारोंके सौन्दर्यमय और यथातथ्य चित्रणकी कलाके अस्तित्व की पुष्टि करती है। ऐसे आकर्षक चित्र बनाये जाते थे, जो हृदयहारी और मनोमोहक होते थे।

इसके अतिरिक्त यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी चित्रकलाका उल्लेख आया है। लक्षाधिपतियोंके विशाल भवनोंकी दीवारोंपर जैन-तीर्थंकरोंकी जीवन-घटनाके चित्रांकन किये जाते थे।[3]

---

१. रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।
२. वही : अध्याय ७, पृ० १०५-१०६।
३. मोहराजपराजय : अङ्क ३, पृ० ६०-७०।

इस समय गुजरातमें चित्रकला उन्नत अवस्थामें थी। विभिन्न ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ कलात्मक चित्रोंसे युक्त हुआ करती थीं। सुप्रसिद्ध कलाविद् डॉक्टर मोतीचन्द्रका मत है कि वि० सं० ११५७ में जयसिंह सिद्धराजके शासनकालमें प्राप्त 'निशीथचूर्णी' चित्रित पाण्डुलिपियोंमें प्राचीनतम है। श्री हीरानन्द शास्त्रीके अनुसार वि० सं० ११२५ की कल्पसूत्रकी पाण्डुलिपि भी लघु कलात्मक चित्रोंसे अलंकृत है। इस बातके प्रमाण हैं कि गुजरातकी यह चित्रशैली सत्रहवीं शताब्दी तक विकसित रही। ताड़पत्रीय ग्रन्थ तो प्राचीन कालके मिलते हैं किन्तु काग़ज़की पाण्डुलिपियाँ चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही प्राप्त होती हैं।

'निशीथचूर्णी' में अधिकांश चित्र ज्यामितिक आधारपर बने पत्र-पुष्पोंके हैं। इनमें मनुष्योंकी आकृतियाँ बहुत कम हैं। एक चित्रमें हाथीके चालकको माला लिये दो अप्सराओंके साथ अंकित दिखाया गया है। यह चित्र आचार्य हेमचन्द्रके उस प्रसिद्ध श्लोकका स्मरण करा देता है जब वे प्रथम बार जयसिंह सिद्धराजसे मिले थे। इस कालमें चित्रकलासे युक्त ताड़पत्रीय जो ग्रन्थ मिले हैं उनमें निम्नलिखित उल्लेख्य हैं— दशवैकालिका लघुवृत्ति (वि० सं० १२००), महाबीरचरित (वि० सं० १२९४), नेमिनाथचरित (वि० सं० १२९८), कथासरित्सागर (वि० सं० १३१३), कल्पसूत्र, कालकाचार्यकथा (वि० सं० १३३५), सुबाहुकथा तथा अन्य सात कथाएँ (वि० सं० १३४५)।

दशवैकालिका लघुवृत्तिमें आचार्य हेमचन्द्र तथा उनके शिष्य महेन्द्रसूरि और चौलुक्य कुमारपालका चित्रांकन मिलता है। इनमें हेमचन्द्र सामने बैठे जैन मुनिसे वार्ता करते हुए दिखाये गये हैं और एक व्यक्ति करबद्ध मुद्रामें उनकी दाहिनी ओर खड़ा है। महाबीरचरितमें एक जैनाचार्य श्वेत परिधानमें सिंहासनपर बैठे हैं और एक दाढ़ीयुक्त पुरुष हाथ जोड़े सम्मुख बैठा है। इनमें प्रथम आचार्य हेमचन्द्र हैं और द्वितीय चौलुक्य कुमारपाल हैं। सुबाहुकथामें वृक्ष और पशुओंके रेखांकन मिलते हैं।

वस्त्रोंपर भी चित्रकलाका अंकन होता था। पाण्डुलिपियोंके नीचे-ऊपर रखे जानें वाले काष्ठ भी कलात्मक ढंगसे चित्रित होते थे।

नृत्य और संगीत

कुमारपालके शासनकालमें नृत्य तथा गायन-वादनके अनेकानेक प्रसंगोंकी चर्चा आती है। राज्यारोहण समारोहपर जब वह सिंहासनपर आसीन हुआ तो सुन्दरी नर्तकियाँ अपनी नृत्य तथा संगीतकलाका प्रदर्शन करने लगीं। राजप्रासादका प्रांगण मोतीके टूटे हुए हारोंसे भर गया था। सारा संसार मंगलमय गान-वाद्यसे प्रतिध्वनित हो उठा।[1] कुमारपालकी दिनचर्य्याके अन्तर्गत भी गान-वाद्य सुननेका उल्लेख आता है। सन्ध्या समय राजप्रासादके देवमन्दिरमें पुष्पोंसे पूजन-अर्चनके उपरान्त नर्तकियाँ दीप प्रज्वलित कर देवताके सम्मुख नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थीं। पूजनके पश्चात् वह चारण तथा कलाकारोंसे गान-वाद्य सुनता। समारोह तथा महोत्सवके समय नागरिक संगीतका आनन्द लेते और सुसज्जित रंग-मंचपर वेश्याएँ नृत्य करतीं। इस समय उन्नत रंगमंचके होने तथा नाटक अभिनीत करनेका भी उल्लेख मिलता है। सिद्धराज जयसिंहको वेश परिवर्तन कर, कर्ण मेरुप्रासादमें नाटकका अवलोकन करते हुए हम देख चुके हैं। एक और अन्य अवसरपर एक उद्योगपति-द्वारा आयोजित नाटक अभिनयमें भी जयसिंह सिद्धराजकी उपस्थिति हमें विदित है। इन विवरणोंसे स्पष्ट है कि नृत्य और नाट्यकलाके प्रयोग और आयोजन समय-समयपर हुआ करते थे और जनसाधारणके अतिरिक्त राजन्यवर्ग भी उनमें दिलचस्पी लेता था। वस्तुतः नृत्य और संगीत-कलाका समाजमें बड़ा आदर था और इसकी दिनोंदिन उन्नति हो रही थी।

---

१. कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५।

गुजरात और भारतके इतिहासमें सम्राट् चौलुक्य कुमारपालका व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण एवं अभूतपूर्व है। जब वह (विक्रम संवत् ११९९ : सन् ११४२ में) सिंहासनारूढ़ हुआ तो सिद्धराजकी मृत्युसे शोक-सन्तप्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी।[1] इस कालके सर्वश्रेष्ठ

1. एको यः सकलं कुतूहलितया बभ्राम भूमण्डलं
प्रीत्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्यलक्ष्मीः स्वयम्।

और महान् विद्वान् हेमचन्द्रने अपनी रचना महावीरचरित्रमें कुमारपालको चौलुक्य वंशका चन्द्रमा कहा है और कहा है कि वह महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा।[1] तत्कालीन विद्वानोंके ये वर्णन, उनके संरक्षककी कवित्वमय प्रशस्ति मात्र ही नहीं, अपितु उसकी महत्ता और सत्ता, शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अभिलेखोंसे भी प्रमाणित होती है। कुमारपालके एक-दो नहीं, बाइस शिलालेख एकमत होकर एक स्वरसे उसके महान् व्यक्तित्व, शौर्य-वीर्य और प्रभुत्वका विशिष्ट उल्लेख करते हैं। इन सभी शिलालेखोंमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल सर्वगुणसम्पन्न तथा 'उमापतिवरलब्ध' था।[2]

महान् विजेता

कुमारपालके इतिहासका अनुशीलन और विशेषतः उसके प्रारम्भिक जीवनका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि वह अपने भाग्यका स्वयं निर्माता और विधाता था। प्रारम्भमें वह निरन्तर सात वर्षों तक शत्रुओंके मध्य मित्रहीन और साधनहीन होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र भटकता रहा। उसके अदम्य साहस और दृढ़ निश्चयका ही यह परिणाम था कि

श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजां
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्यवंशध्वजः ॥

—मोहराजपराजय : अङ्क १, पृ० २८।

१. कुमारपालो भूपालश्चौलुक्यचन्द्रमास्तथा।
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्डशासनः ॥

—महावीरचरित्र : १२ सर्ग, श्लोक ४६।

२. परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज उमापतिवरलब्ध प्राप्त राज्य प्रौढ़प्रताप लक्ष्मी स्वयंवर स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकम्भरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात''''इण्डि० एण्टी० : खण्ड ११, पृ० १८१।

वह शक्तिशाली जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी हो सका। राजकीय सत्ता ग्रहण करनेपर उसने न केवल चौलुक्य साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंपर अधिकार बनाये रखा अपितु स्वयं अनेक राज्योंपर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्यको भी सुदृढ़ बनाया। वह महान् योद्धा, पराक्रमी और सफल सेनानायक था। कुमारपालने चौहान अर्णो राजाको युद्धमें ऐसा पराजित किया कि 'स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकम्भरी भूपाल' उसके नामका एक अंश बन गया।[1] कुमारपालने जिन महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की उनमें कोंकणराज मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप वल्लालकी पराजय उल्लेखनीय है।[2] वसन्तविलास[3] तथा कीर्तिकौमुदीसे[4] भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है। इतने ही विवरणोंसे स्पष्ट है कि कुमारपाल एक महान् योद्धा था और उसने अपने चतुर्दिक्के सभी प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। युद्धमें उसे सदा विजय ही प्राप्त हुई। उसका जीवन सैनिक विजयोंकी शृंखलासे अलंकृत था। उसकी नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। साम्राज्य-विस्तार उसका अभिप्रेत न था किन्तु सिद्धराज जयसिंह-द्वारा छोड़े हुए प्रदेशोंपर अधिकार और प्रभाव बनाये रखना, अनिवार्यतः आवश्यक था। इसीलिए शाकम्भरी और मालवाके विरुद्ध उसे बाध्य होकर युद्ध करना पड़ा था।

महान् निर्माता

कुमारपाल न केवल युद्धकी कलामें पारंगत था, अपितु शान्तिके महत्त्वको भलीप्रकार समझता और उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता था।

---

१. 'स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्ज्जित शाकम्भरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव'

२. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४, पृ० २६८।

३. वसन्तविलास : ३,२९।

४. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृ० १८५।

जब देशमें शान्ति स्थापित हो गयी तो वह उत्साहपूर्वक रचनात्मक कार्योंमें प्रवृत्त हुआ। प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें वह प्रख्यात हैं।[१] पाटनमें उसने कुमार विहारके विशाल मन्दिरकी स्थापना की।[२] इसके पश्चात् उसने अपने पिता त्रिभुवनपालकी स्मृतिमें और अधिक विशाल तथा भव्य 'त्रिभुवन विहार'का बहत्तर छोटे मन्दिरों-सहित निर्माण कराया।[३] कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताका कथन है कि कुमारपालने पाटनमें जिन चौबीस जैन मन्दिरोंकी प्राणप्रतिष्ठा करायी उनमें त्रिविहारका मन्दिर सबसे भव्य था।[४] उसने केवल मन्दिरोंका निर्माण ही न किया अपितु इसका भी ध्यान रखा कि उनकी समुचित व्यवस्था होती रहे। पाटनके बाहर उसने जो सैकड़ों मन्दिर बनवाये उनमें तारंगा पहाड़ीपर स्थित अजितनाथका मन्दिर उल्लेख्य है। इस व्यापक विशाल और भव्य निर्माणकी प्रेरणा कुमारपालको केवल जैनधर्ममें दीक्षित होनेसे ही नहीं प्राप्त हुई थी, बल्कि कला-कौशल और वास्तुकलाके प्रति उसका सच्चा प्रेम बहुत अधिक अंशों तक इन कार्योंका प्रेरक था।

युगप्रवर्तक समाज-सुधारक

गुजरातके इतिहासमें अपने समयके महान् समाज-सुधारकके रूपमें कुमारपालका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा। कुछ विद्वान् यह कह सकते हैं कि कुमारपालने जो समाज-सुधार किये वे शुद्ध समाज-सुधारकके रूपमें नहीं अपितु जैनधर्मकी श्रद्धाभावनासे अनुप्राणित होकर किये गये थे। किन्तु यह कभी विस्मरण न किया जाना चाहिए कि इतिहासकारके लिए ठोस परिणाम एवं निष्कर्ष ही सब कुछ है। इस समय गुजरातका समाज

---

१. इण्डि० एण्टी० : खण्ड ४, पृ० २६९।

२. इपि० आई० : खण्ड ११, पृ० ५४-५५।

३. कुमारपालप्रतिबोध।

४. वही।

पशुवध, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूट-पाटके बुरे परिणामोंसे अभिशप्त हो गया था।[1] इस समय राज्यका एक नियम अत्यन्त ही निन्दा-जनक था। यह था निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्य-द्वारा अधिकार कर लेना। राज्यके अधिकारी बिना उत्तराधिकारीके मृत व्यक्तिके घरकी जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओंपर अधिकार कर लेते थे, तभी शवको अन्तिम संस्कारके लिए ले जाने देते थे। इससे जनताको बहुत कष्ट होता था।[2] कुमारपालने राज्यमें कुछ विशेष तिथियोंपर पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लंघन करनेवालोंको भारी आर्थिक दण्ड और मृत्युदण्ड तक दिया जाता था।[3] कुमारपालने निस्सन्तान व्यक्तियोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर दिया।[4] हेमचन्द्रने अपने महावीरचरित्रमें भी इस घटनाका उल्लेख किया है।[5] जिनमदनने कुमारपालप्रतिबोधमें लिखा है कि निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर कुमारपालने वस्तुतः 'राज्य पितामह'की उपाधिके लिए अपनेको योग्य सिद्ध किया।[6] यद्यपि

---

१. मोहराजपराजय : अङ्क ३ तथा ४।

२. वही।

३. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४, बी० पी० एस० आई० २०५-७।

४. मोहराजपराजय : चतुर्थ अङ्क।

५. अपुत्रमृतप्रजानां स द्रविणं न ग्रहीष्यति
विवेकस्य फलं ह्येतदतृप्ता ह्यविवेकिनः।
—महावीरचरित्र : सर्ग १२, श्लोक ६४।

६. अपुत्राणां धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थिवः।
त्वं तु सन्तोषतो मुञ्चन् सत्यं राजपितामहः।
—जिनमदन : कुमारपालचरित।

यशपालने लिखा है कि जूआ, मद्य और वध करना राज्यमें नहीं था। इससे यह समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि कुमारपालके राज्य-कालमें इनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और इनके नियन्त्रण और निर्मूलीकरणके कार्यमें बहुत ही कड़ाई कर दी गयी थी। हिंसा, द्यूत और मद्यपर प्रतिबन्ध लगानेके साथ ही उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति-पर राज्य अधिकारकी, प्राचीन परम्पराको समाप्त कर राज्यमें सर्वत्र निषेधाज्ञा प्रचारित करायी। वस्तुतः कुमारपालके ये साहसपूर्ण सामाजिक सुधार देशमें नये युगका समारम्भ करते हैं।

साहित्य और कलासे प्रेम

कुमारपाल साहित्य, विद्या और कलाका महान् प्रेमी था। शिल्पकला और वास्तुकलाके प्रति उसके अत्यधिक प्रेमके निदर्शन उसके बहुसंख्यक मन्दिर हैं, जिनका निर्माण उसने जैनधर्मकी दीक्षाके उपरान्त कराया। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी परिषद्में पण्डितोंसे मिलता और उनसे धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार-विमर्श करता था। इनमें कवि सिद्धपालका दल राजाको सुन्दर कहानियों और कथा-प्रसंगोंके कथन-श्रवण-द्वारा प्रसन्न किया करता था।[1] कवि सिद्धपालकी उस स्थानमें भी चर्चा आयी है, जहाँ कुमारपाल सेठ अभय-कुमारको दातव्य संस्थाओंका व्यवस्था-भार सौंपता है। कहते हैं कि कुमार-पालके इस सुन्दर और सुविचारित चुनावपर कवि सिद्धपालने उसकी प्रशंसा की।[2] कवि सिद्धपालके अतिरिक्त उस युगके विद्वान् समाजका सबसे महान् व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र उसकी राजसभाकी शोभा बढ़ाते थे। कुमारपालकी राजसभामें उसका महामात्य कदर्पी भी प्रसिद्ध विद्वान् और कवि था। हेमचन्द्र-द्वारा प्राकृत व्याकरणकी रचना तथा प्राकृतका

१. मोहराजपराजय : अङ्क ४।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

प्रादुर्भाव, इस युगकी साहित्यिक प्रगतिकी दो महान् देन हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है ।

कुमारपालका निधन

कुमारपालका शासनकाल भारतीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण काल था और गुजरातके इतिहासका तो स्वर्णकाल ही था। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी। इकतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करनेके बाद इक्यासी वर्षकी अवस्थामें सन् ११७४ (वि० सं० १२३०) में उसका निधन हुआ। अँगरेज़ इतिहास-लेखक श्री टाडने कुमारपालके सम्बन्धमें एक विचित्र कथन यह किया है कि मृत्युके पहले कुमारपाल तथा हेमचन्द्रने इस्लाम ग्रहण कर लिया था और यदि इस्लाम न भी ग्रहण किया था तो कमसे-कम उसकी ओर इनका झुकाव तो अवश्य ही हो गया था।[1] किन्तु ये सब बातें पूर्णतः निराधार और कपोलकल्पित हैं। इस असम्भावित और अस्वाभाविक घटनाका समर्थन करनेवाले प्रमाणोंका सर्वथा अभाव है। आचार्य हेमचन्द्र और जैनधर्मके सच्चे साधक कुमारपालके सम्बन्धमें, इस प्रकारकी किसी कल्पनाको भी स्थान देना, उनके वास्तविक स्वरूपके अज्ञानका ही बोधक है। कुमारपालप्रबन्धमें लिखा है कि कुमारपालके भतीजे तथा उत्तराधिकारीने उसे बन्दी बना लिया था। कुमारपालप्रबन्धमें कुमारपालका शासनकाल ठीक तीस वर्ष आठ महीना सत्ताईस दिन लिखा है। यदि कुमारपालके शासनका प्रारम्भ संवत् ११९९ माघ शुक्ल चतुर्थी माना जाये तो उसके अन्तकी तिथि संवत् १२२९ में भाद्रपद शुक्ल होगी। यदि गुजरातके पंचांगके अनुसार वर्षका प्रारम्भ आश्विनसे भी किया जाये, तो उसके राज्यकालकी समाप्ति भाद्रपद संवत् १२३० में होगी। यह सन्देहास्पद है कि संवत् १२२९ और १२३० में कौन सत्य है तथा कौन

---

१. टाड : वेस्टर्न इण्डिया : पृष्ठ १८४ ।

असत्य। कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालका प्रारम्भ वैशाख शुक्ल तृतीया माना जाता है। इस गणनाके अनुसार कुमारपालका निधन वैशाख वि० सं० १२२९ अर्थात् सन् ११७३ ईस्वीमें होना स्वीकार किया जाना चाहिए। यह विदित है कि हेमचन्द्रकी मृत्यु चौरासी वर्षकी अवस्थामें संवत् १२२९ (सन् ११७२) में कुमारपालके निधनके ठीक छह मास पूर्व हुई थी। कुमारपालको अपने आध्यात्मिक गुरुके निधनका बहुत शोक हुआ। कहा जाता है कि इसके पश्चात् उसने समस्त सांसारिक कार्योंका परित्याग कर दिया और मृत्यु पर्यन्त गम्भीर अन्तःसाधनामें संलग्न रहा।

कुमारपालका उत्तराधिकारी

कुमारपालचरितमें जयसिंहने लिखा है कि मृत्युके पहले कुमारपालने हेमचन्द्रसे अपने भावी उत्तराधिकारीके विषयमें विचार-विमर्श किया था और अजयपालको ही सिंहासनाधिकारी चुना था।[१] मेरुतुंगने एक कहानी-में कुमारपालसे कहा है कि श्रीमान्‌को एक पुत्र हुआ है। इसपर राजाने उत्तर दिया कि वह इस नगरका नहीं, गुजरातका राजा होगा।[२] कुमार-पालप्रबन्धमें यह लिखा है कि वह अपने दौहित्र प्रतापमल्लको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, किन्तु अजयपालने उसके विरुद्ध विद्रोह-का षड्यन्त्र कर उसे विष देकर छुटकारा पा लिया।[३] यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजयपाल-द्वारा राजाको विष देनेकी कहानीका अबुलफ़ज़ल और मुहम्मदखाँने भी उल्लेख किया है।[४] हेमचन्द्रकी यह भविष्यवाणी कि

१. कुमारपालचरित : १०, पृष्ठ ११८।

२. प्रबन्धचिन्तामणि : पृष्ठ १४९।

३. बाम्बे गज़ेटियर : खण्ड १, उपखण्ड १, पृष्ठ १९४।

४. ए० ए० के० : खण्ड २, पृ० २६३ तथा एम० ए० ट्रान्स० : पृष्ठ १४३।

कुमारपाल मेरे अवसानके छह माससे अधिक जीवित न रहेगा, अप्रत्याशित रूपसे सत्य की गयी-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ कुचक्र-की शंका उस समय और भी साधार तथा सबल हो जाती है, जब हम देखते हैं कि कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालमें धार्मिक नीतिमें भयंकर प्रतिक्रिया हुई थी।

कुमारपालका इतिहासमें स्थान

किसी शासकका इतिहासमें स्थान उस युग-विशेषमें उसकी सफलताओंसे ही अंकित और स्थिर किया जाता है। पहले व्यक्तिगत वीरता और युद्ध विजयपर ही राजाकी सत्ता एवं श्रेष्ठता मान्य होती थी। इस मानदण्डसे कुमारपालके जीवनपर विचार किया जाये तो विदित होता है वह महान् योद्धा और विजेता था। उसने जितने भी युद्ध किये सभीमें निरन्तर सफलता प्राप्त की। यदि केवल इसी मानदण्डसे विचार किया जाये तो भी, कुमारपालकी गणना, महान् राजाओंमें अवश्य करनी होगी। विश्व इतिहासके संसार-प्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्सने इतिहासके महान् व्यक्तित्वोंकी महत्ताका मूल्यांकन करनेका दूसरा ही मानदण्ड माना है। इसके अनुसार यह देखना होगा कि अमुक राजाने संसारको प्रसन्न एवं सुखी बनानेमें सफलता प्राप्त की है अथवा नहीं।[1] इस मानदण्डसे कुमारपालके कार्यों और सफलताओंपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि, वह निश्चित रूपसे इसी ध्येयको सम्मुख रखकर अग्रसर हो रहा था। सोमप्रभाचार्यने लिखा है कि कुमारपालने असहायोंके भोजन-वस्त्रके निमित्त सत्रागारकी स्थापना की। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसने एक मठका भी निर्माण कराया था।[2] उसकी यह कृपालुता और दयाभावना मानवों तक ही सीमित न थी अपितु

---

१. स्ट्राण्ड मैगजीन : सितम्बर, पृ० २१६।

२. कुमारपालप्रतिबोध।

विशेष तिथियोंको उसने पशुवधपर भी प्रतिषेध लगा दिया था।[1] केवल यही नहीं, जैनधर्मके प्रभावसे उसने गुजरातके तत्कालीन समाजमें फैली सामाजिक बुराइयोंके दमनमें राज्यशक्तिका भी उपयोग किया।[2] निस्सन्तान व्यक्तियोंके मरनेपर उनकी समस्त सम्पत्तिपर, राज्यके अधिकारकी अमानवीय नीतिका उसने परित्याग एवं निषेध कर, प्रजाके प्रति अपने पितृवत् प्रेमको अभिव्यक्त किया था।[3] इन तथ्योंके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें प्रमुख हो गया है। हर्षवर्धनके पश्चात् कुमारपाल अन्तिम महान् हिन्दू शक्तिशाली सम्राट् था, जिसने पश्चिमोत्तर भारतको एकच्छत्रके अन्तर्गत करनेमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुमारपाल निश्चय ही गुजरातका सबसे बड़ा चौलुक्य राजा था।[4] उसीके शासनकालमें चौलुक्य साम्राज्य उन्नति और उत्कर्षकी पराकाष्ठापर पहुँचा। विभिन्न शिलालेखोंमें कुमारपालके नामके साथ परमभट्टारक, पारमेश्वर आदिकी जो उपाधियाँ हैं, वे उसके महान् राजकीय प्रभुत्वकी द्योतक हैं। प्राचीन भारतमें सभी महान् राजाओंने नवीन संवत्सरका प्रारम्भ किया है। हेमचन्द्रने भी सफल युद्धोंके बाद कुमारपाल-द्वारा उसी प्रकारके संवत् प्रारम्भ करनेकी घटनाका उल्लेख किया है। ये समस्त तथ्य तथा परिस्थितियाँ इस बातकी सूचक हैं कि महाराजाधिराज सम्राट् कुमारपाल, भारतके महान् शासकोंमें

---

१. इपि० इण्डि० : खण्ड ११, पृ० ४४ तथा बी० पी० एस० आई० २०५-७।

२. मोहराजपराजय : अङ्क ४, पृ० ९३-११०।

३. वीतरागरतेर्यस्य मृतवित्तानि मुञ्चतः।
देवस्येव नृदेवस्य युक्ताभूदमृतार्थिता॥
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४३।

४. महीमण्डलमार्तण्डे तत्र लोकान्तरं गते।
श्रीमान् कुमारपालोऽथ राजा रञ्जितवान् प्रजाः॥
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४०।

विशिष्ट था तथा गुजरातके चौलुक्य राजाओंमें सबसे महान् था।[1]

प्राचीन भारतके विश्वविश्रुत और सबसे महान् मौर्यसम्राट् अशोकके पथ-चिह्नोंपर बारहवीं शताब्दीमें हिन्दू साम्राज्यके अन्तिम भारतप्रसिद्ध शक्ति-शाली चौलुक्य कुमारपालके राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आदर्शोंमें अनुगमनका आश्चर्यजनक किन्तु तथ्यपूर्ण साम्य दृष्टिगोचर होता है। अशोक-ने ईसापूर्व २३२ वर्षमें भारतको चरम उत्कर्षपर पहुँचाया तो कुमारपालने हिन्दू राज्यकालके अन्तिम समय बारहवीं शताब्दीमें स्वर्णकालकी अवतारणा की। अशोकने मगध और मौर्य साम्राज्यका प्रभुत्व स्थापित किया, तो कुमारपालने गुजरात एवं चौलुक्य साम्राज्यका आधिपत्य प्रतिष्ठित किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्सने संसारके पाँच महान् राजाओंकी तुलना करते हुए अशोकको ही सबसे महान् स्वीकार किया है। रोमके सम्राट् कान्स्टेनटाइन, मार्क्स ओरिलियस, सीजर और यूनानके सिकन्दर तथा मुग़ल सम्राट् अकबरकी तुलना करते हुए उनमें अशोककी महत्ता इसलिए स्वीकार की गयी है, कि उसने न केवल अपने प्रजावर्गका अपितु मानवमात्रके प्रति जिस उदारता, सहिष्णुता एवं विश्वव्यापक कल्याण भावनाका प्रसार-प्रचार किया, वैसी नीति कार्यान्वित करनेमें दूसरे सफल न हुए। प्रजावर्गके हित-सम्पादनकी जिस भावनाने अशोकको 'धर्मप्रचार' के लिए प्रेरित किया था, वैसी ही अन्तर भावना कुमारपालके हृदयमें भी प्रजाजनके लिए उत्पन्न हुई थी। मानवसेवाके जिस भावने अशोकसे जीव-हिंसात्याग, अहिंसाप्रचार, दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और साधुता-का प्रचार कराया, प्रायः उसी प्रकारकी प्रेरणाने कुमारपाल-द्वारा सप्त व्यसनों—हिंसा, मद्यपान, द्यूत, मांसाहारादिका निषेध करा, उस युगके

---

१. न केवलं महीपालाः सायकैः समराङ्गणे।
गुणैर्लोकं पणैर्येन निर्जिताः पूर्वजा अपि॥

—वही : श्लोक ४२।

सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनमें नवीन युगका प्रवर्तन किया। कुमारपालने मद्य, द्यूत और मृतधनापहरणसे राज्यकोषमें करोड़ों रुपयोंकी होनेवाली आयका त्याग कर, तत्कालीन सामाजिक जीवनमें सद्भावना, सदाचार और सद्विचारका प्रचार किया।

भारतीय इतिहासमें अशोक, बौद्धधर्मका महान् प्रचारक माना जाता है तो कुमारपाल जैनधर्म और संस्कृतिका उतना ही बड़ा प्रसारक तथा पोषक रहा है। अशोक भी पहले शैव था और कुमारपाल भी। जिस प्रकार अशोकने बौद्ध होकर अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णु तथा आदरभाव रखा, उसी प्रकार कुमारपाल भी जैन होकर शैव सम्प्रदायका समादर करता हुआ, धार्मिक सहिष्णुताकी भावना रखता था। ब्राह्मण और श्रमणका दोनों ही आदर करते थे। अशोकने धर्म महामात्रोंकी नियुक्ति, धर्मकी रक्षा, वृद्धि तथा धर्मात्माओंके हित एवं सुखके लिए सभी सम्प्रदायोंमें कार्य करनेके लिए की थी। इससे जिस प्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म समादरकी भावना सुस्पष्ट है, उसी प्रकार कुमारपाल भी 'उमापतिवरलब्ध प्रौढ़प्रताप' और 'परमार्हत' दोनों विरुद धारण करनेमें गौरव मानता था। बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अशोकने प्रस्तरस्तम्भों और शिलालेखोंका उत्खनन कराया, तो कुमारपालने भी जैनधर्म सिद्धान्त एवं संस्कृतिके निमित्त सैकड़ों विहारों तथा मन्दिरोंका निर्माण कराया। अशोकने बौद्ध तीर्थस्थानोंकी श्रद्धापूर्वक धर्म-यात्रा की थी, तो कुमारपालने भी जैनतीर्थोंके भक्तिपूर्वक नमनके लिए संघ-सहित तीर्थयात्रा की।[1]

अशोकने सड़क और सड़कके किनारे शीतल छायाके लिए वृक्ष लगाये, कुएँ खुदवाये, धर्मशालाएँ बनवायीं और अस्पताल खुलवाये, ठीक उसी प्रकार चौलुक्य कुमारपालने 'सत्रागार'की स्थापना की। यहाँ दीन और

---

१. चलियो कुमारपालो सत्रुंजय तित्थ नयणत्थं—कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १७९।

असहायोंको भोजन, वस्त्र दिया जाता था। यही नहीं उसने 'पोषधशाला'-का निर्माण कराया जहाँ धार्मिक जनोंको शान्त एवं एकान्त निवासकी समस्त सुविधाएँ सुलभ थीं। कुमारपालने न केवल 'पोषधशाला' और 'सत्रागार'की ही स्थापना की अपितु इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था एवं सुप्रबन्धके लिए विशेष तथा विशिष्ट अधिकारीकी नियुक्ति भी की थी।[1] सुप्रसिद्ध इतिहासकार विसेण्ट स्मिथने लिखा है कि पशुओंके वधका निषेध बारहवीं शताब्दीमें कुमारपालने बड़ी तत्परतासे अशोककी ही भाँति किया था। इसका उल्लंघन करनेवालोंको चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी अनहिलवाड़ाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया जाता था। कुमारपाल-द्वारा निर्मित इस न्यायालयकी तुलना, सहजमें ही अशोक-द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रोंके उन न्याय अधिकारोंसे की जा सकती है, जिनके अनुसार वे न्यायालयों-द्वारा सुनाये गये निर्णयोंपर भी नियन्त्रण रखते थे।[2] जिस प्रकार अशोकने बौद्धधर्मके प्रसारके निमित्त धर्ममहामात्रोंकी नियुक्ति की थी, उसी प्रकार कुमारपालने जैन तथा शैव तीर्थोंके पुनरुद्धार एवं निर्माणके लिए विशेष अधिकारियोंको नियुक्त किया था। हमें विदित है कि गिरनार पर्वतपर सीढ़ियोंके निर्माणके लिए उसने श्री अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर उक्त कार्य विशेष रूपसे सौंपा था। इसी प्रकार भारतीय संस्कृतिके प्रतीक सोमनाथ मन्दिरके निर्माणार्थ भी उसने 'पंचकुल'का संघटन किया था, जिसके निरीक्षण एवं निर्देशनमें मन्दिरके निर्माणका कार्य सम्पन्न हुआ था।

अशोकने कलिंग विजयके बाद कोई युद्ध न करनेका संकल्प किया था। कुमारपालने भी साम्राज्य विस्तारके लिए आक्रमणात्मक युद्ध न किये अपितु सिद्धराज जयसिंह-द्वारा छोड़े गये साम्राज्यकी रक्षाके लिए केवल

---

१. वही।

२. विसेण्ट स्मिथ : भारतका इतिहास : पृ० १६१-२।

रक्षात्मक युद्ध किये । इसी प्रसंगमें जिन राजाओंने उसके शत्रुओंका पक्ष ग्रहण किया था, उनका मूलोच्छेद उसे राजनीतिकी दृष्टिसे बाध्य होकर करना पड़ा । दोनों ही शान्तिप्रिय, धर्मप्रिय तथा विद्या एवं कलाके अनन्य प्रेमी थे ।

इस प्रकार सम्राट् कुमारपाल गुजरातकी गरिमाका सर्वोपरि शिखर था । 'उसके समयमें गुजरात विद्या और विभुतामें, शौर्य और सामर्थ्यमें, समृद्धि और सदाचारमें, धर्म और कर्ममें, उत्कृष्टतापर पहुँच गया था । उसके राज्यमें प्रकृतिकार वैश्य भी महान् सेनापति हुए, द्रव्यलोलुप वणिक्-जन भी महाकवि हुए और ईर्षापरायण ब्राह्मण तथा निन्दापरायण श्रमण भी परस्पर मित्र हुए । व्यसनासक्त क्षत्रिय भी संयमी साधक बने और हीनाचारी शूद्र धर्मशील बने' । चौलुक्य साम्राज्य, कुमारपालके शासनकालमें समृद्धि एवं सम्पन्नताके सर्वोच्च शिखरपर पहुँच गया था । चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल और उसका युग, वस्तुतः भारतीय इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें अंकित करने योग्य है ।

सहायक ग्रन्थोंकी सूची

मूलग्रन्थ

हेमचन्द्र : द्वयाश्रयकाव्य, पी० एल० वैद्य, पूना-द्वारा सम्पादित ।

हेमचन्द्र : महावीरचरित ।

सोमप्रभाचार्य : कुमारपालप्रतिबोध, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, संख्या १४

जयसिंह : कुमारपालचरित, कान्ति विजय जानी, बम्बई-द्वारा सम्पादित ।

मेरुतुंग : प्रबन्धचिन्तामणि, सम्पादक, जिनविजय मुनि, कलकत्ता ।

मेरुतुंग : थेरावली, जे० बी० आर० ए० एस०, खण्ड ९, पृष्ठ १४७ ।

यशपाल : मोहराजपराजय, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, संख्या९,१९१८

उदयप्रभा : सुकृत कीर्तिकल्लोलिनी, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, परिशिष्ट २, पृ० ६७,९० ।

सोमेश्वर : कीर्ति कौमुदी : सम्पादक, ए० वी० कथावाटे, बम्बई संस्कृत सिरीज-संख्या २५ ।

बालचन्द्र : वसन्तविलास, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, संख्या ७,१९१७।

जयसिंह : हम्मीर मदमर्दन, गा० ओ० सिरीज, संख्या १०, १९२० ।

चरित्र सुन्दर : कुमारपालचरित, आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर ।

चन्द्रप्रभा : प्रभावकचरित, सम्पादक जिनविजय मुनि ।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह : सम्पादक जिनविजय मुनि ।

जिनमदन : कुमारपाल प्रबन्ध ।

मुसलिम इतिहास

ज़ियाउद्दीन : तारीख़ ए फ़िरोज़शाही, इलियट खण्ड ३, पृ० ९३।

निजामुद्दीन : तबक़ात-ए-अकबरी, विवलिओथिका इनडिका ।

तारीख़-ए-फ़िरिश्ता : ब्रिगस्, खण्ड १।
आइन-ए-अकबरी : ब्लोचमन एण्ड जेरेट, खण्ड २।
जफ़रुल वली वी मुज़फ़्फ़र वा अलीह : गुजरातका अरबीमें इतिहास।
तबकात-ए-नसीरी : रावर्टे कृत अनुवाद, खण्ड १।
मीरात-ए-अहमदी : सैयद नवल अली, गा० ओ० सिरीज, खण्ड ३३।
किताब जैनुल अख़बार : अबू सईद, सम्पादक नाजिम वरलिन।
तजुल माथीर आव हसन निजामी : इलियट खण्ड २, पृ० २२६।

आधुनिक ग्रन्थ

फ़ोर्ब्स : रासमाला, सम्पादक रोलिंगसन, आक्सफ़ोर्ड १९२४, खण्ड १।
टाड : एनेल्स एण्ड एण्टीक्युटीज़ ऑव राजस्थान, सम्पादक कूक आक्सफोर्ड।
वेली : हिस्ट्री ऑव गुजरात, १८८६, लन्दन।
कमिशेरियट : हिस्ट्री ऑव गुजरात।
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया : खण्ड ३, अध्याय २, ३, ५ तथा १३।
वर्गेस एण्ड कसन्स : आर्कयॅलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया। उत्तरी गुजरात।
वर्गेस एण्ड कसन्स : आर्किटेक्चरल एण्टीक्वीटीज़ ऑव नार्दर्न गुजरात।
डॉक्टर ब्हूलर : ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री ऑव गुजरात।
डॉक्टर ब्हूलर : उवर दस लेवन दस जैन मौंक्स हेमचन्द्र।
एच० डी० संकालिया : आर्कयॅलॉजी आव गुजरात, नटवरलाल, बम्बई।
के० एम० मुन्शी : गुजरात नो नाथ, खण्ड १ से ५, बम्बई।
के० एम० मुन्शी : ग्लोरी दैट वाज़ गुजरात।
एच० सी० रे : डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया खण्ड १, २।
कसन्स : चालुक्यन आर्किटेक्चर, ए० एस० आई०, १९२६।
विसेण्ट स्मिथ : जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टीक्वीटीज़ ऑव मथुरा।
विसेण्ट स्मिथ : ए हिस्ट्री ऑव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन।
जेम्स फर्ग्यूसन : हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।

डॉक्टर मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर फ्रौम वेस्टर्न इण्डिया ।
साराभाई एम० नवाब : जैन चित्र कल्पद्रुम ।
साराभाई एम० नवाब : जैन तीर्थज आँव नार्दर्न इण्डिया ।
मुनि श्री जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल ।
डॉ० भोगीलाल सांडेसरा : महामात्य वस्तुपाल और उनकी साहित्यिक मण्डली ।
डॉ० अशोक कुमार मजुमदार : चौलुक्याज़ आव गुजरात ।

गजेटियर

गजेटियर आँव बाम्बे प्रेसिडेन्सी ।
राजपूताना गजेटियर ।
इम्पीरियल गजेटियर ।
गजेटियर आँव नार्थ वेस्टर्न फ्रान्टियर प्राविन्स ।

जर्नल

इपिग्राफिया इण्डिया ।
इण्डियन एण्टीक्वेरी ।
जर्नल आँव रायल एशियाटिक सोसाइटी ।
जर्नल आँव बाम्बे ब्राञ्च रायल एशियाटिक सोसाइटी ।
पूना ओरियण्टलिस्ट ।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट व्यक्ति

ख

ग

च

ज

ट

त

द

ध

न

प

य

र

ल

व

श

स

ऐतिहासिक स्थान

ग्रन्थ